श्रीमद्भागवत की स्तुतियों का समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ० हरिशंकर पाण्डेय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमद्भागवत महापुराण परमहंसों की संहिता है, जो केवल रस स्वरूप है। इसमें अनेक विषयों का प्रतिपादन किया गया है, जिसमें भक्ति और स्तुति प्रमुख है। इस महापुराण में १३२ स्तुतियां संग्रथित हैं जो विभिन्न अवसरों पर भगवद्भक्तों द्वारा अपने उपास्यों के प्रति समर्पित की गई हैं। उन्हीं स्तुतियों का समीक्षात्मक अनुशीलन करने का साधु प्रयास लेखक ने किया है। इसमें स्तुति का स्वरूप, स्तुति का मनोविज्ञान, स्तुति की परम्परा, भागवतीय स्तुतियों का वस्तुविश्लेषण, स्तुतियों में दार्शनिक तत्त्व एवं देवस्वरूप, काव्य तत्त्व, रस, अलंकार, छन्द भाषा आदि विविध पक्षों पर प्रकाश डाला गया है। यह ग्रन्थ अपने आप में अनूठा है। शोधार्थी एवं शोध-जगत् के लिए महदुपकारक तो है ही भागवत-रसिकों एवं अनाविल-मानस भक्तों के लिए परम सहायक तथा उनकी प्रभु विषयिणी रति को उद्बोधित एवं सम्बर्द्धित करने में भी समर्थ है।

For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमद्भागवत की स्तुतियों का समीक्षात्मक अध्ययन

लेखक

डॉ० हरिशंकर पांडेय

एम० ए० संस्कृत एवं प्राकृत
लब्धस्वर्णपदक, जे. आर. एफ.
(नेट) पी-एच० डी०

सहायक आचार्य
प्राकृत भाषा एवं साहित्य
जैन विश्वभारती संस्थान
मान्य विश्वविद्यालय, लाडनूं
राजस्थान ३४१३०६

जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं
(मान्य विश्वविद्यालय)
१९९४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशक : जैन विश्वभारती संस्थान
(मान्य विश्वविद्यालय)
लाडनूं-३४१ ३०६ (राज०)

अर्थ सौजन्य : प्रेमचन्द तोलाराम बाफना चेरिटेबल ट्रस्ट
गोहाटी (असम)

© सर्वाधिकार सुरक्षित : लेखकाधीन

प्रथम संस्करण : १९९४

मूल्य : १५१/- रुपये

मुद्रक : जैन विश्व भारती प्रेस, लाडनूं-३४१ ३०६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रणति-निवेदन

इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता,
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम् ॥

उस दिव्यसुन्दरी चिन्मयी माता के चरणों में सादर प्रणति—

हरिशंकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समर्पण

यह ग्रन्थ समता धर्म के उद्भावक एवं विश्व मैत्री के साधक, परमविभूति-सम्पन्न, अणुव्रत-अनुशास्ता श्रीमत्पूज्यगुरुदेव गणाधिपति श्री तुलसी को समर्पित—

हरिशंकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आशीर्वचन

भारतीय संस्कृति में स्तुति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वैदिक, बौद्ध और जैन—तीनों परम्पराओं में इसका मुक्त उपयोग हुआ है। जैन आगम उत्तराध्ययन में स्तुति को मंगल माना गया है। यहां शिष्य ने गुरु से प्रश्न पूछा—थवथुइमंगलेणं भंते : जीवे किं जणयइ ? भन्ते ! स्तव और स्तुति रूप मंगल से जीव क्या प्राप्त करता है ? गुरु ने शिष्य की जिज्ञासा को समाहित करते हुए कहा—इससे ज्ञान, दर्शन और चारित्र की बोधि का लाभ होता है। प्राचीन आचार्यों ने स्तव और स्तुति में एक भेदरेखा खींचते हुए बताया है—स्तव बड़ा होता है और स्तुति छोटी। पर सामान्यतः उक्त दोनों शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते रहे हैं।

श्रीमद्भागवतपुराण में अनेक देवों की स्तुतियां उपलब्ध हैं। डा० हरिशंकर पाण्डेय ने उनका समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। उनके इस शोध निबन्ध पर मगध विश्वविद्यालय ने उनको डाक्टरेट की उपाधि दी है। श्री पाण्डेय एक श्रमशील और लगनशील व्यक्ति हैं। विद्या रसिक हैं। बल्कि यों कहना चाहिए कि विद्याव्यसनी हैं। पढ़ना और लिखना—दोनों ही उनकी रुचि के विषय हैं। श्री पाण्डेय का श्रम अपने आप में सार्थक हैं। पाठक प्रस्तुत ग्रन्थ का स्वाध्याय कर लेखक के श्रम को प्रोत्साहन दे सकते हैं, उसे अधिक सार्थक बना सकते हैं।

२५ अक्टूबर, १९९४
अध्यात्म साधना केन्द्र, नई दिल्ली

गणाधिपति तुलसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मंगलवचन

डा० हरिशंकर पाण्डेय ने 'श्रीमद् भागवत की स्तुतियों का समीक्षात्मक अध्ययन' प्रस्तुत किया है। भागवत सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है, उसमें भक्ति के अनेक रूप उपलब्ध हैं। श्री पाण्डेय ने उन्हें रसशास्त्रीय मीमांसा के साथ प्रस्तुत किया है। समीक्षा के आवश्यक तत्त्व हैं—अध्ययन, चिन्तन और मनन। प्रस्तुत प्रबन्ध में उन सबका आपात-दर्शन होता है। शोध-प्रबन्ध में यदि संकलन मात्र हो तो वह हमारी दृष्टि में उद्धरणों का पुलिन्दा हो सकता है। उसके साथ शोध शब्द को जोड़ना संगत नहीं है। प्रस्तुत प्रबन्ध में मीमांसा के तत्त्व परिस्फुट हैं, इसलिए इसे शोध-प्रबन्ध की भूमि पर प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

२५ अक्टूबर, १९९४
अध्यात्म साधना केन्द्र, नई दिल्ली

आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिमत

श्रीमद्भागवत महापुराण एक वैसा भक्ति-ग्रंथ है जिसकी प्रत्येक उक्ति रमणीय, मनोरम तथा हृद्य-लावण्य मण्डित है। भारतीय ऋषियों का परम उद्देश्य है—सत्य का साक्षात्कार, पूर्णत्व की प्राप्ति, आत्म स्वरूप की लब्धि। लेकिन इस महायात्रा में भयंकर शत्रु है—अहंकार अर्थात् धन-दौलत, विद्या-सम्पन्नता, रूप-सौन्दर्य, सम्प्रदाय-श्रेष्ठता, कुल-वरीयता आदि का गर्व इसके रहते मुक्ति की ओर चरण-न्यास भी संभव नहीं, लक्ष्य तक पहुंचना तो दूर की बात है। इसलिए हमारे ऋषियों ने भक्ति का आश्रय लिया, अहं-विलय का मार्ग खोजा।

भक्ति का एक अर्थ खण्डयित्री शक्ति भी होता है। दूसरे शब्दों में, अहंकार (भवरोग) विनाशिका शक्ति भक्ति है। भागवतकार ने इस सन्दर्भ में भक्ति के अनेक विशेषणों का प्रयोग किया है—आत्मरजस्तमोपहा, शोकमोह-भयापहा, संसृतिदुःखोच्छेदिका, मृत्युपाशविशातिनी, देहाध्यासप्रणाशिका, अशेषसंक्लेशशमदा आदि।

भागवतकार का लक्ष्य है—सत्य का साक्षात्कार, परमविशुद्धि की प्राप्ति। इस प्रसंग में अनेक संदर्भ उपलब्ध होते हैं। गर्भ स्तुति में भक्त कहते हैं—सत्यात्मकं त्वां शरण प्रपन्नाः। लेकिन जब तक अहंकार है उस सत्य को कौन प्राप्त कर सकता है? अहंकार का विलय तो भक्ति के बिना हो ही नहीं सकता। दार्शनिक प्रस्थानों में वैमत्य एवं भेदमोह का मूल कारण अहंकार ही है। जब तक वह दूर नहीं होता तब तक भेदरेखा बनी रहेगी, दार्शनिक विवाद होते रहेंगे। बड़े-बड़े संत, ज्ञानी एवं विद्वान् भी अहंकारवश अपनी संकुचित दृष्टि को छोड़ नहीं सकते। इसीलिए कहा गया है—

कामरागस्नेहरागावीषत्करनिवारणौ।
दृष्टिरागस्तु पापीयान् दुरुच्छेदः सतामपि॥

अहंकार विवादास्पद दर्शनों की प्रसवभूमि है। अहंकार-प्रसूत दर्शन सत्य तक नहीं पहुंच सकते। भक्ति का साध्य है—अहंकार विलय। अहंकार विलय होते ही भेदमोह का विलय होता है और तब होता है परम का साक्षात्कार। भागवतकार ने इस सत्य के उद्घाटन में काफी बल दिया है। पितामह भीष्म भक्ति के कारण ही विगत भेद मोह हो गए—'समधिगतो-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऽस्मिविधूतभेदमोहः ।' राजा परीक्षित् अहंकार के विनाश होते ही आत्मा की एकता रूप महायोग में स्थित हो गए—

ब्रह्मभूतो महायोगी निस्संगश्छिन्नसंशयः ।

—भाग पु० १२-६-१०

इसलिए भक्ति को कर्म, ज्ञान और योग से भी श्रेष्ठ कहा गया है—सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्योऽप्यधिकतरा, ना० भ० सू० २५। भक्ति के बिना किसी भी अन्य साधन से मुक्ति की प्राप्ति संभव नहीं है। प्रभु भक्ति से भक्त वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है, जिसे निर्विषयी संन्यासी लाख प्रयत्न के बाद भी नहीं पा सकते हैं।

राग-द्वेष की मुक्ति की बात सर्वत्र प्रतिपादित की गई है। ये ही संसार के मुख्य कारण हैं। परन्तु भक्ति के बिना इनसे भी छुटकारा नहीं मिल सकता। भक्त भक्ति से मुक्त बन्धन वाला हो जाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में श्रीमद्भागवत की स्तुतियों पर नया प्रकाश डाला गया है। लेखक की समीक्षा शक्ति अत्यन्त प्रशंसनीय है। वह स्तुतियों के हृदय को इतना स्पष्ट कर देते हैं कि पाठक को भक्ति की सहज अनुभूति होने लगती है। स्तुतियों में समाविष्ट दार्शनिक एवं धार्मिक दृष्टियों का संकलन लेखक ने अत्यन्त विवेकपूर्वक किया है, जिससे पाठक सहज ही यह जान सकता है कि दार्शनिक जगत् को भागवत की क्या देन है। भागवत के प्रथम श्लोक में जिस परमसत्य का निर्देश किया गया है, वह सभी भारतीय दर्शनों को किसी न किसी रूप में मान्य है। इस तथ्य को लेखक ने ग्रन्थ के चतुर्थ अध्याय के प्रारम्भ में स्पष्ट कर दिया है। डा० पांडेय ने पांचवे, छठे एवं सातवें अध्याय में क्रमशः स्तुतियों का काव्यमूल्य एवं रसभाव योजना, स्तुतियों में अलंकार, स्तुतियों में गीतितत्त्व, छन्द और भाषा के अन्तर्गत श्रीमद्भागवत के स्तुतियों का काव्यशास्त्रीय, रसशास्त्रीय, अलंकार शास्त्रीय गीतिशास्त्रीय एवं छन्दशास्त्रीय विवेचन करने का सफल प्रयास किया है। आठवें अध्याय में समस्त ग्रन्थ का उपसंहार दिया गया है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के अध्ययन से भक्ति-दर्शन के जिज्ञासु लाभान्वित होंगे एवं दार्शनिक जगत् को इस विषय पर और अधिक अन्वेषण का प्रोत्साहन मिलेगा। इस ग्रंथ का बहुशः प्रचार अभीष्ट है।

लाडनूं
५.१२.९४

—नथमल टाटिया
निदेशक : अनेकांत शोधपीठ
जैन विश्वभारती, लाडनूं
(राजस्थान)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राक्कथन

पुराणों में विशालता की दृष्टि से स्कन्ध पुराण सबसे बड़ा है पर विषय वस्तु की दृष्टि से श्रीमद्भागवत पुराण का महत्त्व अद्वितीय है। इसमें महापुरुष एवं देवों के जीवन-वृत्त, आख्यान, उपाख्यान, रूपक-कथाएं, नीति एवं अध्यात्मपरक उपदेशों और शिक्षाओं के अतिरिक्त भक्तिरस से परिपूर्ण १३२ स्तुतियां उपन्यस्त हैं।

श्रीमद्भागवत की स्तुतियों का समीक्षात्मक अध्ययन नामक प्रस्तुत शोध प्रबन्ध आठ अध्यायों में विभक्त है। प्रत्येक अध्याय के उपशीर्षकों में भक्तिरस से प्लावित स्तुति काव्य से सम्बद्ध विभिन्न पक्षों का गम्भीर एवं महत्त्वपूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। विषय गम्भीर होने पर भी उसका प्रतिपादन सरस, प्रांजल एवं सहज-ग्राह्य भाषा में किया गया है।

स्तुति महापुरुष, देव अथवा किसी समर्थ व्यक्ति की हो सकती है। समर्थ के गुणों पर विश्वास, श्रद्धा और आस्था से भक्ति का उद्रेक होता है और भक्ति का उद्रेक ही स्तुति-काव्य की जन्मभूमि है।

स्तुतियों का परम प्रयोजन दुःख निवारण या आत्मविशुद्धि की भावना है। महर्षि वशिष्ठ की उक्ति है कि दुःख के समय मनुष्य को हरि-स्मरण करना चाहिए। इसी उपदेश को यादकर द्रौपदी ने अपने चिरहरण की दुःखद स्थिति में कृष्ण को पुकारती है—

गोविन्द द्वारिकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव॥
हे नाथ हे रमानाथ ब्रजनाथार्तिनाशन।
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन॥
कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम्॥

—महाभारत, सभापर्व ६८.४१-४३

यह स्तुति काल की दृष्टि से अतिप्राचीन है और श्रीमद्भागवत पुराण की स्तुतियों का उपजीव्य है।

पूर्वकृत कर्मों के संस्कार से संसारिक जीव मोह, क्रोध, मान, माया,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोभ रूप पांच विकारों को अपने स्वामी के रूप में वरण कर लेता है। मोह आत्मा और उसके शील एवं गुणों को दाव पर लगा देता है। आत्मा का वैभव, श्री तथा शोभा का चिरहरण की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, उस समय अपने शील और स्वरूप की रक्षा के लिए आत्मा की जो पुकार होती है, वही पर आत्म-शुद्धिपरक स्तुति का जन्म होता है।

आत्म शुद्धि के लिए की गई स्तुतियां—जिनमें संसारिक सुख या लिप्सा पूर्ति की कामना नहीं रहती केवल आत्मा को गुणों से पूर्ण करने की प्रार्थना होती है। 'सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु' मुक्त आत्माएं मुझे मुक्ति पद प्रदान करें। यह स्तुत्य के गुणों के अपने में धारण करने की प्रक्रिया है और यही स्तुति का पवित्रतम लक्ष्य होता है।

हिन्दी भाषा में निबद्ध प्रस्तुत शोधग्रन्थ प्रभूत नवीन सामग्री उपस्थित करता है। मेरी जानकारी के अनुसार श्रीमद्भागवत की स्तुतियों पर इस प्रकार का यह सर्वप्रथम ग्रन्थ है। लेखक साधुवाद के पात्र हैं। उनके परिश्रम और शोधवृत्ति ने एक उपयोगी समीक्षा-ग्रन्थ देकर भारतीय स्तुति-विद्या की प्रभूत श्रीवृद्धि की है। विद्वान् पाठक इस सेवा से अवश्य ही लाभान्वित होंगे।

लाडनूं
शिवरात्रि
१.१२.९४

श्रीचन्द रामपुरिया
कुलाधिपति
जैन विश्व भारती संस्थान
मान्य विश्वविद्यालय लाडनूं
(राजस्थान)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

भारतीय-साहित्य में श्रीमद्भागवत का महत्त्व सर्व विदित है और यह ग्रंथ विद्वानों तथा भक्तिप्रिय सर्व-सामान्यजनों में भी हजारों वर्षों से अतिशय लोकप्रिय रहा है। इसका महत्त्व एवं व्यापक लोकप्रियता इसी तथ्य से प्रकट है कि श्रीमद्भागवत कथा के कथावाचक विद्वानों को लोक में 'भागवती पंडित' की संज्ञा से अभिहित किया जाता है और उसकी पहचान अन्य शास्त्रज्ञों से पृथक्शः की जाती है। ऐसे महत्त्व के भक्ति-ग्रंथ में विद्यमान स्तुतियों का समीक्षण डॉ० हरिशंकर पांडेय ने व्यापक काव्य-शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में किया है।

मैंने डॉ० पांडेय के इस समीक्षा कार्य का अत्यन्त एवं रुचि मनोयोग से अवलोकन किया है। डॉ. पांडेय ने श्रीमद्भागवत की स्तुतियों का शोध के विविध आयामों से बहुत अच्छा वैदुष्यपूर्ण गंभीर विश्लेषण विवेचन किया है। मुझे विश्वास है, विद्वज्जगत में इसका समादर होगा। डॉ० पांडेय के लिए शुभकामनाएं है कि वे अपने गम्भीर अध्ययन एवं अनुसंधान से भारतीय ख्याति के ऐसे ग्रन्थों का मर्म उद्घाटित करके यशस्वी हों।

शिवरात्रि,
१ दिसम्बर १९९४

मांगीलाल जैन
(का०) कुलपति
जैन विश्वभारती संस्थान
मान्य विश्वविद्यालय
लाडनूं (राजस्थान)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूमिका

निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ।
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥

कालव्यालमुखग्रासनिर्णाशकारक, तापत्रयविनाशक, अज्ञानध्वान्त-विध्वंसकोटिसूर्यसमप्रभा विभूषित, सकलकल्मषकलुषविध्वंसक, सर्वसिद्धान्त-निष्पन्न, संसारभयनाशन, भक्त्योघवर्धक, मुक्तिदायक, कृष्णप्राप्तिकर, कृष्ण-संतोषहेतुक, पावनानां पावनः, श्रेयसां श्रेयः, भगवद्विभूति, भगवत्स्वरूप आदि विशेषणों से विभूषित श्रीमद्भागवत महापुराण वैयासिकी प्रतिभा का चूड़ान्त निदर्शन है। सृष्ट्यारंभ में इस अज्ञानापास्तक ज्ञानप्रदीप का दान भगवान् नारायण ने किंकर्तव्यविमूढ़ ब्रह्मा को दिया। ब्रह्मा ने नारद को, नारद ने व्यास को, व्यास ने शुकदेव को और शुकदेव ने परीक्षित् को इस ज्ञानदीप का दान दिया। यह अजस्रा एवं अविच्छेद्या प्रस्रविणी संपूर्ण वसुन्धरा को आप्यायित करती हुई अन्त में "तत्शुद्धं परमं विशोकममलं सत्यंपरं धीमहि" में परम विश्रान्ति को प्राप्त हो जाती है।

भागवतपद संज्ञा और विशेषण दोनों अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। आत्म-लाभार्थ भगवत्प्रोक्त जो उपाय है उन उपायों को भागवत धर्म कहा गया है। (११.२.३४,६.१६ ४०,४३) भक्त के लिए भी अनेक बार इस शब्द का प्रयोग हुआ है (११.२.४५,७.१०.४३, १.१८ १६)। भगवताप्रोक्तम् (२.९.४३) भगवत्प्रोक्तम् (२.८ २८) भगवतोदितम् (२.७.५१) मयाप्रोक्तम् (३.४.१३) प्रोक्तं किलैतद् भगवत्तमेन (३.८.७) साक्षात्भगवतोक्तेन आदि भागवतीय वचनों के अनुसार "भगवान् का वचन" भागवत पदार्थ है। "तेनप्रोक्तम्" (पाणिनि सूत्र ४.३.१०१) इस सूत्र से भगवत् शब्द से प्रवचन अर्थ में अण् प्रत्यय हुआ है। भगवत् शब्द समस्त अवतारों (५.१८.२) समस्तदेवों (५.१९.१५) समस्त आचार्यों (९.१.१३) ऋषियों, सगुण-निर्गुण ब्रह्म (१.२.११,१ ५.३७) आदि के अर्थ में विनियुक्त हुआ है। भग शब्द से वतुप् करने पर भगवत् बना है। भग षड्पदार्थ युक्त है —

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीर्यते ॥

अर्थात् समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य को भग कहते हैं, जो भगयुक्त है वह भगवान् है और भगवान् द्वारा कथित प्रवचन भागवत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। श्रीमान् और भागवत मिलकर श्रीमद्भागवत बना है। भावार्थदीपिका प्रकाश में वंशीधर कहते हैं—

श्रीमद्भागवते ऋचः सामानि यजुंषि सा हि श्रीरमृता सताम्" इति श्रुतेर्वेदाभ्यास एव श्रीः सा विद्यतेऽस्यास्मिन्वेति श्रीमान् "ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीयते॥ इति स्मृतेर्भगः षड्विधमैश्वर्यं सोऽस्यास्तीति भगवान् कृष्णस्तं भगवंतमुपास्त इति भागवतः। अत्र कारणादण्, श्रीमांश्चासौ भागवतश्चेति श्रीमद्भागवत स्तस्मिंस्तथा।[1] अर्थात् "ऋचः सामानि यजुंषि सा हि श्रीरमृता सताम् "इस श्रुतिवाक्य के द्वारा यह प्रतिपादित होता है कि श्रुति का अभ्यास ही श्रीशब्द वाच्य है, जिसमें यह श्री विद्यमान हो वह श्रीमान् है। समस्त ऐश्वर्य, धर्म, यश श्री ज्ञान और वैराग्य इत्यादि छः भग अथवा षड्विध ऐश्वर्य जिसमें विद्यमान हो वही भगवान् श्रीकृष्ण हैं और जिसमें श्रीकृष्ण की उपासना की गई हो वह भागवत है। भगवत् शब्द से 'कारणादण्' प्रत्यय होकर भागवत बना है। श्रीमान् और भागवत मिलकर श्रीमद्भागवत हुआ। श्रीराधा रमण गोस्वामी विरचित दीपिनी व्याख्या में कहा गया है—

साक्षात्भगवताप्रोक्तम् भागवतम् इति निरुक्त्या
योगरूढोऽयं भागवत शब्दः न तु यौगिकः।[2]

व्याख्याकार श्री शुकदेव के अनुसार - भगवत्स्वरूप गुणादिवर्णनरूपा श्री विद्यते यस्मिंस्तद् श्रीमत्। भगवत इदं भागवतम् तच्च तच्च तत्।[3]

अर्थात् भगवान् द्वारा कथित या प्रवाचित ग्रन्थ श्रीमद्भागवत है। श्रीमद्भागवत, श्रीभागवत, भागवती संहिता, नारायणी संहिता, पारमहंसी संहिता, सात्वती संहिता, वैयासिकी संहिता, सात्वतीश्रुति, भागवती श्रुति, ज्ञानप्रदीप, पुराणार्क आदि विभिन्न अभिधान इस महापुराण के प्राप्त होते हैं।

सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय आदि दस लक्षणों से युक्त होने के कारण यह महापुराण है।[4] द्वादशस्कन्धात्मक इस महापुराण में पूर्ण श्लोक संख्या १६१९५ "उवाच मंत्रों की संख्या १२७०, अर्द्धश्लोक २०० एवं "अमुक स्कंधे प्रथमादिरध्यायः" आदि ३३५ वाक्य मिलकर १८००० श्लोकों की संख्या हो जाती है।

---

१. विविध टीकोपेत श्रीमद्भागवत महापुराण, पृ० सं० ७४
२. श्रीमद्भागवतमहापुराण पर दीपिनी व्याख्या
३. श्रीमद्भागवतमहापुराण, सिद्धांत प्रदीप—पृ० ७४
४. श्रीमद्भागवतमहापुराण २.१०..१-७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमद्भागवतमहापुराण भगवत्प्रोक्त किंवा भगवत्स्वरूप है। यह भक्ति का प्रतिपादक ग्रन्थ है। भक्ति के विविध अङ्गों का साङ्गोपाङ्ग विवेचन किया गया है। ज्ञान, वैराग्य एवं मोक्ष आदि में सबसे श्रेष्ठ भक्ति को बतलाया गया है। जिसके साक्षात् उदाहरण परीक्षित् हैं।

इसमें पात्रों की विविधता है। उच्च-नीच, राजा-रंक, विद्वान्-मूर्ख, सभी वर्गों के पात्रों का चरित्र उपलब्ध होता है। एक ओर श्रीशुकदेव, नारद, सूत, कुमार आदि बड़े-बड़े आचार्य हैं तो दूसरी तरफ व्रज के लोग हैं। प्रज्ञा चक्षु पितामह भीष्म, अर्जुन, पृथु, अम्बरीष, जैसे भक्त हैं तो कंश, हिरण्यकशिपु आदि जैसे ज्ञानी विद्रोही लोग भी हैं।

यह दलितो का उद्धारक है। इसमें सामान्य जनसुलभ भक्तिमार्ग का सरल विवेचन किया है। भक्ति के द्वारा पुण्यात्मा-पापी, धर्मी-अधर्मी सबके सब मुक्त हो जाते हैं। पुतना, कुब्जा, कंश, जैसे लोग भी भगवत्पद को प्राप्त करते हैं। सुदामा माली, कंश का दर्जी, गोकुल की अनाथ रमणियां, आजामिल जैसे घोरपापी गज-ग्राह जैसे पशु, और सर्पादि तिर्यञ्च भी मुक्ति लाभ करते हैं। दुराचारी, विमार्गी, क्रोधी, कुटिल कामी, ब्रह्महत्या करने वाला दाम्भिक, मत्सरिण, क्रूर, पिशाच, निर्दयी, पातकी और शठादि क्षण-भर में भगवान् को प्राप्त कर लेते हैं।

श्रीमद्भागतमहापुराण की प्रमुख विशिष्टता है—"भागवतकार की समन्वय भावना। इसमें सांख्य, मीमांसा, योग, न्याय, वेदान्त आदि सभी दर्शनों का स्वस्थ समन्वय कर भक्ति में उनका पर्यवसान किया गया है। विभिन्न दर्शनों के अतिरिक्त एक ही दर्शन के विभिन्न मतों में भी एकरूपता स्थापित की गई है।

आख्यानों एवं कथानकों के माध्यम से विविध तत्त्वों का विवेचन किया गया है। दार्शनिक तत्त्वों की गम्भीरता, भाषिक दुरूहता तथा विविध विद्याओं के विवेचन होने से 'विद्यावतां भागवते परीक्षा' और 'भागवते विद्यावधिः' इत्यादि सूक्तियां प्रचलित हैं।

उपर्युक्त गुणोपेत श्रीमद्भागवतमहापुराण निगमकल्पतरू का सुस्वादु पका फल है, जिसमें केवल रस ही रस है और स्तुतियां उस सुस्वादु-फल के सत्त्व हैं। अथवा भागवत रूप पुरुष-शरीर का स्तुतियां प्राण तत्त्व हैं।

स्तुतियों में विविध विषयों – दर्शन, ज्ञान, लोक आदि के अतिरिक्त प्रधान रूप से भक्ति का विवेचन किया गया है। अकल्मष एवं स्वच्छ हृदय से निःसृत होने से स्तुति का महत्त्व सार्वजनीन है। स्तुति एक धार्मिक प्रक्रिया ही नहीं बल्कि मनोवैज्ञानिक आधार भी है, उसके द्वारा हृदय परिमार्जित हो जाता है। उसके द्वारा भक्त परमश्रेष्ठ स्थान को प्राप्त कर लेता है। सम्पूर्ण वक्रता तिरोहित होकर ऋजुता का रूप धारण कर लेती है और जहां ऋजुता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है वहीं विशुद्धि है और विशुद्धि ही मोक्ष अर्थात् समस्त ग्रन्थियों का उच्छेदक है।

इस प्रकार विविध गुणों के कारण इस शोध प्रबन्ध में मेरी प्रवृत्ति हुई है। यह शोध प्रबन्ध आठ अध्यायों में विभक्त है।

प्रथम अध्याय में स्तुति शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ, पर्याय शब्द, स्तुत्यर्थक धातुएं, श्रीमद्भागवत में स्तुति एवं स्तुत्यर्थक शब्द, स्तुति प्रार्थना और उपासना, स्तुति और भक्ति, स्तुति का आलम्बन, स्तुति के प्रमुख तत्त्व, स्तुति का मनोवैज्ञानिक आधार, स्तुति का महत्त्व आदि विषयों पर विचार प्रस्तुत किया गया है।

"संस्कृत में स्तुति काव्य की परम्परा" नामक द्वितीय अध्याय में स्तुत्योद्भव के अवसर, वैदिक साहित्य में स्तुतियां, ऋग्वेद की स्तुति सम्पदा अन्य वेदों में निबद्ध स्तुतियां, महाकाव्यों एवं पुराणों की स्तुति सम्पत्ति, रामायण की स्तुतियां, महाभारत की स्तुतियां, विष्णुपुराण की स्तुतियां, महाकाव्यों की स्तुति सम्पदा और अन्य स्तुति साहित्य आदि विषयों का विवेचन किया गया है।

तृतीय अध्याय "भागवत की स्तुतियां : स्रोत, वर्गीकरण एवं वस्तु-विश्लेषण" में भागवतीय स्तुतियों एवं वैदिक स्तुतियों में अन्तर, श्रीमद्-भागवत महापुराण की स्तुति सम्पदा, श्रीमद्भागवत की स्तुतियों का स्रोत, उनका वर्गीकरण एवं प्रमुख स्तुतियों का वस्तुविश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

"दार्शनिक एवं धार्मिक दृष्टियां" नामक चतुर्थ अध्याय में श्रीमद्-भागवतमहापुराण की स्तुतियों के परिप्रेक्ष्य में ब्रह्म, माया, जीव, जगत्, संसार, स्तुतियों में भक्ति का स्वरूप, भक्ति का वैशिष्ट्य, स्तुतियों के आधार पर देवों का स्वरूप, श्रीकृष्ण, विष्णु, शिव, राम, संकर्षण, नृसिंह एवं देव नामों का विवेचन आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

श्रीमद्भागवत महापुराण की स्तुतियों का काव्य मूल्य एवं रसभाव-योजना नामक पंचम अध्याय में भागवतीय स्तुतियों का काव्य मूल्य, स्तुतियों की भावसम्पत्ति एवं रसविश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

श्रीमद्भागवत महापुराण की स्तुतियों में अलंकार नामक षष्ठ अध्याय में काव्य सौन्दर्य एवं अलंकार योजना, स्तुतियों में अलंकार विनियोग, स्तुतियों में बिम्बयोजना एवं प्रतीक विधान आदि का विवेचन किया गया है।

सप्तम अध्याय में श्रीमद्भागवत महापुराण की स्तुतियों में गीति-काव्य के तत्त्व, स्तुतियों में छन्द योजना एवं स्तुतियों की भाषा पर प्रकाश डाला गया है। आठवें अध्याय में उपसंहार अनुस्यूत है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि श्रीमद्भागवत महापुराण में स्तुतियों का अत्यधिक महत्त्व है। वैसे तो भक्ति की पावनी गंगा वेदों से ही निःसृत हुई है परन्तु भागवत में गति और स्थिरता प्रदान कर उसे महिमान्वित बनाया गया है। भक्ति का ही अनिवार्य तत्त्व स्तुति है। अन्यत्र भी स्तुतियां उपन्यस्त है किन्तु वैविध्य, उदात्तता एवं उत्कृष्टता के कारण श्रीमद्भागवत महापुराण की स्तुतियों का अपना महत्त्व है। न केवल धार्मिक या आध्यात्मिक दृष्टि से ही स्तुतियों का महत्त्व है बल्कि साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक सामाजिक आदि सभी दृष्टिकोणों से भी इनकी उपयुज्यता सिद्ध है। स्तुतियों के विभिन्न पक्षों पर इस शोध प्रबंध मे यथासभव प्रकाश डालने का विनम्र प्रयास किया गया है।

कृतज्ञताज्ञापन

मंगल के मूर्तिमन्त विग्रह, विश्व-मैत्री के पुरस्कर्ता परम आदरणीय गुरुदेव श्री तुलसी के चरण-कमलों में मेरी वृत्तियां, मन और इन्द्रियां सर्वात्मना समर्पित हो रही हैं, जिन्होंने दूर-देश से आगत मेरे जैसे अबोध बालक को अनपायिनी-शीतलछाया और स्नेह की समर्थ पृष्ठभूमि प्रदान की, जिस पर बैठकर मेरे जैसे जीव ने भी मनुष्यत्व की भूमिका में प्रवेश करने का सामर्थ्य प्राप्त कर लिया। गुरु की सर्व-व्यापी सत्ता में इनका प्रकाशमय देदीप्यमान रूप देखा। चारों तरफ से अपनी दिव्य ज्योत्सना से आह्लादित कर गुरुदेव ने इस बच्चे को पुरुषार्थी बनने का सामर्थ्य प्रदान किया। मैं भागवत की भूमिका में बैठकर उस महागुरु को प्रणाम करता हूं और यह कामना करता हूं कि उनकी अहैतुकी कृपा एवं सहज-प्रेरणा मेरे मानस-मन्दिर में स्फूर्त होती रहे, जिससे उनके सपनों को साकार करने में अहर्निश लगा रहा हूं।

श्रद्धास्पद, स्नेहखनि एवं 'सर्वं द्वैधं व्रजति विलयं नाम विश्वासभूमौ' रूप विश्वास-पुरुष आचार्यश्री महाप्रज्ञ के पदकमलों में सब कुछ समर्पण है, जिन्होंने भौतिक-परिचय के बिना ही मुझे सहज रूप में स्वीकार कर अपना अवितथ आशीष प्रदान किया। इनके पौद्गलिक प्रतिकृति से उद्भूत ज्ञान की किरणें नैसर्गिक रूप से मेरे मानस पटल पर अधिकार कर चुकी हैं। जब से मैं इनके सान्निध्य में आया, तब से मेरी वृतियां उपशम रस में समाहित होती रही हैं।

एक ही धन है मेरे पास—मातृदेव की पूजा, मातृ जाति के प्रति श्रद्धा। यहां भी उस रूप को देखा। माता विभूति सम्पन्ना साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा के पौद्गलिक चरण नख से उद्भूत स्वर्णिम प्रकाश-किरणों से मेरा जीवन पथ आलोकित हुआ, जगमगा गया, मुझे दीदावरी मिल गई।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चरण-नख के दर्शन से कुछ और हो जाता है। बस, यही होता रहे, इसी की कामना।

मैं इन तीनों महापुरुषों के प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति अर्पित करता हूं। इन्होंने मेरा वरण किया और अपने स्वरूप को मेरे समक्ष विवृणित किया। आज मैं जो कुछ भी हूं, उन्हीं का हूं और मेरी कामना है कि मैं सदैव उन्हीं का बना रहूं और अपने जीवन को धन्य करूं। सम्पूर्ण चारित्रात्मक वर्ग मान्य साधु-साध्वी एवं समण-समणी का प्रभूत आशीर्वाद मुझे मिला। विद्या-गुरु भी मिले। मंगल साधक प्राकृत-विद्या गुरु के प्रति शत-शत प्रणति। इनमें चिदम्बरा-चिन्मयी रूप भी देखा—उस शाश्वत सत्ता को प्रणाम।

विश्व प्रसिद्ध विद्वान् डा० नथमल टाटिया (दादा गुरु) एवं दादी-माता का परमस्नेह और आशीर्वाद इस कार्य में सहायक रहा।

मेरे शोध निर्देशक विविधविद्याओं में निष्णात, संस्कृत-प्राकृत-पालि के पारदृश्वा पण्डित मान्यमनीषी गुरुवर डॉ० राय अश्विनी कुमार, प्राध्यापक एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग मगध विश्वविद्यालय, बोधगया का ध्यान आते ही मन, वचन काय और सर्वेन्द्रिय अपने बाह्य व्यापार को त्यागकर उन्हीं के पादपंकजों में स्थित हो जाना चाहती हैं। सचमुच यह धरती, यह भारत माता ऐसे ही सपूतों के कारण आज इस घोर कलिकाल में स्थिर है। गुरु, पिता, माता, भाई और मित्र आदि पांचों रूप इस देव में मैंने एक साथ पाया। जब मेरी नींद खुली तो प्रथम दर्शन इसी महामनीषी के हुए। यहीं नहीं जब पता किया तो जागरण देने वाले भी यही युगकल्प थे। जब-जब गिरा तब-तब इन्हीं के बाहुबल पर उठा, जब दिग्मूढ हुआ तब इन्होंने राह दिखला दी, संसारानल में जब जलने लगा तो इनके हृदय से शीततोया-प्रेम-सलिला फूट पड़ी, जब इस रेगिस्तानी भूमि में अपने को कमजोर पाया तो इन्होंने अपने गोद में उठाकर पुत्र से भी आगे स्थान दिया। जब मेरा संसार हिलने लगा तो इन्होंने शेष की तरह उसे धारण किया। जब-जब विपत्ति की घोर समुद्र में गिरा तभी इनका असली रूप पाया। इन्होंने इस अबोध को विबोधित किया, चलना सीखलाया, राह दिखलायी और दिखला दी अनन्त-ज्ञानाम्बुधि को। जिसने निस्वार्थ भाव से सूर्य की तरह मेरे जीवन पथ को आलोकित किया, चन्द्रमा की तरह संसारानल में दग्ध को शीतलता प्रदान की, गंगा की तरह पापों का प्रशमन किया, अनन्त विस्तृत आकाश की तरह अपनी छाया में शरण दिया, मूर्त्तिकार की तरह अश्माखण्ड को तराशकर मूर्त्ति का रूप दिया तथा अन्त में सृष्टिकर्त्ता की तरह निर्जीव मूर्त्ति में प्राण डालकर जीवन्त बनाया। मेरा मन वृत्तियां आदि सब कुछ इस महाप्रभु के चरण में जन्म-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जन्मान्तर लगी रहें—यही मेरी कामना है।

गुरु का घर अपना घर होता है—ऐसा किसी ने सुना होगा—लेकिन मुझे प्रत्यक्ष दर्शन का सौभाग्य मिला। अम्मा की ममता, स्नेह से मुझे ऐसा लगा कि उन्हीं के गर्भ से उत्पन्न पुत्रों में से सर्वप्रथम मैं ही हूं। ऐसे लोग इस स्वार्थी संसार में विरले ही होते हैं। एक अबोध सद्यःजन्मा शिशु की तरह अम्मा ने मुझे शीतल छाया प्रदान की। हे प्रभो! यदि मैंने कुछ पुण्यकार्य किया हो तो जन्म-जन्मान्तर अम्मा की शीतल छाया प्रदान करना।

गुरु पुत्र तीनों भाइयों—राजीव, संजीव और आनन्द एवं तीनों बहनों का आशीष एवं मंगलकामनाएं काम आई। आनन्द के प्रति कोई शब्द उसके महनीय व्यक्तित्व एवं अखण्ड-सहोदरत्व को अंकित नहीं कर सकता। उसने सिर्फ मुझे ही देखा। सुजाता दीदी के आशीष एवं कविता, जया तथा अनुजवधू ज्योति की मंगलकामनाएं भागवत-यात्रा में सहयोगिनी बनी। जीजाजी श्री नवनीत कुमार एवं उनके माता-पिता का प्रभूत सहयोग रहा।

योगनिष्ठ, अध्यात्म-गुरु डॉ० लक्ष्मीनारायण चौबेजी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन में शब्द असमर्थ हैं। आज जो कुछ भी हूं उसी महामनीषि की देन है। वे मेरे चतुर्व्यूह गुरु परम्परा में प्रतिष्ठित बीज-गुरु हैं। भैया भी हैं। जब भी मैं कलियुग का मार खाकर गिरा तो उठाया, सबल बनाया और गन्तव्य तक जाने के लिए उत्साह भी भर दिया।

साहित्य मर्मज्ञ डॉ० मारुतिनन्दन पाठकजी प्राध्यापक (संस्कृत विभाग मगध विश्वविद्यालय) शत-शत नमनीय हैं। गुरु और पितृव्य के कर्त्तव्य का एक साथ निर्वाह किया। इनका अमल प्रेम और आशीर्वाद ही इस शोध यज्ञ में सहायक रहा। सत्यद्रष्टा ऋषि की तरह इन्होंने मेरे प्रति जो कुछ निर्दिष्ट किया वह महार्घ्य है।

बनारस हिन्दू-विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के आचार्य गुरुवर्य डॉ० वीरेन्द्र कुमार वर्मा एवं दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के आचार्य डॉ० गुरुदेव ब्रजमोहन चतुर्वेदी का पूर्ण आशीर्वाद मिला। शोध-परीक्षक के रूप में दोनों महान् मनीषियों के प्रदत्त सुझाव एवं निर्देश अधिक सहायक हुए।

जन्मदातृ माता-पिता के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं जिसने जन्म दिया, पालन पोषण किया और वंश परंपरागत विद्या को मेरे संस्कार में अधिष्ठित किया। पूज्य पिता डॉ० शिवदत्त पाण्डेयजी का विविध विद्याओं का ज्ञान, उनकी प्रतिभा और विवेचन शैली की इस शोध प्रबन्ध की पूर्णता में मुख्य भूमिका रही। पूज्य चाचाजी श्री शिवपूजन पाण्डेय के प्रति मेरा रोम-रोम ऋणी है जिनकी अनाविल मानसिकता ने मुझे विद्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षेत्र में अग्रसर किया।

मां ! कितना सुन्दर ! दिव्य सुन्दर ! उसका स्नेह, प्यार और वीरत्व की कला ने ही मेरे जैसे पामर जीव को भी सामर्थ्यवान् बनाया। भैया और भाभी दोनों ने माता-पिता के समान ही मुझे आगे बढ़ाया। भैया श्री हरिहर पाण्डेय (वायुसेना) ने 'भैया' पद छोड़कर पिता का स्थान लिया और भाभी ने मातृत्व-धर्म का निर्वाह किया। इस युग में भी राम-सीता की परिकल्पना सत्य एवं साकार है। दोनों बड़ी बहनों एवं दोनों जीजाजी ने अभूतपूर्व सहयोग दिया। पूज्या बहनें रात-दिन हम भाइयों के संवर्द्धन की ही कामना करती हैं। यह विद्या-यज्ञ की पूर्ति उन्हीं के एवं सहज शीलवान् एवं कर्म-योगी जीजाजी लोगों के आशीर्वाद का फलित रूप है। आयुष्मान् विनोद का सहयोग काफी काम आया।

भार्या गीता ने कृष्ण-गीता की तरह मुझे विद्यारूपी कर्म भूमि में वीर अर्जुन बनाया। अनुज रामाशंकर मेरा अपर पर्याय है। हर क्षण लक्ष्मण की तरह धनुष-बाण लिए मेरे पीछे खड़ा रहता है। अनुज-वधू अनीता का काफी सहयोग रहा। पप्पु, झप्पु, बुची, पवन, टुनटुन एवं शिवा सबने अपने अनुसार इस कार्य में सहयोग दिया। हम सबकी मंगल कामना करते हैं। श्वसुर पूज्य श्री प्रयाग उपाध्याय, श्री गुप्तेश्वर पाण्डेय एवं श्री वैद्यनाथ तिवारी का आशीर्वचन काम आया। बाबा स्व० भुवनेश्वर पांडेय एक महान् तपस्वी एवं तुरीयावस्था को प्राप्त योगी थे। उनका अवितथ आशीर्वचन भी मुझे मिला।

विश्वविद्यालय-अनुदान आयोग के सम्पूर्ण अधिकारीगण एवं कर्म-चारीगण धन्यवाद के पात्र है जिनके द्वारा प्रदत्त शोधवृत्ति ही इस कार्य में सहायिका बनी। मगध विश्वविद्यालय के अधिकारीगण एवं कर्मचारी वर्ग के प्रति कृतज्ञ हूं जिन्होंने काफी सहयोग किया। केन्द्रीय पुस्तकालय के अधिकारी एवं कर्मचारीगण, संस्कृत विभाग के श्री पाठकजी (पुस्तकालयाध्यक्ष) श्री छोटेलालजी (बड़े बाबू) एवं श्री रामदेव सिंहजी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं।

जैन विश्व भारती एवं जैन विश्व भारती मान्य विश्वविद्यालय के सभी अधिकारियों, प्राध्यापकों एवं कर्मचारियों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता समर्पित करता हूं। जैन विश्व भारती के पूर्व अध्यक्ष सम्प्रति कुलपति, उदारचेता श्री श्रीचन्दजी बैंगानी, माननीय मंत्री श्रीमान् झूमरमलजी बैंगानी, उपमंत्री श्रीयुत् कुशलराजजी समदड़िया एवं अन्य अधिकारीगण ने इस कार्य में प्रभूत सहयोग दिया। में उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं।

मान्य विश्वविद्यालय के कुलाधिपति महोदय, विविध विद्याओं में निष्णात, विद्या-पुरुष, वदान्य श्रीचन्द रामपुरियाजी का आशीर्वाद काम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आया। माननीय कुलपति श्री मांगीलालजी जैन का प्रभूत शुभाशंसन मिला। शेष सम्पूर्ण परिवार मेरे विद्यायज्ञ में सहायक है। जै० वि० सं० के केन्द्रीय पुस्तकालय के अध्यक्ष एवं तुलसी प्रज्ञा के सम्पादक डॉ० परमेश्वर सोलंकीजी का काफी सहयोग प्राप्त हुआ।

प्रेमचन्द तोलाराम बाफना चेरिटेबल ट्रस्ट गोहाटी के प्रति हम हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं जिन्होंने सहृदयतापूर्वक इस विद्या-यज्ञ की पूर्त्ति के लिए आर्थिक योगदान दिया। भागवत-प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि उनका यश, कीर्ति, धन एवं सदाशयता अहर्निश संवर्द्धित होती रहें। यह ट्रस्ट सम्पूर्ण-देश में विद्या-विकास, विकलांग-सेवा एवं आतुर-सेवा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है।

जैन विश्व भारती प्रेस परिवार सर्वदा धन्यवादार्ह है। सभी लोगों ने अपनत्व की भावना से इस कार्य का सम्पादन किया। श्री जगदीशजी, मैनेजर, श्री कौशलजी एवं अन्य उनके सहयोगी जनों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं, जिनके कारण ही यह शोध प्रबन्ध इस रूप में तैयार हुआ।

अन्त में उन सभी विद्वानों, अधिकारियों एवं महानुभावों के प्रति कृतज्ञताज्ञापित करता हूं जिनका प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में इस शोधकार्य में सहायता मिली। ग्रन्थ में जो कुछ भी दोष है वह मेरा और यत्किञ्चित् भी रसिक समुदाय लाभान्वित होगा, उससे मेरी साधना की सफलता होगी, आत्मतोष मिलेगा।

जैन विश्वभारती संस्थान
मान्य विश्वविद्यालय
लाडनूं
शिवरात्रि, वृहस्पतिवार
१.१२.९४

विनयावत
हरिशंकर पाण्डेय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमणिका

	पृष्ठ संख्या
प्रणति निवेदन	तीन
समर्पण	चार
आशीर्वचन	पांच
मंगलवचन	छः
अभिमत	सात-आठ
प्राक्कथन	नौ-दस
प्रकाशकीय	ग्यारह
भूमिका	बारह-बीस
स्तुति : अर्थ एवं स्वरूप	**१—२२**
स्तुति : व्युत्पत्ति एवं अर्थ	१
स्तुति के पर्याय शब्द	३
स्तुत्यर्थक धातुएं	५
श्रीमद्भागवत में स्तुति एवं स्तुत्यर्थक शब्द	६
स्तुति प्रार्थना और उपासना	६
स्तुति और भक्ति	७
स्तुतियों का आलम्बन	८
स्तुति के प्रमुख तत्त्व	१२
स्तुति का मनोवैज्ञानिक आधार	१७
स्तुति का महत्त्व	२०
संस्कृत मे स्तुति काव्य की परंपरा	**२३—६२**
स्तुत्योद्भव के अवसर	२३
वैदिक साहित्य में स्तुतियां	२५
ऋग्वेद की स्तुति सम्पदा	२५
अन्य वेदों में निबद्ध स्तुतियां	३८
महाकाव्य एवं पुराणों की स्तुति सम्पत्ति	३९
रामायण की स्तुतियां	४०
महाभारत की स्तुतियां	४७
विष्णु पुराण की स्तुतियां	५३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाकाव्यों की स्तुति सम्पदा ५५
अन्य स्तुति साहित्य ६०

भागवत की स्तुतियां : स्रोत, वर्गीकरण एवं वस्तु विश्लेषण ६३-११९

उपक्रम ६३
भागवतीय स्तुतियों एवं वैदिक स्तुतियों में अन्तर ६३
श्रीमद्भागवतपुराण की स्तुति सम्पदा ६५
श्रीमद्भागवत की स्तुतियों का स्रोत ६९
श्रीमद्भागवत की स्तुतियों का वर्गीकरण ७४
प्रमुख स्तुतियों का वस्तुविश्लेषण ९०

दार्शनिक एवं धार्मिक दृष्टियां १२०-१५६

ब्रह्म (परमेश्वर) १२१
माया १३०
जीव १३२
संसार १३३
स्तुतियों में भक्ति १३३
व्युत्पत्ति १३३
स्वरूप १३४
भक्ति के साधन १३५
भक्ति और ज्ञान वैराग्य १३६
भक्ति और मुक्ति १३६
भक्ति का लक्ष्य १३७
भक्ति का वैशिष्ट्य १३८
देवस्वरूप १४०
श्रीकृष्ण १४१
विष्णु १४७
शिव १५०
राम १५१
संकर्षण १५२
नृसिंह १५२
देव नामों का विवेचन १५३

श्रीमद्भागवत की स्तुतियों का काव्यमूल्य एवं रसभाव योजना १५७—१८९

स्तुतियों का काव्य मूल्य १५७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्तुतियों की भावसम्पत्ति	१६५
रस विश्लेषण	१७४
श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में अलंकार	**१९०—२३६**
काव्य सौन्दर्य एवं अलंकार योजना	१९१
स्तुतियों में अलंकार	१९४
बिम्बयोजना	२१७
प्रतीक विधान	२३२
श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में गीतिकाव्य के तत्त्व छन्दोविधान और भाषा सौन्दर्य	**२३९—२६०**
गीति काव्य की परिभाषा	२३७
गीति काव्य के तत्त्व	२३९
छन्द-योजना	२४६
भाषा-सौन्दर्य	२५३
उपसंहार	२६१—२६६
संदर्भ ग्रंथ सूची	**२६७—२७१**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. स्तुति : अर्थ एवं स्वरूप

भारतीय वाङ्मय में स्तुति शब्द के प्रयोग की सुदीर्घ परम्परा है। ऋग्वेद में इसका आद्य प्रयोग उपलब्ध होता है।[1] अन्य संहिताओं, ब्राह्मणों[2] तथा उपनिषदों[3] में भी इसके प्रयोग मिलते हैं। निरूक्त में बहुशः स्थलों पर स्तुति शब्द का विनियोग हुआ है।[4] वहीं पर स्तुति अर्थ में "संस्तव" शब्द का भी प्रयोग किया गया है।[5] आर्ष महाकाव्य रामायण एवं महाभारत में अनेक स्थलों पर स्तुति शब्द विनियुक्त मिलता है।[6] महाभारत में स्तोत्र,[7] स्तव[8] आदि शब्द भी अनेक बार आये हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में स्तुति का प्रयोग मिलता है[9] तथा पुराणों में अनेक स्थलों पर यह शब्द उपलब्ध होता है।[10] संस्कृत महाकाव्यों में भी स्तुति शब्द अनेक बार आया है। इस प्रकार स्तुति शब्द की प्रयोग परम्परा वैदिक काल से ही अविच्छिन्न रूप में प्रवाहित होती रही है।

स्तुति : व्युत्पत्ति एवं अर्थ

अदादिगणीय "ष्टुञ् स्तुतौ" धातु से "स्त्रियां क्तिन्"[11] से भाव में क्तिन् प्रत्यय करने पर स्तुति शब्द निष्पन्न होता है। "स्तवनं स्तुतिः" अर्थात् इसका अर्थ स्तवन किंवा प्रशंसा, स्तोत्र, ईडा नुति, आदि है। विभिन्न कोश ग्रन्थों में स्तुति शब्द के अर्थ पर प्रकाश डाला गया है। अमरकोश के अनुसार

---

१. ऋग्वेद १.८४.२, ६.३४.१, १०.३१.५१, ८.२७.२१
२. शतपथ ब्राह्मण ७.५.२.३९
३. रामतापनीयोपनिषद्-३०
४. निरूक्त ७.१,३.७
५. तत्रैव ७.११
६. बाल्मीकि रामायण बालकाण्ड १५।३२, अयोध्याकाण्ड ६५।३
७. महाभारत शांतिपर्व २८४।५६,३३७।३, भीष्मपर्व २३.२,३
८. तत्रैव शांतिपर्व ४७।११०, २८१।२६
९. श्रीमद्भगवद्गीता ११।२१
१०. विष्णु पुराण २०।१४, देवीभागवतपुराण ४५।१४५, श्रीमद्भागवतपुराण ३.१२.३७, ३.२९.१६, ४.९.१५
११. पाणिनि अष्टाध्यायी ३.३.९४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्तुति का अर्थ स्तव, स्तोत्र और नुति है।[१] हलायुध कोश में प्रयुक्त अर्थवाद, प्रशंसा, स्तोत्र, ईडा नुति, विकत्थन, स्तव, श्लाघा, वर्णना आदि शब्द स्तुत्यर्थक है।[२] बाणभट्ट के शब्दरत्नाकर में प्रशंसा, नुति, ईडा आदि शब्द स्तुति शब्द के पर्याय के रूप में उपन्यस्त हैं।[३] वैजयन्ती कोश के अनुसार शस्त्र, साम और स्तोत्र स्तुति शब्द के अर्थ हैं।[४]

ऋग्वेद में स्तुति शब्द विभिन्न अवसरों पर अपने उपास्यों के प्रति गाए गए प्रशंसागीत के लिए प्रयुक्त हुआ है।[५] दैवतकांड में यास्क की उक्ति है "जिनकी स्तुति मन्त्रों या सूक्तों में प्रधान रूप से की गई है, उन देवताओं के नामों का संकलन दैवतकांड में किया गया है।[६] अर्थात् यहां स्तुति शब्द नाम, गुण, कीर्तन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। दुर्गाचार्य[७] ने "स्तुतिः नामरूप-कर्मबन्धुभिः" के द्वारा स्तुति के स्वरूप की ओर निर्देश किया है। प्रत्येक ऋषि किसी न किसी देवता से स्तुति करता है। उस स्तुति में उसकी कोई कामना छिपी रहती है। वह सोचता है कि मैं अमुक वस्तु का स्वामी हो जाऊं या सामर्थ्यवान् हो जाऊं, और इसी अभिलाषा से वह वस्तु को देने में समर्थ देव की स्तुति करने लगता है। वह सामर्थ्यवान् देव ही उसका उपास्य होता है। आचार्य शंकर के मत में भगवत्गुण-संकीर्तन ही स्तुति है। विष्णु सहस्रनामभाष्य में "स्तुवन्त" शब्द का अर्थ "गुण संकीर्तनंकुर्वन्तः" किया है।[८] स्तुति में अपने उपास्य के विविध गुणों का कीर्त्तन किवा गायन किया जाता है। आचार्य मधुसूदन ने अपनी व्याख्या में गुणकथन को स्तुति कहा है।[९]

देवीभागवतपुराण में दुर्गा के अभिधान[१०] के रूप में तथा श्रीमद्-भागवतपुराण में एक स्थल पर प्रतिहर्त्ता की पत्नी[११] के लिए स्तुति शब्द का

---

१. अमरकोष १.६.११
२. हलायुध कोश पृ० सं० ५२५
३. बाणभट्ट शब्द रत्नाकर—श्लोक संख्या १८१०
४. वैजयन्तीकोश २.३.३५
५. ऋग्वेद १.८४.२, ६.३४.१
६. निरूक्त ७।१
७. निरूक्त ७।१ पर दुर्गाचार्य कृत व्याख्या
८. विष्णु सहस्रनाम, श्लोक ४.५ पर शांकरभाष्य
९. शिवमहिम्नस्तोत्र पर मधुसूदनी व्याख्या पृ० १ 'स्तुतिर्नामगुणकथनं तच्च गुणज्ञानाधीनम्।'
१०. देवीभागवतपुराण ४५।१४५
११. श्रीमद्भागवतपुराण ५.१५.५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रयोग हुआ है। आशीष के अर्थ में भी स्तुति शब्द का विनियोग मिलता है।[1]

इस प्रकार स्तुति में उपास्य के गुणों का संकीर्तन, स्तवन के साथ-साथ धन-सम्पत्ति और ऐश्वर्य आदि की याचना भी निहित रहती है।

स्तुति के पर्याय शब्द

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में मन्त्र, छन्द, शस्त्र, अर्क, अर्च, स्तोम, स्तव, जरा, ऋचा, यजु, साम आदि शब्द स्तुति के पर्याय माने गए हैं। मन धातु से मन्त्र शब्द निष्पन्न होता है। मन का प्रयोग ज्ञान, विचार और सत्कार तीनों अर्थों में होता है।[2] यास्क ने तीनों अर्थों में मन्त्र शब्द के प्रयोग को देखकर इसका निर्वचन किया है—मन्त्राः मननात्।[3] दिवादिगणीय मन् धातु से निष्पन्न मन्त्र शब्द का प्रयोग ज्ञान अर्थ में होता है—दैवादिकमन्धातोर्मन्यते ज्ञायतेऽनेनेति मन्त्रः, ईश्वरीयादेशा अनेन ज्ञायन्ते इति भावः।[4] तनादिगणीय मन् धातु से निष्पन्न मन्त्र शब्द का प्रयोग सत्कार किंवा स्तुति पूजा अर्थ में होता है—मन्यते विचार्यते सक्रियते वा ईश्वरीयादेशोऽत्र।[5] ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा तैत्तिरीय संहिता में इस शब्द का प्रयोग प्रार्थना अर्थ में हुआ है।[6] छद् धातु से छन्द शब्द निष्पन्न होता है। छन्दांसि छादनात्।[7] निघण्टु में इस शब्द का प्रयोग स्तुति के अर्थ में हुआ है।[8] स्तोम शब्द स्तवनार्थक ष्टुञ् धातु से निष्पन्न हुआ है—स्तोमः स्तवनात्।[9] ऋचा शब्द स्तुत्यर्थक तुदादिगणीय ऋच-स्तुतौ धातु से निष्पन्न है—ऋचन्ति स्तुवन्तीति।[10] शुक्ल यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र की व्याख्या के अवसर पर महीधर ने ऋचा को स्तुत्यर्थक माना है।[11] यजु शब्द यज् धातु से देवपूजा अर्थ में औणादिक "उ" प्रत्यय करके बना है। निरूक्तकार का वचन है—

---

१. बृहद्देवता १।७
२. सिद्धांतकौमुदी, मनज्ञाने १२५३ तथा मनुअवबोधने १५६५
३. निरूक्त ७.१२
४. संस्कृतेपंचदेवता स्तोत्राणि, पृ० ४२
५. तत्रैव, पृ० ४२
६. मोनीयर विलियम्स संस्कृत अंग्रेजी डिक्शनरी, पृ० ७८५
७. निरूक्त ७।१२
८. निघण्टु ३.१६, ऋग्वेद ६.११.३
९. निरूक्त ७।१२
१०. संस्कृतपंचदेवता स्तोत्राणि, पृ० सं० ४१
११. शुक्ल यजुर्वेद, प्रथम मन्त्र की महीधर कृत व्याख्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यजुर्यजते।[1] अर्क शब्द "अर्क स्तवने धातु से निष्पन्न स्तुति किंवा स्तवन अर्थ में प्रसिद्ध है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में अर्क शब्द स्तुति, स्तोत्र, सूक्त और संगीत के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[2] स्तुतिकर्त्ता या स्तुतिगायक के लिए भी अर्क शब्द आया है।[3] भ्वादिगणीय अर्च-पूजायाम् धातु से अर्च शब्द निष्पन्न हुआ है। ऋग्वेद में स्तुति अर्थ में इसका प्रयोग किया गया है।[4] भट्टिकाव्य में भी 'अर्च' का प्रयोग स्तुति के अर्थ में किया गया है।[5] जरा शब्द भी स्तुत्यर्थक है। लौकिक संस्कृत में इसका अर्थ वयो हानि हो गया है। ऋग्वेद में स्तुति के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग हुआ है।[6] निरूक्तकार ने भी इसी अर्थ में इसका प्रयोग किया है।[7] स्तोता के अर्थ में जरिता शब्द मिलता है।[8] प्र उपसर्ग पूर्वक भ्वादिगणीय शंस-स्तुतौ धातु से निष्पन्न प्रशंसा शब्द भी स्तुति के अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है।[9] ऋग्वेद में इसका प्रयोग यत्र-तत्र स्तुति अर्थ में मिलता है।[10] एक स्थान पर उत्तेजक या उत्साहवर्द्धक स्तुति के अर्थ में इसका विनियोग हुआ है।[11] इड-स्तुतौ धातु से निष्पन्न ईडा शब्द स्तुति अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। प्राचीन एवं अर्वाचीन दोनों प्रकार के कवियों ने इस शब्द का प्रयोग किया है। ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र में ही इसका विनियोग हुआ है— "अग्निमीडे पुरोहितम्"।[12] ऋग्वेद के अतिरिक्त अथर्ववेद, वाजसनेयी संहिता, रामायण आदि में भी इस शब्द का स्तुति अर्थ में ही उपयोग हुआ है।[13] भागवतकार ने बहुशः स्थलों पर इसका विनियोग किया है।[14] णु स्तुतौ से क्तिन् प्रत्यय के योग से निष्पन्न शब्द 'नुति' स्तुति का पर्याय है।[15]

---

१. निरूक्त ७।१२
२. मोनीयर विलियम्स—संस्कृत अंग्रेजी कोश, पृ० ८९
३. तत्रैव, पृ० ८९
४. ऋग्वेद ४.१६.३
५. भट्टिकाव्य २।२०
६. ऋग्वेद १.२७.१०, १.३८.१३, १०.३२.५
७. निरूक्त १०।८
८. निघण्टु, ३।६
९. हलायुध, पृ० ७२५
१०. मो० विलियम्स संस्कृत अंग्रेजी कोश, पृ० ६९४
११. ऋग्वेद १.८४.१९
१२. तत्रैव १.१.१
१३. मो० वि० संस्कृत अंग्रेजी कोश, पृ० १७०
१४. श्रीमद्भागवतपुराण ३।१९।३१, ३.३३.९, ७.८.३९
१५. हलायुध कोश, पृ० सं० ७२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भर्तृहरि, बालरामायण तथा नैषध महाकाव्य में इसका प्रयोग हुआ है।[1] अमरकोश में इसे स्तुति का पर्याय कहा गया है।[2] उपरोक्त शब्दों के अतिरिक्त विकत्थन, स्तव, स्तोत्र, श्लाघा, शंसा, स्तवन आदि शब्द भी स्तुति के पर्याय के रूप में व्यवहृत हुए हैं।

स्तुत्यर्थक धातुएं

सर्वप्रथम आचार्य यास्क ने निघण्टु में ४४ स्तुत्यर्थक धातुओं का निर्देश किया है—अर्चति, गायति, रेभति, स्तोभति, मूर्धयति, गृणाति, जरते ध्वयते, नदति, पृच्छति, रिहति, घ्रमति, कृणयति कृपण्यति, पनस्यति, पनायते, वल्गूयति, मन्दते, भन्दरेति, छन्दति, छदयते, शशमानः, रंजयति, रजयति, शंसति, स्तौति, यौति, रौति, नौति, भणति, पणायति, पणते, सपति, पपृक्षा, मध्यति, वाजयति, पूजयति, मन्यते, नदति, रसति, स्वरति, वेनति, मन्द्रयते, जल्पति।[3] इसके अतिरिक्त अध्येषणा अर्थ में चार धातुओं का[4] तथा मांगना (प्रार्थना) अर्थ में १७ धातुओं का उल्लेख किया है।[5] पाणिनीय धातु पाठ में लगभग १९ स्तुत्यर्थक धातुओं का निर्देश मिलता है। सिद्धांत कौमुदी के अनुसार उनका विनियोग इस प्रकार है—

	सिद्धांत कौमुदी में विनियुक्त धातु संख्या
१. अर्कस्तवने	१७६८
२. अर्चपूजायाम्	१९४७
३. ईड स्तुतौ	१०८९
४. ऋच-स्तुतौ	१३८६
५. कत्थश्लाघायाम्	३७
६. गा स्तुतौ	११८१
७. चाजृपूजानिशामनयोः	९४४
८. णु स्तुतौ	१११०
९. दिवुक्रीडाविजिगीषा व्यवहारद्युतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु	११०२
१०. पणपन व्यवहार स्तुतौ च	४६९,४७०
११. भजसेवायाम्	१०६७
१२. मदि स्तुति मोद मदस्वप्नकान्तिगतिषु च	१३
१३. मह पूजायाम्	७७६

१. मो० वि० संस्कृत अंग्रेजी कोश, पृ० ५६७
२. अमरकोश १.६.११
३. निघण्टु (मूल पाठ) ३।१४
४. तत्रैव ३।२१
५. तत्रैव ३।१९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. यजदेवपूजा संगतिकरणदानेषु च	१०७१
१५. वदि अभिवादन स्तुत्योः	११
१६. वर्णक्रियाव्यवहारगुणवचनेषु च	२०८८
१७. शंस स्तुतौ	७७४
१८. ष्टुञ् स्तुतौ	१११८
१९. स्तोम श्लाघायाम्	२०७२

श्रीमद्भागवत में स्तुति एवं स्तुत्यर्थक शब्द

श्रीमद्भागवत में आठ स्थलों पर स्तुति शब्द का प्रयोग गुणकीर्तन, श्लाघा, प्रशंसा, यशोगान आदि के अर्थ में उपलब्ध होता है[1] और एक स्थल पर प्रतिहर्ता की पत्नी का अभिधानवाचक है।[2] स्तोम स्तव, स्तोत्रादि शब्द भी यहां स्तुति के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।

ष्टुञ् (स्तु) धातु से निष्पन्न क्रियापदों का ही सर्वाधिक प्रयोग मिलता है। विधिलिङ्लात्मनेपदीय "स्तुवीत" लिट् लकार में तुष्टाव, तुष्टुवुः, शानच् प्रत्यय के योग से निष्पन्न "स्तुयमान एवं अभिष्टुत एवं अभिष्टुय आदि पूर्वकालिक क्रियापदों का भी प्रयोग मिलता है। संस्तूयमान, स्तोतुं, संस्तूयते, संस्तुतम्, संस्तुवतः, स्तुत्वा, स्तुवन्ति आदि विभिन्न प्रकार के क्रियापद भागवत महापुराण में व्यवहृत हुए हैं। स्तोम शब्द का प्रयोग दो स्थलों पर स्तुति के अर्थ में हुआ है—स्तोम ३.१२.२७, ६.८.२९ एवं तृतीयान्त स्तोमेन ९.२०.३५। क्रयादिगणीय 'गृ शब्दे' धातु का प्रयोग स्तुति अर्थ में भागवतकार ने अनेक स्थलों पर किया है—अगृणन् स्म (३.१५.२५) गृणन् (४.३०.२१) अभिगृणन्त (५.१८.१३) आदि। उपपूर्वक स्था धातु का स्तुति अर्थ में (जिसका निर्देश वार्तिकार ने "उपाद्देवपूजासंगतिकरणपथिष्वितिवाच्यम्" में किया है) भागवतकार ने प्रयोग किया है—उपतस्थु (३.१३.३३) एवं उपतस्थिरे (४.१५.२०)। अदादिगणीय "ईड स्तुतौ" का प्रयोग श्रीमद्भागवत में अनेक स्थलों पर किया गया है—समीडित ३.१९.३१, ईडितो ३.३३.९, ईडिरे ७.८.३९, ईडय ४.३१.३, ईडिरे १०.५९.२२, इडितो ६.९.४६, ऐडयन् (१०.२.२५) आदि।

इस प्रकार विभिन्न स्तुत्यर्थक धातुओं का विनियोग श्रीमद्भागवत में मिलता है।

स्तुति, प्रार्थना और उपासना

"स्तुतिः गुणकत्थनम्" अथवा उपास्य किंवा स्तुत्य के गुणकीर्तन,

---

१. श्रीमद्भागवत महापुराण ३.१२.३७, ३.२९.१६, ४.९.१५, ७.९.४९, ८.१६.४२, ११.११.२०, ११.११.३४

२. तत्रैव ११.१५.५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यशोगान, प्रशंसा आदि को स्तुति कहते हैं। प्रभु में विद्यमान गुणों का यथारूप में गायन स्तुति है। प्र उपसर्ग पूर्वक चुरादिगणीय "अर्थ उपयाञ्चायाम्" धातु से क्त एवं टाप् करने पर प्रार्थना शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ याचना है। स्तुत्य या उपास्य के गुणों का बार-बार गायन कर उन गुणों की प्राप्ति के लिए सामर्थ्य की याचना प्रार्थना है। अथवा दैन्यभाव से सर्वव्यापक, समर्थ प्रभु से अपने में उनके गुणों के विकास के लिए सामर्थ्य की याचना है। उप उपसर्ग पूर्वक अदादिगणीय "अस भुवि" धातु से "क्त" प्रत्यय एवं "टाप्" प्रत्यय करने पर उपासना शब्द निष्पन्न होता है। उपास्य के गुणों को सम्यग् रूप से धारण करके उसके समीप गमन, आसन उपासना है। जब तक उपास्य-उपासक के गुणों में साम्य नहीं हो जाता, तब तक सम्बन्ध अस्थिर होता है क्योंकि "समानगुणशीलव्यसनेषु मैत्री" की उक्ति प्रसिद्ध है। अतएव भगवत्प्राप्ति के लिए उनके गुणों का मनसा, वचसा और कर्मणा धारण कर उनके समीप स्थिर हो जाना उपासना है। उपासना में उपास्य-उपासक की एकता हो जाती है। इस प्रकार स्तुति की परिणति प्रार्थना में और प्रार्थना की परिणति उपासना में होती है। स्तुति प्रार्थना और उपासना एक दूसरे के पूरक हैं। इन तीनों से युक्त भक्त सद्यः दुस्तरिणी माया को पारकर भगवच्चरणरति प्राप्त कर लेता है।

स्तुति और भक्ति

स्तुति और भक्ति में साधन साध्य भाव सम्बन्ध है। उपास्य के गुण, महिमा गायन से उनके प्रति स्तोता की भक्ति दृढ़ हो जाती है, तो कभी उपास्य के विविध गुणों के प्रति, महान् कार्यों के कारण आश्चर्य, श्रद्धा, भय, तो कभी उपकृत किए जाने पर भी भक्ति का उद्रेक हो जाता है। यदुनाथ श्रीकृष्ण के द्वारा बार-बार अपने वंशधरों पर उपकार किए जाने के कारण कुन्ती की भक्ति अचला हो जाती है, श्रीकृष्ण चरणों में उसकी निष्ठा अविचल हो जाती है—

विभोचिताहं च सहात्मजाविभो त्वयैव नाथेन मुहुर्विपद्गणात्।[1]

और—

त्वयि मेऽनन्य विषया मतिर्मधुपतेऽसकृत्।
रतिमुद्वहतादद्धा गंगेवौघमुदन्वति॥[2]

स्तुति से भक्तिपूर्ण हो जाती है और कभी भक्ति रस से सरावोर होने पर भक्त अपने उपास्य की महिमा का स्तुति के माध्यम से विज्ञप्ति करता है। भक्ति रस से सरावोर होने पर अनायास ही उसकी वाग्धारा स्फूर्त होने

१. श्रीमद्भागवत महापुराण १.८.२३
२. तत्रैव १.८.४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लगती है और वही वाग्धारा स्तुति संज्ञा से अभिहित होती है। किम्पुरुषवर्ष में स्थित भक्तराज हनुमान अन्य किन्नरों सहित भगवान् की भक्ति से विगलित होकर उनकी स्तुति करते हैं—

यत्तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकं स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम्।
प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये ॥[1]

जल में भगवान् की मनोरम झांकी निरखकर भक्तराज अक्रूरजी का हृदय परमानन्द से लबालब भर गया। उन्हें परमा भक्ति प्राप्त हो गयी, उनका हृदय प्रेमरस से सराबोर हो गया। हृदय की वीणा मधुर स्वरों में शब्द के माध्यम से झंकृत हो गयी, स्तुति की निर्मल सरिता बह चली—

नतोऽस्म्यहं त्वाखिल हेतुहेतुं नारायणं पुरुषमाद्यमव्ययम्।
यन्नाभिजातादरविन्दकोशात् ब्रह्माऽऽविरासीद् यत एष लोकः ॥[2]

महाप्रस्थानिक बेला में महाभागवत भीष्म भक्तिभावित चित से प्रभु की स्तुति करते हैं। प्रभु की अलौकिक, त्रिभुवनकमनीय रूप सौन्दर्य को निहारकर पितामह शल्यजनित कष्ट से पूर्णतः स्वस्थ हो जाते हैं और विधूत-भेद मोह होकर जन्म जन्मान्तर के आराध्य प्रभु श्रीकृष्ण के चरणों में शाश्वती गति को प्राप्त कर लेते हैं।

भगवद्गुण कथा, महिमा आदि रूप स्तुति के गायन या श्रवण से अचला भक्ति उत्पन्न होती है। स्तुति करते-करते पितामह भीष्म निश्चला भक्ति को एवं कुन्ती अखण्डात्मिका रति को प्राप्त करती है।[3] मैत्रेय द्वारा भगवान् के विविध लीला गुणों एवं ऐश्वर्य विभूतियों का वर्णन सुनकर भक्त-राज विदुर प्रेम मग्न हो गए तथा भक्तिभाव का उद्रेक होने से उनके आंखों से आंसुओं की धारा बह चली।[4] कुशल वक्ता विरागी शुकदेव से कथा का श्रवण करने से परीक्षित को अचला भक्ति की प्राप्ती हुई, फलस्वरूप सर्पदंश के पहले ही ब्रह्ममय हो गए—

ब्रह्मभूतो महायोगी निस्सङ्गश्छिन्नसंशयः ॥[5]

स्तुतियों का आलम्बन

श्री मद्भागवत का प्रतिपाद्य परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण हैं श्रीमद्भागवत का प्रत्येक पद श्रीकृष्ण स्वरूप-बोधक है। सर्वान्तर्यामी, सर्व-व्यापक, लोकातीत, सर्वस्वरूप, सर्वहितरत, भगवान् श्रीकृष्ण ही अपने

१. तत्रैव ५.१९.४
२. तत्रैव १०.४०.१
३. तत्रैव क्रमशः—१.९.४३, १.८.४२
४. तत्रैव ४.३१.२८
५. तत्रैव १२.६.१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विभिन्न अवतारों सहित श्रीमद्भागवतीय स्तुतियों के आलम्बन हैं।

कोशादि ग्रन्थों में आलम्बन का अर्थ आश्रय, आधार, कारणादि है। प्रश्न है कि स्तुतियों का आलम्बन कौन हो सकता है। इसका सरल समाधान है जिसके प्रति स्तुति समर्पित की गई है, वही उसका आलम्बन है। पुनः जिज्ञासा होती है—कौन है वह, जिसके चरणों में स्तुति पुष्पांजलि समर्पित की जाती है? वह संसारिक बंधनों में बंधा हुआ जीव तो नहीं हो सकता, क्योंकि वह स्वयं परतंत्र है, असमर्थ है, मरणधर्मा है, सांसारिक विषय वासनाओं में लिप्त है। स्तुति उसकी की जाती है जो सर्वसमर्थ हो, सर्व-व्यापक हो, लोकातीत हो, सर्वज्ञ हो, अमर हो और विषयातीत हो।

स्तुतियां दो प्रकार की होती हैं—सकाम और निष्काम। सकाम स्तुतियों में स्तोता की कोई कामना निहित रहती है। सकाम भक्त सांसारिक अभ्युदय, धन-दौलत, ऐश्वर्य, रोग-मुक्ति, मृत्यु-भय आदि उपस्थित होने पर वैसे पुरुष की स्तुति में प्रवृत्त होता है, जो उसके मनोवांछित पूर्ण कर सके, जो सब कुछ देने में समर्थ हो, जो मृत्यु एवं रोग भय से बचा सके। भय से वही बचा सकता है जो स्वयं भयरहित हो, अमर हो अव्यय हो। सांसारिक व्यक्ति में ये सब गुण नहीं पाए जाते। अतएव सांसारिक की प्रशंसा स्तुति नहीं बल्कि उसके गुणों का डिमडिम घोष होने से उसे चाटुकारिता कहा जाना ही अच्छा है।

स्तुति और चाटुकारिता में अन्तर है। चाटुकार को स्वयं इस बात का बोध रहता है कि वह जिस व्यक्ति की प्रशंसा कर रहा है, वह उसके योग्य नहीं है, तथापि अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु प्रशंसात्मक वाक्यों का प्रयोग करता है। उसकी प्रशंसा में उसके हृदय का योग नहीं रहता किन्तु स्तोता के साथ ऐसी बात घटित नहीं होती। सकाम स्तुति में भी वह हृदय से अपने आराध्य की पूजा, अर्चना अथवा गुणकत्थन करता है। वह तो स्पष्ट रूप से अपनी वांछा की याचना अपने वांछाकल्पतरु प्रभु से करता है। वह अपने इष्टदेव से कुछ छिपाता नहीं है। स्तुति में हृदय को पूरी तरह खोलकर रख दिया जाता है। वहां मन, वाणी और कार्य में ताल-मेल रहता है, किंतु चाटुकारिता में उसका अभाव पाया जाता है।

स्तुति बुद्धि को निर्मल बनाती है, चाटुकारिता कल्मषयुक्त करती है। स्तुति से स्तोता की प्रवृत्ति अध्यात्मवाद की ओर होती है, चाटुकार ऐहिकता की ओर प्रवृत्त होता है। स्तोता की गति आत्मा की ओर होती है तो चाटुकार शरीर यात्री। स्तोता मुक्ति की ओर जाता है, चाटुकार बंधन निबद्ध हो जाता है। स्तुति से स्तोता निर्मल, प्रसन्न, स्वस्थ, सरल एवं ऋजुचित होता है, चाटुकारिता चाटुकार को उद्धत, पाखंडी बना देती है। स्तुति का पर्यवसान परमानंद में होता है, चाटुकारिता का अवसान घन-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घोर दुःख में। स्तुति से स्तोता को संबल मिलता है, अद्भुत शक्ति मिलती है, वह पराक्रमशाली बन जाता है लेकिन चाटुकार खोखला, कमजोर, कायर एवं अविश्वासी हो जाता है। स्तोता को अपने उपास्य के सामर्थ्य पर पूर्ण विश्वास रहता है, लेकिन चाटुकार अपने प्रशंस्य के सामर्थ्य पर सदा संशकित होता है।

निष्काम स्तुतियों में सांसारिक कामना का अभाव रहता है। उनका आलम्बन निर्गुण, निराकार, सर्वव्यापक, परब्रह्म परमेश्वर है। यहां पर यह प्रश्न स्वाभाविक उठता है कि निर्गुण की, निराकार की स्तुति कैसे हो सकती है? स्तुति तो गुणकीर्तन है और गुणकीर्तन सगुण का ही हो सकता है। स्वयं भागवतीय स्तोताओं ने ही इस शंका का अनेक स्थलों पर समाधान उपस्थापित किया है। जो निर्गुण, निराकार है वही सगुण, साकार है। लोकमंगल के लिए, भक्तरक्षणार्थं एवं भूतसृष्ट्यर्थ वह निराकार परब्रह्म परमेश्वर ही सगुण साकार हो जाता है—

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा न नामरूपेगुणदोष एव वा।
तथापि लोकाप्ययसम्भवाय यः स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति॥[1]

अर्थात् उसका न जन्म है, न कर्म, न नाम, न रूप, न गुण, न दोष है। वह निराकार परब्रह्म परमेश्वर ही परेश है, आत्मप्रदीप है, कैवल्यनाथ है, अतिसबलकारण, अपवर्ग स्वरूप है और "अस्मात् परस्माच्च परः"[2] है, वही सगुण साकार हो जाता है, राम, कृष्ण आदि के रूप में अवतरित होता है। श्रुतियों का वचन है—जगत् सृष्ट्यर्थ वह निर्गुण निराकार ही सगुण साकार हो जाता है—

अजजगदोक सामसखिलशक्त्यवबोधक ते।
क्वचिदजयाऽऽत्मना च चरतोऽनुचरेन्निगमः॥[3]

अब यहां शंका समुत्थित है कि सगुण स्तुतियों का आलम्बन और निर्गुण स्तुतियों के आलम्बन में अन्तर होता है क्या?

वस्तुतः आलम्बन के निराकार और साकार होने में स्तोता की अपनी दृष्टि, प्रवृत्ति, रूझान, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक क्षमता तथा निष्ठा आदि ही कारण हैं। आलम्बन तो अद्वयरूप है, निराकार और साकार दो रूप नहीं। स्तोता की जैसी दृष्टि या जैसी श्रद्धा होती है वैसा वह अपने उपास्य को, आश्रय को, निराकार या साकार मान बैठता है। अतः इस आधार पर स्तुतियों में कोई भेद नहीं दृष्टिगोचर होता है। भागवतकार के आलम्बन

१. श्रीमद्भागवत महापुराण ८.३.८
२. तत्रैव ८.३.३
३. तत्रैव १०.८७.१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अद्वय रूप है—जो निर्गुण भी है, निराकार भी, और सगुण भी साकार भी है। जो अखंड है अवांछित है, ज्ञाता भी है, ज्ञेय भी है, बुद्ध भी है, बोधक भी है, तीर्ण भी है, तारक भी है, पूर्ण भी है पूरक भी है, आधार भी है, आधेय भी है। सभी जीवों में बाहर-भीतर एक रसावस्थित है। आलम्बन का स्वरूप स्वयं आलम्बन के मुख से—

अहं हि सर्वभूतानामादिरन्तोऽन्तरंबहिः ।
भौतिकानां यथा खं वार्भूर्वायुर्ज्योतिरङ्गनाः ।।
एवं ह्येतानि भूतानि भूतेष्वात्माऽऽत्मना ततः ।
उभयं मय्यथ परे पश्यतामातमक्षरे ।।[1]

भागवतीय स्तुतियों के आलम्बन एक ही परब्रह्म परमेश्वर जो निर्गुण व्यापक, लोकातीत, सगुण, सर्वतंत्रस्वतंत्र, सर्वसमर्थ, शरणागतरक्षक, लोकमंगल का प्रतिपादक, अनिष्ट निवारक, भक्तवांछाकल्पतरु, भगवान ईश्वर, स्रष्टा, भर्ता, संहर्ता, कारणों का कारण सर्वाङ्गसुन्दर आदि गुणों से विभूषित होता है।

कुछ स्तुतियों के अवलोकन से आश्रय या आलम्बन तत्व स्पष्ट हो जाता है। श्रीमद्भागवत की प्रथम स्तुति अर्जुन और उत्तरा की है। उत्तरा पर ब्रह्मास्त्र संकट उपस्थित है। उसके सामने वीर, धनुर्धर, पराक्रमी, ज्ञानी, बाप दादे बैठे हैं, लेकिन वह किसी के पास नहीं जाती, क्योंकि वह जानती है कि मृत्यु से एक ही रक्षक है। सहसा वह उसी का शरणापन्न होती है और भगवान् शरणागत की रक्षा भी करते हैं। अर्थात् जो सामने उपस्थित मृत्यु भय से अभय दिला सके वही स्तुति का आलम्बन है। अन्य सब तो मृत्यु के ग्रास हैं।

उसके बाद उपकृत होकर कुन्ती स्तुति करती है—किसकी? यही तो देखना है। और इस प्रश्न का समाधान ही स्तुति का आलम्बन है। वह किसी अल्पसत्व की स्तुति नहीं करती, उसका स्तुत्य नारायण हैं जो सर्वव्यापी हैं, एकरस हैं। कृष्ण, नंदगोपकुमार, अनंत, आत्माराम, शांत आदि अभिधानों से विभूषित हैं। उनका जन्म नहीं होता लेकिन असुरों के विनाश के लिए विविध जन्मधारण करते हैं।

पितामह भीष्म का "स्तवराज" भागवत में अत्यन्त प्रसिद्ध है। महाप्रयाणिक वेला में गंगापुत्र भीष्म प्रभु श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं। आनंद स्वरूप में स्थित रहते हुए भी विहार की इच्छा से जन्म ग्रहण करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ही भीष्म स्तुति के आलम्बन हैं। उनका सगुण रूप सामान्य नहीं बल्कि त्रैलोक्य सुन्दर है। ऐसा लगता है कि संपूर्ण सृष्टि का रूप-सौन्दर्य,

१. श्रीमद्भागवतमहापुराण १०.८२.४६-४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शील-सौन्दर्य, गुण-सौन्दर्य, परमप्रभु श्रीकृष्ण में ही निहित है, एकत्रावस्थित है—

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवाम्बरं दधाने ।
वपुरलककुलावृत ननाब्जं विजय सखेरतिरस्तु मेऽनवद्या ॥[1]

शुकदेव—जो सर्वज्ञ हैं, सर्वद्रष्टा हैं, बालयोगी हैं, अवधूत-शिरोमणि हैं—उनकी स्तुति का आलम्बन वह है—जो संपूर्ण लोक का आश्रय है, जिसके नामोच्चारण मात्र से ही सारे कल्मष सद्यः समाप्त हो जाते हैं।[2] वह सामान्य नहीं बल्कि धर्ममय है। तपोमय है, ज्ञानियों का आत्मा तथा भक्तों का स्वामी है।[3]

स्तुति के प्रमुख तत्त्व

श्रीमद्भागवतीय स्तुतियों के पर्यालोचन से निम्नलिखित तत्त्व प्रकट होते हैं—

१. आत्मसमर्पण

अपने शरण्य या उपास्य के चरणों में स्वसर्वस्व समर्पण की भावना प्रत्येक स्तुति में पायी जाती है। भक्त क्षणभर में अपना पाप-पुण्य आदि सब कुछ प्रभु के चरणों में समर्पित कर उसी का हो जाता है—

क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः संन्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः ॥[4]

भक्तिमति गोपियां अपना घर-द्वार, पति-पुत्र, धन-परिवार सब कुछ का परित्याग कर प्रभुचरणों में निवास की याचना करती है।[5]

जब जीव संसार चक्र में क्रूरकाल-व्याल से भयभीत हो जाता है, उसका कोई अब रक्षक नहीं दिखाई पड़ता, तो वह सर्वात्मना स्वयं को प्रभु चरणों में अर्पित कर अभय हो जाता है। द्रौण्यास्त्र से प्राणसंकट उपस्थित होने पर उत्तरा प्रभु चरणों में अपने को समर्पित कर देती है—

नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम् ॥[6]

परमभागवत पितामह भीष्म संसार से विधूतभेद मोह होकर प्रभु चरणों में अपने को समर्पित करते हैं—

---

१. श्रीमद्भागवतमहापुराण १, ९, ३३
२. तत्रैव, २.४.१५
३. तत्रैव, २.४.१९
४. तत्रैव ५।२०।२३
५. तत्रैव १०।२९।३१
६. तत्रैव १।८।९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विजय सखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ।

× × ×

अस्तु कृष्ण आत्मा ।

× × ×

रतिर्ममास्तु ।[1]

२. आत्माभिव्यक्ति—

भक्त अपने सांसारिक सुख-दुःखात्मक अनुभूति को प्रभु के चरणों में उड़ेलकर अपना सब कार्य भार उसी पर छोड़ देता है । यह आत्मानुभूति जब स्वाभाविक स्वर लहरी में निजी हर्ष-विषाद की अभिव्यंजना के लिए प्रस्तुत होती है और आराध्य से सहायता की अपेक्षा करती है, तब स्तुति काव्य का आरंभ होता है । विश्वात्मा या किसी विशेष आराध्य के प्रति आत्माभिव्यंजन की व्यापक प्रवृत्ति स्तुति या स्तोत्र को प्रादुर्भूत करती है । जब जीव विशेष संसृतिचक्र में फंस जाता है तो अपने कष्टाधिक्य को प्रभु के चरणों में उड़ेल कर, समर्पित कर उससे उपरत हो जाता है । उन्हीं से अपनी उद्धार की याचना करता है—

यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति ।
किं त्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम् ।।[2]

३. सहजः अन्तःप्रेरणा—

स्तुति काव्य में विद्यमान सहज अन्तःप्रेरणा उसे उत्कृष्ट काव्य की कोटि में स्थापित करती है । कविता की अपेक्षा स्तुति में सहज तत्त्व का आधिक्य होता है । भक्त जब कुछ आराध्य से प्राप्त करना चाहता है और उसकी अनंत शक्ति का संबल प्राप्त कर जागतिक प्रपंचों पर विजय लाभ की इच्छा करता है, या बार-बार प्रभु द्वारा किए गये रक्षादि उपकारों से उसका हृदय विगलित हो जाता है, तब वह अपनी सहज अन्तःप्रेरणा से प्रेरित होकर उनके लीला-गुणों में लीन हो जाता है ।

नमस्ये पुरुषं त्वाद्यमीश्वरं प्रकृतेःपरम् ।
अलक्ष्यं सर्वभूतानामन्तर्बहिरवस्थितम् ।।[3]

वह सर्वात्मना प्रभु के चरणों में स्थिर हो जाता है—

इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा भगवति सात्वतपुङ्गवे विभूम्नि ।
स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः ।।[4]

---

१. श्रीमद्भागवत १.९.३३,३४,३५
२. तत्रैव ८.३.१९
३. तत्रैव १.८.१८
४. तत्रैव १.९.३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह तल्लीनता, या लीनता सहज अन्तःप्रेरणा का ही प्रतिफलन है।

४. उपास्य के साथ सम्बन्ध

भक्त स्तुति के माध्यम से क्षणभर में उपास्य के साथ भाई, पुत्र, पति आदि लौकिक सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। परमब्रह्म परमेश्वर भक्त स्तुति से प्रसन्न होकर उसके भाई बन्धु आदि के रूप में हो जाते हैं। कुन्ती अपने उपास्य को दो रूपों में देखती है—(१) परमब्रह्मपरमेश्वर—जो अव्यय अनंत, आदि है। (२) वे सगे सम्बन्धी भाई भानजे हैं—

कृष्णाय वासुदेवाय देवकी नन्दनाय च।
नंदगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः॥[1]

५. उपास्य ही परम लक्ष्य

स्तोता का परम लक्ष्य उसका उपास्य ही होता है। भक्त नाक-पृष्ट, महेन्द्रराज्य, रसाधिपत्य आदि सब कुछ का परित्याग कर केवल प्रभुचरणरज की ही अभिलाषा रखता है--

न नाक पृष्ठं नच पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धिरपुनर्भवं वा समञ्जसत्वा विरहय्य कांक्षे॥[2]

प्रभु चरणों की सेवा को छोड़ जन्म-मृत्यु-उच्छेदक मोक्ष की भी कामना नहीं करता।[3]

वह वैसा कुछ भी नहीं चाहता जहां प्रभु चरणाम्बुजासव की प्राप्ति न हो।[4] अपने प्रभु के प्रति वह एकनिष्ठ रहता है।

६. एकाग्रता

एकाग्रता स्तुति का मूल है। जब तक चित्तवृत्तियां स्थिर नहीं हो जाती तब तक स्तुति का प्रणयन नहीं हो सकता। बाहरी विषयों से निवर्तित होकर चित्तवृत्तियां जब उपास्य के चरणों में एकत्रावस्थित हो जाती हैं तभी भक्त के हार्द धरातल से उसके उपास्य से सम्बन्धित नाम-रूप-गुणात्मक स्वर लहरियां स्वतः ही निःसृत होने लगती हैं। भक्त मन को हृदय में एकाग्र करके ही स्तुति करता है—

एवं व्यवसितो बुद्धया समाधाय मनोहृदि।
जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम्॥[5]

---

१. श्रीमद्भागवतमहापुराण १.८.२१
२. तत्रैव ६.११.२५
३. तत्रैव १०.३६.२७
४. तत्रैव ४.२०.२४
५. तत्रैव ८.३.१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अतएव स्तुति में एकाग्रता अत्यन्तावश्यक है।

७. प्राक्तन् संस्कार

स्तुति में प्राक्तन् संस्कार भी आवश्यक है। वृत्रासुर एवं गजेन्द्र प्राक्तन् संस्कार वशात् ही प्रभु की स्तुति करते हैं।[1] पूर्व जन्म में सम्पादित भक्ति, उपासना से उत्थित संस्कार ही अपर योनि में (पशु, राक्षस आदि योनि में) भी प्रकट हो जाते हैं जो स्तुति के मूल हैं।

८. भवरोगोपरता

स्तुति में भक्त भवरोग से उपरत हो जाता है। भक्त प्रभु के चरणों में स्थित होकर सांसारिक कष्ट, माया, ईर्ष्या द्वेषादि भव रोगों से रहित हो प्रभु की उपासना में लीन हो जाता है।

९. आत्मविलय

स्तुति में आत्मविलयन की प्रधानता होती है। कुछ ऐसी स्तुतियां है जिसमें भक्त भगवत्गुण के अतिरिक्त वस्तुओं का निषेध करते-करते अन्त में अपना भी निषेध कर स्तव्य स्वरूप ही हो जाता है।[2] पितामह भीष्म स्तुति करते-करते अन्त में मन, वाणी और दृष्टि की वृत्तियों से आत्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण में लीन हो जाते हैं—

> कृष्ण एव भगवति मनोवाग्दृष्टिवृत्तिभिः।
> आत्मन्यात्मानमावेश्य सोऽन्तश्श्वास उपारमत॥[3]

१०. अद्वैत की प्रतिष्ठा

"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" इस आर्ष वैखरी का भागवतीय स्तुतियों में पूर्णतः विकास दृष्टिगोचर होता है। या यों कहिए कि स्तुतियों में इसका विस्तृत व्याख्यान उपलब्ध है। भगवान् समस्त जीवों के बाहर एवं भीतर एकरस स्थित हैं, इन्द्रियागोचर, प्रकृति से परे, आदि-पुरुष हैं।[4] भगवान् (भक्त का स्तव्य) ही सभी देवताओं के रूप में है, परन्तु वे वस्तुतः एक ही हैं। भक्त लोग उनकी विभिन्न रूपों में उपासना करते हैं।[5] प्रभु केवल एक हैं परन्तु अपने कार्य रूप जगत् में स्वेच्छा से अनेक रूपों में प्रतीत होते हैं।[6]

---

१. श्रीमद्भागवत ६.११ तथा ८.३
२. तत्रैव १०.८७.४१
३. तत्रैव १.९.४३
४. तत्रैव १.८.१८
५. तत्रैव १०.४०.९
६. तत्रैव १०.४८.२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पूर्ण वेद स्तुति में अद्वैत की प्रतिष्ठापना की गई है।[1]

११. भावसान्द्रता

भाव सांद्रता स्तुति का प्राण तत्त्व है। स्तोता अपनी रागात्मक अनुभूति के द्वारा उपास्य को भी भावात्मक बना देता है। जब भाव विगलित होकर उपास्य के चरणों को स्पर्श करता है तब अनुभूति सान्द्र होती है। यही कारण है कि अनुभूति के अनुसार ही भक्त एक ही आराध्य के विभिन्न रूपों की आराधना किंवा स्तुति करता है।

१२. संगीतात्मकता

यह स्तुति का प्रमुख तत्त्व है। भक्त जब एकचित्त होकर प्रभु के लीला-रूपों का ध्यान करता है तो स्वतः संगीतमय स्वर लहरी प्रस्फुटित हो जाती है। स्तुति एक विशिष्ट लय एवं संगीतमय ध्वनि से युक्त होती है। स्तुति में गेयता की प्रधानता रहती है। जब भगवान् अन्तर्धान हो जाते हैं तब गोपियां प्रभु की अत्यन्त हृदयावर्जक भक्तजनाकर्षक गीत गाने लगती हैं—

> जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
> दयित दृश्यतां दिक्षु तावकाः त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते॥[2]

१३. सरलता एवं नैसर्गिता

स्तुतियों में कृत्रिमता एवं परुषता का अत्यन्ताभाव होता है। सहज-वृत्ति एवं नैसर्गिकता की प्रधानता होती है। भक्त उपास्य के उपकार भावना से उपकृत होकर, संकट काल में या सहजभाव में प्रभु के प्रति स्तुति करने लगता है। उसके शब्दों में सरलता होती है।

१४. माङ्गलिक चेतना

स्तुतियों का मांगलिक स्वरूप भी दृष्टिगोचर होता है। भक्त जगत् के उद्धारार्थ, राक्षसमर्दनार्थ प्रभु की स्तुति करता है। वह मोक्षादि का भी परित्याग कर संसार के सम्पूर्ण प्राणियों का दुःख अपने ऊपर लेना चाहता है, इसके लिए बार-बार वह संसार को स्वीकार करने में तनिक भी नहीं हिचकता—

> न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परामष्टर्द्धि युक्तामपुनर्भवं वा।
> आर्ति प्रपद्येखिल देहभाजामन्तः स्थितो येन भवन्त्यदुःखा॥[3]

---

१. श्रीमद्भागवत १०.८७ सम्पूर्ण अध्याय
२. तत्रैव १०.३१.१
३. तत्रैव ९.२१.१२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. शरणागति

स्तुतियों में शरणागति की प्रधानता होती है। सांसारिक भय से पीड़ित होकर जीव सत्यात्मक प्रभु की शरणागति ग्रहण करता है--

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः॥[1]

मृत्यु रूप कराल व्याल से भीत जीव उसी परमशरण्य के चरणों में उपस्थित होता है।[2] जब जीव मात्र में स्थित घमंड का निमर्दन हो जाता है, तब वह प्रभु की शरणागति ग्रहण करता है।[3] सम्पूर्ण संसार के भाई-बन्धु, सुत-गेह आदि का परित्याग कर जीव शिवस्वरूप गति प्राप्त करता है।[4] मृत्यु संकट उपस्थित होने पर परमेश्वर ही एकमात्र रक्षक है।[5]

स्तुति का मनोवैज्ञानिक आधार

स्तुति सच्ची श्रद्धा, शरणागति और आत्मसमर्पण का रूपांतर है। यह परमेश्वर रूप महाशक्ति से वार्तालाप करने की अत्यन्त सरल आध्यात्मिक प्रणाली है। जिस महाशक्ति से यह अनन्त ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ है, लालित पालित हो रहा है, उससे सम्बन्ध स्थापित करने का अत्यन्त ऋजु एवं अवितथ मार्ग स्तुति या प्रार्थना है। भक्त परमानन्द स्वरूप परमात्मा से अपने हृदय के अकृत्रिम लयात्मक शब्दों के द्वारा सम्बन्ध जोड़ लेता है।

स्तुति मनुष्य के मन की समस्त विशृंखलित एवं अनेक दिशाओं में भटकने वाली वृत्तियों को एक केन्द्र पर एकाग्र करने वाले मानसिक व्यायाम का नाम है, जिसमें हृदय पक्ष की प्रधानता होती है।

मनुष्य के चेतन मन के अतिरिक्त एक अवचेतन और अत्यन्त गुह्य मन भी होता है। उसकी शक्ति अपरिमित तथा अनन्त होती है। वह अनन्तज्ञान, अनन्त अनुभूति, अनन्त भावनाओं से युक्त रहता है। इसी अवचेतन मन की पृष्ठभूमि से समुद्भूत श्रद्धायुक्त चेतना की शाब्दिक अभिव्यक्ति का नाम है 'स्तुति'।

जब तक मन में श्रद्धा या विश्वास उद्रेक नहीं होता तब तक स्तुति का प्रणयन नहीं हो सकता। विविधकल्मषयुक्त मानवहृदय में जब श्रद्धा और विश्वास का सन्निवेश होता है तो वह अत्यन्त पवित्र हो जाता है और अनायास ही उसके हृदय से मधुमय शब्दों की पुष्पांजलि अपने हृदयहार के प्रति,

१. श्रीमद्भागवत १०.२.२६
२. तत्रैव १०.३.२७
३. तत्रैव १०.२७.१३
४. तत्रैव १०.२९.३१
५. तत्रैव १.८.९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपास्य के प्रति समर्पित हो जाती है।

जब मन की वृत्तियां सत्वावस्था में स्थापित हो जाती है, उनका बाह्य भ्रमण सम्बन्ध स्थगित हो जाता है तथा किसी उपास्य या गुणखनि के प्रति श्रद्धा और विश्वास से पूर्ण हो जाती है तभी स्तुति का प्रारम्भ होता है।

मनोविज्ञान मन की तीन मुख्य वृत्तियां मानता है—

१. ज्ञान

२. भावना और

३. क्रिया।

प्रत्येक मानसिक अवस्था में इन तीनों का साहचर्य होता है, लेकिन एक अवस्था में एक ही का आधिक्य होता है।

प्रथमावस्था में किसी के माहात्म्य, गुण, अपरिमित शक्ति का ज्ञान होता है, तब उसके द्वारा सम्पादित विभिन्न अद्भुत कार्यों, उपकार कार्यों को देखकर उसके प्रति श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न होता है। श्रद्धा और विश्वास जब उद्रिक्त हो जाते हैं, तब भक्त विगलित होकर स्तुति गायन करने लगता है। ध्यान रहे इस क्रिया का सम्बन्ध उसके अवचेतन मन से ही होता है।

स्तुतियों में मन की द्वितीय अवस्था भावना की प्रधानता होती है। भावना के अन्तर्गत अनेक वृत्तियां होती है। प्रमुखतः वे वृत्तियां तीन रूपों में प्रतिपादित हो सकती है—

१. देहात्मक— सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास आदि।

२. आवेशात्मक— भय-क्रोध, हर्ष-विषाद, लोभ-आशा, दया, सहानुभूति आदि।

३. रसात्मक— श्रद्धा और प्रेम।

स्तुति का प्रादुर्भाव आवेशात्मक और रसात्मक स्थिति में होता है। जब मनुष्य किसी आशा, हर्ष, दया, भय आदि से युक्त हो जाता है तब उसकी चित्तवृत्तियां विकसित हो जाती हैं, और उनका सम्बन्ध अवचेतन मन से स्थापित हो जाता है। उस अवस्था में किसी गुणज्ञ, सर्वसमर्थ, अव्यय के प्रति पूर्व से विद्यमान श्रद्धा और विश्वास काम आ जाता है। भक्त हृदय में पूर्ण विश्वास है कि आगत विपत्ति से उसकी रक्षा वह अनन्त ही कर सकता है। उस समय जब प्राण संकट उपस्थित है—सारे सम्बन्धी इस विपत्ति को टालने मे असमर्थ हो चुके हैं—अपनी भी शक्ति समाप्त हो चुकी है तब—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाहि-पाहि महायोगिन् देव-देव जगत्पते ।
नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम् ॥[1]

इस प्रकार उस समर्थ से याचना करता है, इस विश्वास के साथ कि अब वही बचा सकता है—इस महाघोर विपद् की बेला में ।

जब मनुष्य सम्पूर्ण लौकिक साधनों का कार्यान्वियन कर विश्रांत हो जाता है, सब तरफ से केवल घनान्धकार-निराशा ही दिखाई पड़ती तब अपने आपको पूर्णतः असुरक्षित, असहाय समझकर प्रभु की शरणागति ग्रहण करता है । हृदय में ज्यों ही अनन्यता और सम्पूर्ण समर्पण की भावना आ जाती है त्योंही उसके मन-वाणी और आंसूओं में इतनी शक्ति हो जाती है कि भगवान् को वहां आना पड़ता है ।

यही स्थिति द्रौपदी, उत्तरा, अर्जुन, गजेन्द्र, नृपगण, जीव, गोपियां, नागपत्नियां आदि की हैं । द्रौपदी और गजेन्द्र की स्थिति कुछ यों है कि उन दोनों की आत्मीयों की शक्ति निष्फल हो गयी । द्रौपदी का जिन पर पूर्णतः भरोसा था, जिन्हें पाकर अपने आपको सौभाग्यवती समझती थी, उन्हें निश्चेष्ट, काष्ठमूर्तिवत् देखकर असहाय हो जाती है, क्षणभर में वह निर्वस्त्रा होने वाली है, रजस्वला स्थिति में—हाय ! हाय ! अब कौन बचायेगा ! तभी अवचेतन मन में स्थित—वशिष्ठ का उपदेश स्मरण आ जाता है—"विपत्तिकाल में प्रभु का स्मरण करना चाहिए"[2] यही संस्कार उस आपत्तकाल में उद्रिक्त हो जाता है और तब वह पूर्ण श्रद्धा और अखंड विश्वास के साथ उन्हें पुकारती है जो द्वारिकावासी है, गोपीजन प्रिय है और भक्तों के परम आश्रय है—

गोविन्द द्वारिकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय ।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव ॥[3]

गजेन्द्र को क्षणभर में अब ग्राह निगल ही जायेगा । केवल शरीर का अग्रभाग ही जलमग्न होने से बचा है । प्राक्तन् संस्कार वशात् परमजप प्रभु चरणों में समर्पित करता है । सर्वात्मना श्रद्धा और विश्वास के साथ अकिंचन और अनन्यगतिक गजेन्द्र उसी की शरणागति ग्रहण करता है—

यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम् ।
योऽस्मात् परमास्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयम्भुवम् ॥[4]

स्तुतियों में उपकार भावना की प्रधानता होती है । समर्थ के द्वारा

१. श्रीमद्भागवत १.८.९
२. महाभारत—सभापर्व अ० ६८
३. तत्रैव सभापर्व ६८।४१
४. श्रीमद्भागवत ८.३.३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बार-बार के कृतोपकारों से उपकृत होकर भक्त उनकी स्तुति करने लगता है। उपकार से मन विगलित हो जाता है, अन्त में विद्यमान सत्त्व का उद्रेक हो जाता है—तब श्रद्धा और विश्वास के साथ उस हृदयाराध्य के प्रति कुछ गुन-गुनाने लगता है।

प्रार्थना या स्तुति से कुछ ऐसा भी हो जाता है जिस पर भक्तेत्तर लोगों को सहसा विश्वास नहीं होता। मनुष्य ज्यों ही आत्मस्थ होकर कालातीत ईश्वर के सान्निध्य में समुपस्थित हो जाता है, त्योंही उसकी खोई हुई एवं क्षीण शक्ति वापस मिल जाती है, उसे शाश्वत जीवन और भगवद्विभूति की उपलब्धि हो जाती है। ऐसा कुछ होते ही सारी विपत्तियां, सारे दुःख स्वतः विलीन हो जाते हैं। वह शाश्वत मनोराज्य में स्थिर होकर परमानन्द में निष्ठित हो जाता है।

स्तुति का महत्त्व

जीवात्मा का परमात्मा के साथ, उपासक का उपास्य के साथ और भक्त का भगवान् के साथ अनन्य भक्ति-प्रेममय सम्बन्ध का नाम स्तुति है। यह साधक की ईश्वर प्राप्ति के लिए परम आकुलता या आर्तता की भावना की अभिव्यक्ति है—

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतोदर्शनं यत्स्यादपुनर्भव दर्शनम्॥[1]

स्तुति के द्वारा भक्त परम शांत मन वाला हो जाता है। स्तुति के माध्यम से वह अपने हृदयस्थ सुख-दुःख रूप मानसिक भावों को प्रभु चरणों में समर्पित कर देता है। अपना सब भार उन्हीं के ऊपर रखकर स्वयं उन्हीं का हो जाता है।

स्तुति एक महान् अमोघ बल है, विपत्ति के दिनों का सहारा है, असहायों का सहायक है, अनाथों का नाथ है, अशरणों का परम शरण्य है। अंग्रेज महाकवि टेनीसन के शब्दों में—"जगत् जिसकी कल्पना करता है उससे कहीं अधिक महान् कार्य प्रार्थना किंवा स्तुति के द्वारा सिद्ध हो सकता है।"

भगवन्नाम की महिमा पर श्रद्धा विश्वास होने पर उसमें अनन्य प्रेम की प्राप्ति होती है। भगवान् प्रेमी के प्रेम में वशीभूत हो जाते हैं। किंवा बन्ध जाते हैं। हर क्षण सारे योग-क्षेम का वहन उन्हें ही करना पड़ता है। शश्वदागत विपत्तियों से भक्तों की रक्षा स्वयमेव गोविन्द करते हैं। स्तुति के द्वारा जो अव्यय है, अधोक्षज है, सर्वतंत्रस्वतंत्र है, आद्य ईश्वर है, अन्तर्बहिरवस्थित है, वही प्रभु भक्त का, स्तोता का अपना निज-जन हो जाता है;

१. श्रीमद्भागवतमहापुराण १.८.२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सगुण होकर वह उसका भाई-बन्धु बन जाता है।[1]

भगवन्नाम—गुणकथनादि के श्रवण से भक्ति पूर्ण होती है। उपास्य के प्रति श्रद्धा दृढ़ हो जाती है। भक्ति होते ही सांसारिक मोह, भय आदि का विनाश हो जाता है। इसीलिए भक्ति को शोकमोहभयापहा,[2] आत्मरजस्तमोपहा[3] कहा गया है। प्रभु के नाम गुण कत्थन, कीर्त्तन से स्तोता भगवद्-भक्ति, सिद्धि एवं संसार-मुक्ति को प्राप्त कर लेता है :—

यः श्रद्धयैतत् भगवत्प्रियाणां पाण्डोः सुतानामपि संप्रयाणम्।[4]
शृणोत्यलं स्वस्त्ययनं पवित्रं लब्ध्वा हरौ भक्तिमुपैति सिद्धिम्॥
पृथाप्यनुश्रुत्य धनंजयोदितं नाशं यदूनां भगवद्गतिं च ताम्।
एकान्तभक्त्या भगवत्यधोक्षजे निवेशितात्मोपरराम संसृतेः॥[5]

स्तुति द्वारा बड़ी-बड़ी विपत्तियों से मुक्ति मिलती है। प्राण संकट उपस्थित होने पर स्तुति ही एक मात्र संबल बच जाता है। गजेन्द्र, उत्तरा, द्रौपदी, अर्जुन आदि भक्तजन ऐसी ही अवस्था में अपने उपास्य की स्तुति करते हैं, जब तक अपनी शक्ति काम आती है, अपने लोगों पर, अपने बल पौरूष पर प्रभूत अभिमान होता है, तब तक उनकी याद नहीं आती है। जब मृत्यु मुख धीरे-धीरे निकट आता दिखाई पड़ता है, सारे संबल निरर्थक हो जाते हैं, तब सांसारिक जीव का, जो कुछ क्षण पहले अपने पराक्रम, धैर्य, परिजन पुरजन आदि के गर्व से गुम्फित था, कि अचानक उसका धैर्य टूट जाता है, उसका पाषाण हृदय विगलित हो जाता है, हृदयस्थ कल्मष नयन-सलिल की धारा के साथ प्रवाहित हो जाता है, सिर्फ स्वच्छ हृदय ही बचा रहता है, तब उसी समय वह प्रभु के यहां सब कुछ समर्पित कर देता है—हे नाथ! मेरी रक्षा करो—

यः स्वात्मनीदं निजमायया र्पितं क्वचिद् विभातं क्व च तत् तिरोहितम्॥
अविद्धदृक साक्ष्युभयं तदीक्षते स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः॥[6]

यह बात नहीं है कि स्तुति सिर्फ एक पक्षीय है, भक्त की करुण पुकार भक्तवत्सल के यहां नहीं पहुंचती। भक्त से कहीं ज्यादा भगवान् आर्द्र हो जाते हैं—उसकी दर्द कहानी, आर्त्तपुकार सुनकर। स्वयं आते हैं प्रभु—निर्गुण और सर्वव्यापक होकर भी अपने प्यारे के लिए सगुण और गरुत्मान्

१. श्रीमद्भागवत १.८.२१
२. तत्रैव १.७.७
३. तत्रैव १.५.२८
४. तत्रैव १.१५.५१
५. तत्रैव १.१५.३३
६. तत्रैव ८.३.४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बनकर रक्षा करने के लिए और भक्तराज की जन्म जन्मातर की साधना सफल हो जाती है। प्रभु दर्शन से शेष कल्मष भी अशेष हो जाता है—

सोऽन्तःसरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम्।
उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छान्नारायणाखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥[1]

स्तुति से भाव की शुद्धि, हृदयशुद्धि, क्रियाशुद्धि, शरीरशुद्धि, कुलशुद्धि और वाक्शुद्धि होती है। भाव और हृदय की शुद्धि सबसे बड़ी पवित्रता है, वही प्रत्येक कार्य में उत्कृष्टता का हेतु है, और यह संभव है अपने उपास्य के प्रति समर्पित परमरसमयी स्तुतियों के द्वारा। स्तुति ऐसी गांगेय-धारा है जो वक्ता श्रोता सबको कृष्णमय बना देती है—

यत्संश्रयान्निगदिते लभते सुवक्ता श्रोतापि कृष्णसमतामलमन्यधर्मैः।[2]

तभी तो भक्त संसार का संपूर्ण ऐश्वर्य, महेन्द्रराज्य, स्वर्गाधिपत्य और मोक्ष का भी परित्याग कर सिर्फ प्रभु के गुण कीर्त्तन की ही याचना करता है।[3] संपूर्ण मनोवृत्तियों सहित इन्द्रियों को भी भगवत्सेवा में ही लगाना चाहता है—

वाणीगुणानुकथने श्रवणं कथायां हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥[4]

स्तुतियों का परम लक्ष्य स्तुति ही है। भक्त भगवत्गुण, कथा श्रवण, गायन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं चाहता।[5] वह ऐसा कुछ भी नहीं चाहता जहां पर प्रभु के गुणों की वंशी सुनाई न पड़ती है। वह दस हजार कान की याचना करता है, जिससे सिर्फ प्रभु के लीला गुणों को ही सुनता रहे।

महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः ॥[6]

इस प्रकार स्तुतियों के द्वारा दुःख विनाश, शाश्वतपद, परम-शान्ति, हृदयहार की चरणरति, प्रेमा भक्ति, उपास्य के प्रति परम विश्वास और मोक्ष आदि की प्राप्ति होती है। उपर्युक्त स्तुति के गौण फल हैं। मुख्य फल तो केवल स्तुति ही है।

---

१. श्रीमद्भागव ८.३.३२
२. भागवत महात्म्य प्रथम, ३.७४
३. भागवतमहापुराण ६.११.२५
४. तत्रैव १०.१०.३२
५. तत्रैव ४.२०.२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. संस्कृत साहित्य में स्तुति काव्य की परंपरा

स्तुति का स्थान हृदय है। स्तुति की भाषा हृदय की भाषा होती है। भक्त की वैयक्तिक अनुभूतियों की शाब्दिक अभिव्यक्ति स्तुति है, जिसमें उपास्य के गुण कीर्त्तन की ही प्रधानता होती है। भक्त अपने हृदय को उपास्य के समीप विवृत कर देता है, जिससे भक्त में उपास्य के प्रति एक-निष्ठता तो आती ही है, उसका हृदय भी आवरण रहित होकर मुक्त रूप में अपने वास्तविक स्थिति में उपस्थित हो जाता है। स्तोता की भाषा मानव हृदय की भाषा होती है। वह सम्पूर्ण कर्त्तव्याकर्त्तव्यों को अपने स्तव्य के प्रति समर्पित कर निश्चित हो जाता है। अपना सुख-दुःख, हर्ष-विषाद, राग-द्वेष, आसक्ति-विरक्ति, कुतूहल, आश्चर्य, उद्वेग, भय आदि अपने सम्पूर्ण हृदयस्थ भावनाओं को प्रभु के चरणों में न्योछावर कर देता है, उसके सामने खोलकर रख देता है। वह भक्त किसी प्रकार की कटु भाषा का प्रयोग नहीं करता है— वह वही बोलता है, जो उसके अन्तराल से ध्वनित है। अतएव भक्त के हृदय में स्थित भावनाओं का प्रकाशन स्तुति काव्य में होता है।

स्तुति में भाव तत्त्व की प्रधानता होती है, वस्तु तत्त्व नगण्य हो जाता है। गेयता, लयात्मकता, रसनीयता, रमणीयता एवं भक्त का हृदयोद्गार समन्वित रूप में उत्कृष्ट काव्य का सर्जन करते हैं, जिसमें 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' 'रमणीयार्थः प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्', की शास्त्रीय परिभाषा सम्पूर्णतया संघटित होती है। तात्पर्य यह है कि स्तुतिकाव्य में आह्लादैकमयी वृत्ति की प्रधानता है।

स्तुति का प्रारम्भ सहज अन्तःप्रेरणा से होता है। अदृश्य सत्ता, प्राकृतिक विभूतियों के ज्ञान से उनके प्रति पूज्य भाव या श्रद्धा भाव का उदय हो जाता है, तब भक्त हृदय से उन्हीं के विविध गुणों का गायन करने लगता है। स्तुति में ज्ञान और भावतत्त्व दोनों की प्रधानता होती है। ज्ञान के द्वारा स्तव्य को या किसी विभूति को जानते हैं, स्वयं के प्रति उनकी अनुकूलता जानकर श्रद्धा भाव से समन्वित विगलित हृदय के धरातल से स्तुति काव्यांजलियां उन्हीं के प्रति समर्पित हो जाती हैं।

कुतूहल एवं आश्चर्य भी स्तुति-प्रादुर्भाव का कारण हैं। भगवान् की दिव्य विभूति, दिव्य रूप सौन्दर्य, लीला, सामर्थ्य आदि का दर्शन कर हृदय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुतूहल एवं आश्चर्य से पूर्ण हो जाता है। भक्त वैसा सब कुछ देखने लगता जैसा इस भौतिक संसार में संभव नहीं। श्रीमद्भागवतमहापुराण के सुप्रसिद्ध भक्त अक्रूर की स्तुति भी कुतूहल एवं आश्चर्य मिश्रित है। अभी-अभी श्रीकृष्ण रथ पर थे लेकिन अक्रूर को यमुना जल में दिखाई दे रहे हैं। पुनः अक्रूर ऊपर देखते हैं तो रथ पर श्रीकृष्ण ज्यों के त्यों बैठे हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण के दो रूपों का दर्शन कर अक्रूर आश्चर्य एवं कुतूहल मिश्रित भाषा में पूर्णतः श्रद्धाभाव से प्रभु श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगते हैं। प्रभु की दिव्य झांकी निरखकर अक्रूर हृदय प्रेम से लबालब भर गया। सारा शरीर हर्षावेग से पुलकित हो गया। साहस बटोरकर भगवान् की गद्गद् गिरा में स्तुति करने लगे—

नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं नारायणं पुरुषमाद्यमव्ययम्।
यन्नाभिजातादरविन्दकोशाद् ब्रह्माऽऽविरासीद् यत एष लोकः॥[1]

शोक एवं भय भी स्तुति-उद्भव के निमित्त हैं। सांसारिक दुःख, आगत विपत्ति एवं प्राणसंकट उपस्थित होने पर जब जीव पूर्णतः असहाय हो जाता है, तब वह सर्वात्मना प्रभु का गुण-कथन करने लगता है, क्योंकि अब उसे पूर्ण विश्वास है कि उस स्तव्य को छोड़कर अन्य कोई शक्ति नहीं जो इस आसन्न विपत्ति से बचा सके। ऋग्वेदीय शुनःशेप कृत वरुणस्तुति के मूल में शोक ही है। उसकी पिता ही आज उसकी हत्या के लिए कटार लेकर काल की तरह खड़ा है। इस शोक एवं भयमिश्रित अवस्था में पूर्णनिष्ठा के साथ भगवान् वरुण से रक्षा की याचना करता है। महाभारत में द्रौपदी की स्तुति एवं भागवत में अर्जुन, उत्तरा, गजेन्द्र, देवगण, राजागण की स्तुतियां शोक के धरातल से ही संभूत है। हृदय में विद्यमान करुणा और शोक ही श्रद्धा के साथ शरणागतवत्सल के चरणों में स्तुति के रूप में समर्पित हो जाते हैं।

संसारिक अभ्युदय, धन-दौलत, विजय, आयुष्यविवर्धन, पुत्र-पौत्रादि एवं स्वर्ग की प्राप्ति की कामना भी स्तुत्योद्भव में सहायक होती हैं। वेदों में अनेक स्थलों पर धन-दौलत, पुत्र-पौत्रादि की कामना से ऋषि अपने उपास्य की स्तुति में प्रवृत्त होता है। अधोविन्यस्त अग्नि की स्तुति में आयु, स्वास्थ्य, बल, अन्न एवं वीर्य को बढ़ाने तथा दुःख-बाधादि के विनाश की कामना की गई है—

अग्ने आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम्॥
अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्।
दधद्रयिं मयि पोषम्॥[2]

---

१. श्रीमद्भागवतमहापुराण १०.४०.१
२. ऋग्वेद ९.६६.१९,२१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विभिन्न भावों से भावित भक्त हृदय स्तुति में प्रवृत्त होता है। संसारिक कामनाओं के साथ आस्था तत्त्व को भी स्तुति प्रादुर्भाव के निमित्त माना गया है। स्तव्य के प्रति ऐसा विश्वास होना आवश्यक है कि निश्चय ही वह मेरे कार्यों को पूरा कर सकता है, विपत्तियों से बचा सकता है। इस प्रकार श्रद्धा विश्वास, आस्था, ज्ञान, शोक-करुणा का भाव, आदि स्तुति के निमित्त माने गए हैं।

वैदिक साहित्य में स्तुतियां

स्तुतिकाव्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। सर्वप्रथम स्तुतियों का उत्स ऋग्वेद में मिलता है। प्राकृतिक शक्तियों के प्रति आकर्षित होकर, उन्हें देव के रूप में प्रतिष्ठित कर ऋषि उनकी अभ्यर्थना करते पाए जाते हैं। भक्त के सुख-दुःख, उत्थान-पतन, आशा-निराशा में वे प्राकृतिक देव पुत्र, भाई, बन्धु, पिता एवं संरक्षक बनकर उसकी सहायता करते हैं। इस कार्य के बदले श्रद्धायुक्त हृदय से ऋषि विभिन्न अवसरों पर स्तोत्र, अर्चना, बलि आदि समर्पित करते थे।

किसी सांसारिक कामना, विपत्ति से रक्षा एवं ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए वेदों में स्तुतियां गायी गई हैं। संकट की घड़ी में संपूर्ण भौतिक शक्तियों को असमर्थ, असहाय देखकर भक्त उस प्राकृतिक देव विशेष की स्तुति करता है, जो उसे उस महान् पीड़ा से बचा सके। उसे ऐश्वर्य विभूति दिला सके। इसी प्रकार से विभिन्न प्राकृतिक देवों की अग्नि, इन्द्र, सविता, वरुण, उषा, मरुत, रुद्र, एवं अश्विनीकुमार आदि के रूप में स्तुति की गई है।

अनादिकाल से मनुष्य का प्रकृति के साथ अविच्छिन्न और अविच्छेद्य संपर्क चला आ रहा है। प्रकृति में एक ऐसी रमणीयता व्याप्त है जो सहज में ही मानव को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है तथा उसके हृदय को स्पंदित कर देती है। प्रकृति की विभूतियां, विस्तृत नीलाकाश, सौन्दर्यशालिनी उषा का अनुसमन, जाज्वल्यमान अग्नि, प्रतापशाली आदित्य एवं शीतल ज्योत्स्ना-युक्त चन्द्र अनादिकाल से मानवीय अन्तरात्मा के आकर्षण केन्द्र रहे हैं। सांसारिक दुःख-दैन्य, शोक-करुणा से पराजित मनुष्य ने अपनी आत्मा की शांति के लिए इन विभूतियों का आश्रय ग्रहण किया। इनके अत्यन्त रमणीय शील-सौन्दर्य, रूप-लावण्य के प्रति आकर्षित होकर भक्त हृदय आनन्द से आप्यायित हो उठा तथा उनकी महत्ता, शरण्यता, दयालुता पर मुग्ध होकर उन्हीं की स्तुति करने लगा। यही स्तुति साहित्य के उद्भव का रमणीय सरोवर हैं।

ऋग्वेद की स्तुति सम्पदा

सम्पूर्ण ऋग्वेद स्तोत्रात्मक है। तुदादि गणीय "ऋच स्तुतौ" से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निष्पन्न ऋच् शब्द स्तुत्यर्थक है।[1] विभिन्न प्रकार की कामनाओं एवं प्राकृतिक देवों के सौन्दर्य, उनकी दयालुता एवं शरण्यता आदि गुणों से आकृष्ट होकर ऋग्वेदीय ऋषि स्तुति में प्रवृत्त होता दिखाई पड़ता है।[1]

ऋग्वैदिक स्तुतियों के दो विभाग कर सकते हैं—अध्यात्म परक स्तुतियां एवं सांसारिक अभ्युदय की कामना से की गई सकाम स्तुतियां।

अध्यात्मपरक स्तुतियां

जिन स्तुतियों में प्राकृतिक देवविभूतियों के अतिरिक्त सृष्टि, ब्रह्माण्ड, जीव, मन, आत्मा, परमात्मा, स्वराट् आदि का वर्णन हो उन्हीं स्तुतियों को इस संवर्ग के अन्तर्गत रखा गया हैं। इन सूक्तों में परमात्मा के स्वरूप, उनकी सर्वव्यापकता, सर्वश्रेष्ठता एवं लोकातीत रूप का प्रतिपादन किया गया है। सृष्टि के स्वयंभू शासक के रूप में उनका निरूपण कर सृष्टि का मूल कारण भी उन्हें बताया गया है। कुछ स्तुतियों का विवेचन यहां प्रस्तुत है—

१. पुरुषसूक्त-ऋग्वेद (१०.९०)

पुरुषसूक्त में उस परमसत्ता की विभूतियों का गान किया गया है, जिसका स्वरूप विलक्षण है। वह विराट् है, अनन्त है। वह ब्रह्माण्ड में भी है और उसके बाहर भी है। वह सर्वव्यापक और विश्वातीत है। वह साकार भी है निराकार भी है। वह दिग्व्यापी होते हुए भी दिग् से परे है। इस सूक्त में सर्वेश्वरवाद की झलक मिलती है—"पुरुष एवेदंसर्वम्" वह सर्वकाल व्यापक होते हुए भी कालातीत है। वह भौतिकता और अमरत्व दोनों का स्वामी है। उसी से संपूर्ण सृष्टि निःसृत होती है। वह सृष्टि का उपादान कारण एवं निमित्त कारण दोनों है। उसकी समस्त विभूतियों का वर्णन नहीं किया जा सकता है। उस पुरुष की महिमा का जितना ही वर्णन किया जाए वह वर्णन करने वालों की दृष्टि में भले ही अधिक हो परन्तु जिसका वर्णन किया जा रहा है उसकी दृष्टि से वह अवश्य ही कम है। मानव कल्पना जितनी दूर तक जा सकती है उतनी ही उस परम सत्ता की व्याप्ति नहीं हो सकती। अतः ऋषि अपनी सीमा और विवशता को देखते हुए कह उठता है कि पुरुष की महिमा का वर्णन कितना भी क्यों न किया जाए वह उससे भी बढ़कर है।

वह एकमेव अद्वितीय पुरुष ही सर्वरूपात्मक होने के लिए स्वयं को हवि के रूप में अर्पित कर देता है। विश्वातीत पुरुष ही समस्त पश्चात्वर्ती रूपों को उत्पन्न करता है। उससे विकसित सृष्टि कोई सामान्य प्रक्रिया नहीं थी। स्तुतिकार ने उसका वर्णन यज्ञीय रूपक के द्वारा किया है। उसे सर्वहुत

१. सिद्धांत कौमुदी—तुदादिगण—धातुसंख्या १३८६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की संज्ञा दी है। मर्त्य अर्थात् भौतिक-सृष्टि के साथ-साथ मानसी-सृष्टि (वेदसृष्टि) दोनों उसी से अभिव्यक्त होती है। उससे ही समस्त लोकों की उत्पत्ति हुई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विश्वातीत पुरुष भौतिक में अन्तर्भूत हो जाता है। अमर मर्त्य के रूप में व्यक्त हो जाता है तथा भौतिक शरीर में मूर्तित हो जाता है।

हिरण्यगर्भ सूक्त

हिरण्यगर्भ सूक्त ऋग्वेद का प्रसिद्ध सूक्त है। प्रत्यक्ष द्रष्टा ऋषि अपने उपास्य के गुण, ऐश्वर्य, विभूति और शरण्यता को देखकर गद्गद्गिरा में उसी का गायन करने लगता है। अर्वाचीन स्तुतिकाव्य का प्रारम्भिक मनोरम स्थल ये ही ऋग्वेदीय उपवन हैं, जहां पर बैठकर अपने उपास्य की छाया में स्थित होकर प्रत्यक्षद्रष्टा ऋषि मनसा वाचा और कर्मणा उनकी स्तुति करता है।

अपनी ही पारदृश्वा प्रज्ञाचक्षुओं से उसकी विभूति, ऐश्वर्यलीला, गुण-गरिमा का दर्शन करता है और पुनः उसे शब्द के माध्यम से अभिव्यक्त करने लगता है—हमारा इष्टदेव कोई सामान्य पुरुष नहीं बल्कि सृष्टि का नियामक है। वह सृष्टि के आदि में विद्यमान था। सम्पूर्ण जगत् का स्वामी है एवं द्यावा, पृथिवी तथा आकाश को धारण करने वाला है। सम्पूर्ण जगत् को प्राणन करता है, जीवन देता है, प्रेरित करता है और गतिमान् बनाता है। वह स्वयं शक्ति का स्रोत है, ऊर्जा का पुंज है, शक्ति दाता है। वह समस्त देव, मनुष्य, मर्त्य एवं अमरत्व का स्वामी है। कोई भी उसके आज्ञा और नियम का उल्लंघन नहीं कर सकता है। वह सबका प्रभु है।

इस अध्यात्मपरक सूक्त का पर्यवसान कामना में होता है। ऋषि अपने उपास्य की महत्ता का प्रतिपादन कर उस सामर्थ्यवान् से कष्ट निवृत्ति की कामना करता है, संसारिक एवं पारलौकिक सुख की याचना करता है—'मानो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्याः।' अन्त में ऋषि उस देवाधिदेव से अक्षय धन सम्पत्ति एवं प्रभूत समृद्धि मांग बैठता है—

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥'

इस सूक्त में आराध्य देव के प्रति स्तोता की एकनिष्ठता, अनन्यता एवं परानुरक्ति की अभिव्यक्ति होती है। उसका प्रभु सर्वव्यापक सर्वशक्तिशाली एवं अनुग्रह-कर्त्ता है। इस महिमावान् देव की उपासना ही जीव का एकमात्र शरण है। "कस्मै देवाय हविषा विधेम" यह भक्ति का अमोघ सूत्र है। "कस्मै" यहां प्रश्नवाचक नहीं बल्कि उस सूक्ष्म सामर्थ्यवान् सत्ता की ओर

१. ऋग्वेद १०.१२१.१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इंगित करता है, जो भक्ति का अक्षय स्रोत है, आद्यबिन्दु है। इससे यह ध्वनित होता है कि उस महिमावान् को छोड़कर किसी अन्य की उपासना में जीव का त्राण नहीं है, शांति नहीं है, अन्यत्र कहीं विराम नहीं है, विश्राम नहीं है। एकमात्र उसी की आराधना अभीष्ट है। वही विविध नामों से जाना जाता है, वही हिरण्यगर्भ है, वही विश्वकर्मा है, वही प्रजापति है, वही पुरुष है। तात्पर्य यह है कि एकमात्र वही देवाधिदेव है।

सकाम स्तुतियां

सांसारिक अभ्युदय, दुःख-निवृत्तयर्थ, शोकप्रशमनार्थ, धन-दौलत, पुत्र-पौत्र, पत्नी, आयुष्य, यश, ऐश्वर्य, विजय, शक्ति, सुन्दर शरीर की प्राप्ति के लिए, मानसिक विकारों को दूर करने के लिए भवसागर संतरणार्थ, बुद्धि जागरण हेतु, दिव्यलोक की प्राप्ति के लिए एवं दया के लिए समर्पित स्तुतियां इस संवर्ग के अन्तर्गत आती हैं। ऋग्वेद में ऐसे ही स्तुतियों का बाहुल्य है। विभिन्न प्रकार की कामना से ऋषि, गृहपति अपने उपास्य की स्तुति करता है। अग्नि, इन्द्र, सविता, रुद्र, वरुण, विष्णु, मरुत एवं उषा की स्तुतियां इसी कोटि के अन्तर्गत आती हैं। इन देवों की स्तुतियों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है—

अग्नि

अग्नि वैदिक आर्यों का प्रमुख देव है। लगभग दो सौ स्वतंत्र सूक्तों में और अन्यत्र अन्य देवों के साथ इसकी स्तुति की गई है। याज्ञिक प्रधानता के कारण लगभग सभी मण्डलों का प्रथम सूक्त अग्नि देव को ही समर्पित किया गया है। ऋग्वेद के प्रथम मंत्र में ही इस देवता की स्तुति की गई है—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥[1]

इस सूक्त में अग्नि से विभिन्न प्रकार की याचना की गई है—हे अग्नि! नित्य प्रति वर्धनशील, कीर्तिदायक एवं अतिशय वीर पुत्रों से युक्त धन हमारे लिए धारण करो। तू मेरे यज्ञ की रक्षा करो। हे हिंसारहित यज्ञों के शासक, नियम के संरक्षक, अत्यन्त प्रकाशमान, नित्यवर्धनशील अग्नि! जिस प्रकार पिता पुत्र के लिए कल्याणकारक होता है उसी प्रकार तू हमारे कल्याण के लिए हमारे साथ होवो।[2]

विभिन्न स्तोताओं ने अग्नि को विभिन्न विशेषणों से विभूषित किया है। घृतपृष्ठ, घृतमुख घृतलोम, घृतकेश आदि विशेषणों के द्वारा अग्नि के

१. ऋग्वेद १.१.१
२. तत्रैव १.१.९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यज्ञीय रूप पर प्रकाश पड़ता है। वह यज्ञीय देवता हैं, यज्ञ का पुरोहित, ऋत्विज् एवं रक्षक है।

मानव के सुख-दुःख में अन्य देवों की अपेक्षा वह अत्यधिक साथ रहता है। इसलिए उसको दमूनस, गृहपति और विश्वपति आदि नामों से पुकारा जाता है। वह स्तोताओं का महान् उपकारक है। उनका मित्र है, जो इसे अतिथियों की भांति घरों में सत्कार करते हैं, तीन बार हवि प्रदान करते हैं।

वह सर्वश्रेष्ठ देव है। एक सम्राट् है। असुर उपाधि का प्रयोग उसके लिए किया जाता है। वह सर्वोच्च प्रकाशमान् देव है। अमरत्व का अभिभावक एवं पति है। ऋग्वेद में वैश्वानर तनूनपात्, नाराशंस, जातवेदस् आदि नामों से भी इसकी स्तुति की गई है। इसे सर्वतोप्रज्ञावाला, सत्यस्वरूप तथा अतिशय कीर्त्तिवाला कहा गया है।

इस प्रकार अग्नि यज्ञ का देवता, रत्नों को धारण करने वाला तथा अपने उपासकों का महान् उपकारक है।

इन्द्र

इन्द्र वैदिक आर्यों का प्रमुख देवता है। ऋग्वेद में लगभग २५० स्वतंत्र सूक्तों में तथा अन्य देवों के साथ भी ५० सूक्तों में इसकी स्तुति की गई है। इन्द्र अपने उपासकों का महान् उपकारक तथा अद्भुत पराक्रमशाली है। अपने पराक्रम से सम्पूर्ण संसार को आक्रान्त कर उसका स्वामी बन बैठा।

इन्द्र अपने भक्तों की सम्पूर्ण कामनाओं को पूर्ण करता है। सांसारिक वस्तुओं—ऐश्वर्य, धन, पुत्रादि की कामना से ऋषि इन्द्र की स्तुति करता है। युद्ध में विजय के लिए योद्धागण अपने तरफ बुलाते हैं—

यस्माऋते विजयन्ते जनासो।
यं युध्यमाना अवसे हवन्ते॥[1]

वह भक्तों पर आई विपत्तियों को दूर हटाता है। राक्षसों का विनाश कर संसार में शांति स्थापित करता है। वह जल का उत्प्रेरक, पर्वतों को स्थिर करने वाला तथा अन्तरिक्ष का स्तंभक है।

उसके मानवीय रूप का वर्णन भी विभिन्न स्तुतियों में मिलता है। हाथ, सिर, पैर, पेट आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। वह सोमपान का बड़ा शौकीन है, इसलिए उसे सोमपा भी कहा गया है।

इन्द्र एक शक्तिशाली देव के रूप में उभरकर सामने आता है। द्युलोक, अंतरिक्ष लोक एवं पृथिवी लोक उसकी महानता को नहीं प्राप्त कर सकते।

१. ऋग्वेद २.१२.९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपनी शक्ति से वह सभी देवों को अभिभूत किया है। वह वृत्र का हन्ता है तथा पणियों एवं बल नामक असुर को मारकर गायों को मुक्त किया था।

इन्द्र अपने स्तोताओं का बड़ा सहायक है। वह धनदाता है। उसकी उदारता के कारण ही उसे मघवन् कहा जाता है।

इस प्रकार इन्द्र ऋग्वैदिक देवों में अत्यन्त शक्तिशाली, राक्षसों का विनाशक और भक्तों का रक्षक है।

वरुण

वरुण ऋग्वेद का प्रधान देवता है। लगभग एक दर्जन सूक्तों में उसकी स्तुति की गई है। ऋग्वेद के प्रथम मंडल के २४ वां एवं २५ वां सूक्त अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह आर्त्त स्तुति है। ब्राह्मण बालक शुनःशेप अपने ही लोभी पिता को विघातक के रूप में देखकर थर्रा उठता है। मृत्यु आसन्न है। कौन है जो उसे मृत्यु से बचा सकता है?

उसके हृदय की भावना, अवचेतन मन का सुषुप्त संस्कार और तत्कालीन आसन्न मृत्यु से उत्पन्न शोक तीनों मिलकर एक अद्भुत रसायन तैयार करते हैं, जो स्तुति के रूप में अभिव्यक्त हो जाता है– उस सर्जनहार के प्रति जो उसे बचा सके, अभय दिला सके। पुकार उठता है उस देव विशेष को जो सर्वसमर्थ है सर्वशक्तिमान् है। देवता वरुण के चरणों में वह सर्वात्-मना समर्पित होकर अपनी प्राणरक्षा की याचना करता है— विगलित हृदय से, एकनिष्ठ हृदय से, पूर्ण आस्था के साथ—

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा नः आयुः प्रमोषी॥[1]

वरुण का शौर्य एवं पराक्रम अवितथ है। वध्य शुनःशेप पूर्ण विश्वस्त हो चुका है कि इस घोर विपत्ति में एकमात्र रक्षक वरुणदेव ही है। वह प्राण पुंज को धारण करता है। शुनःशेप याचना करता है कि प्राणरूप किरणें सदा मेरे शरीर में बनी रहें। अजीगर्तात्मज अपने शत्रु विनाश के लिए वरुण से प्रार्थना करता है—

अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित्।[2]

प्रथम सूक्त (१.२४) में शुनःशेप बार-बार पाशों से मुक्ति एवं जीवन रक्षा की याचना करता है। इस सूक्त में प्रतिपादित किया गया है कि वरुण की शक्ति एवं साहस अपरिमेय है। वह हरेक विपत्तियों से अपने भक्तों को बचाने में समर्थ है। विभिन्न ओषधियों का स्वामी है और उन्हीं ओषधियों से अपने स्तोताओं का प्राण रक्षण करता है।

---

१. ऋग्वेद १.२४.११
२. तत्रैव १.२४.८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय सूक्त (१.२५) में वरुण को नैतिक देवता के रूप में चित्रित किया गया है। जाने अनजाने में अपने द्वारा सम्पादित पाप कर्मों के लिए भक्त वरुण से क्षमा याचना करता है। स्तुति के द्वारा स्तुत्य वरुण के क्रोध को शांत करना चाहता है। एक अत्यन्त सुन्दर एवं सारगर्भित उपमा का प्रयोग शुनःशेप करता है—

विमृडीकाय ते मनो रथीरश्वं न संदितम्।
गीर्भिवरुण सीमहि॥[1]

हे वरुण! तुम्हारी कृपा के लिए स्तुतियों के द्वारा तुम्हारे मन को ढीला करते हैं—प्रसन्न करते हैं, जिस प्रकार सारथी बंधे हुए अश्व को ढीला करता है।

नैतिक शास्ता होने के कारण मनुष्यों को नैतिक पतन होने पर दण्डित करता है। इसलिए शुनःशेप बार-बार प्रार्थना करता है कि हे वरुण! यदि तुम्हारे नियमों का उल्लंघन हो गया हो तो उसके लिए हमें अपने शस्त्रों का शिकार मत बनाओ, मुझे मृत्यु मत सौंपो, मुझ पर क्रोध मत करो[2]।

भक्त बार-बार यही प्रार्थना करता है कि वरुण का अवितथ क्रोध मुझे अपना विषय न बनाये। शुनःशेप अपनी स्तुति में सुन्दर-सुन्दर उपमाओं की झड़ी लगा देता है। जैसे पक्षी अपने घोंसले की ओर जाते हैं, उसी तरह हे वरुण! जीवन प्राप्ति के लिए मेरी कामनाएं तुम्हारी ओर भाग रही हैं।[3] जिस प्रकार गायें अपनी गोष्ठों की ओर दौड़ती है वैसे ही मेरी स्तुतियां तुम्हारी ओर जाती हैं।[4] सुक्रतु—शोभना कर्मों वाला वरुण आयु प्रदाता है इसलिए भक्त संकटकाल में आयु विवर्धन की याचना करता है—

सः नः विश्वाहा सुक्रतुः आदित्यः सुपथा करत्।
प्रण आयूंषि तारिषत्॥[5]

पाप प्रक्षालन के निमित्त की गई अभ्यर्थना से शुनःशेप का हृदय निर्मल हो जाता है, अतः उसके अन्दर पवित्रता प्रवेश करने लगती है। वह उन्मुक्त हृदय से पुकार उठता है—हे वरुण! मेरे आह्वान को सुनो, मुझ पर अनुग्रह करो। हे मेरे रक्षक! मैंने सहायता के लिए तुम्हें पुकारा है।

---

१. ऋग्वेद १.२५.३
२. तत्रैव १.२५.२
३. तत्रैव १.२५.४
४. तत्रैव १.२५.१६
५. तत्रैव १.२५.१२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तुम मेरी पुकार का इस मृत्यु काल में प्रत्युत्तर दो। मेरे समस्त पाशों को काटकर मुझे जीवन प्रदान करो।[1]

ऋग्वेद में लगभग एक दर्जन वरुण विषयक सूक्त हैं जिनके आधार पर वरुण नैतिकता का अधिष्ठाता सिद्ध होता है। नैतिक विधान को वेदों में ऋत कहा गया है, अतः वरुण को 'ऋतस्य गोप्ता' विशेषण से विभूषित किया जाता है। उसकी दृष्टि से कुछ भी छिपा नहीं रहता। अतः वह सर्वद्रष्टा है। यह सर्वथा उचित है कि ऐसे धर्मप्रिय सर्वोच्च सत्ता के समक्ष निर्बल प्राणी अपनी त्रुटियों को खुले दिल से स्वीकार कर लेता है और पाप विनाश के लिए अभ्यर्थना करता है कि हे वरुण ! हम मानवों से जो अपराध हुआ है या अज्ञानवश कर्त्तव्य पालन में जो त्रुटि हुई है, उन पापों के कारण हमारा विनाश न करो।[2]

वरुण विषयक स्तुतियों के अवलोकन से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि भक्तों ने इनमें अपने हृदय को खोलकर रख दिया है। हृदय के समस्त अच्छे-बुरे भावों को विवृत कर दिया गया है। वास्तव में ये हृदय से निकली हुई बातें हैं, अतः सबके हृदय को छू लेती हैं।

इस प्रकार वरुण नैतिक सम्राट्, ऋत का शासक, धृतव्रत, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, दयालु, पतितपावन, सर्वद्रष्टा और भक्तों के परमशरण्य के रूप में चित्रित किए गए हैं।

विष्णु से सम्बद्ध स्तुतियां

विष्णु ऋग्वेद का प्रसिद्ध देवता है। इसके निमित्त पांच स्तुतियां गायी गई हैं। यह परोपकारी, धनदाता, उदार, सबका संरक्षक तथा सम्पूर्ण विश्व का भरण पोषण करने वाला है। उसके चरित्र की मुख्य विशेषता है कि वह गर्भ का संरक्षक है। गर्भाधान के निमित्त अन्य देवों के साथ उसकी स्तुति की जाती है।

स्तुतियों में उसका मानवीय रूप भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। उसके तीन कदमों का उल्लेख विशेष रूप से किया गया है। विक्रम, उरुक्रम, उरुगाय आदि शब्दों के द्वारा उसके तीन कदमों का उल्लेख ऋग्वेद में करीब एक दर्जन बार किया गया है। अपने तीन कदमों के द्वारा सम्पूर्ण विश्व को नापा था। उसके दो कदम तो दिखाई पड़ते हैं लेकिन एक कदम अदृश्य है। अर्थात् विष्णु सर्वव्यापक तो है ही लोकातीत भी है।

वह सबके द्वारा स्तुत्य है। उसका लोक परमानन्द का धाम है। भक्त जन प्रार्थना करते हैं कि मेरी शक्तिशाली प्रार्थना ऊर्ध्वलोक निवासी, विशाल

१. ऋग्वेद १.२५.१९-२१
२. तत्रैव ७.८९.११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कदमवाले, कामनाओं को पूर्ण करने वाले विष्णु के पास जावे। जिसने संपूर्ण विश्व को नापा था। जो सम्पूर्ण लोकों को धारण करता है। और अन्त में भक्त की यह कामना होती है कि मैं उस विष्णु के परम आनन्दमय निकेतन को प्राप्त करूं, जहां पर मधु का सरोवर है।

इस प्रकार विष्णु सर्वव्यापक, लोकातीत, भक्तों के परम हितकारी उरुक्रम, उरुगाय, गिरिचर, समर्थ, कामप्रदाता और सर्वश्रेष्ठ देव है।

सविता

ऋग्वेद के ११ सूक्तों में सविता देव की स्तुति की गई है। मुख्यत वह स्वर्णिम देवता है। उसके शरीर के प्रत्येक अंग स्वर्णिम हैं। वह स्वर्णिम रथ पर चलता है। उसका रथ सफेद पैर वाले दो अश्वों द्वारा खींचा जाता है।

वह सम्पूर्ण जगत् का प्रकाशक देवता है। समस्त जीव समुदाय को अपने-अपने कर्मों में प्रेरित करता है। उसका स्थान धूलरहित अन्तरिक्ष लोक है।

सविता एक शक्तिशाली देवता है। उसे "असुर" संज्ञा से अभिहित किया गया है। उसके व्रत नियत हैं। कोई भी उसकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता। सभी देवता उसके नेतृत्व का अनुसरण करते हैं। इन्द्र, वरुण, रुद्र, मित्र अर्यमन् आदि कोई भी देवता उसका गतिरोध नहीं कर सकते। वह सम्पूर्ण जगत् को विश्राम देता है। अपने स्तोताओं की सभी कामनाओं को पूर्ण करता है।

सविता प्रेरक देवता है। सबको अपने-अपने कर्मों में लगाता है। भक्तों के पापों को दूर करता है। ऋषि प्रार्थना करता है कि हे सविता देव! समस्त पापों को दूर कर हम सबका कल्याण करो।[1] वह भक्तों को धन देता है। रोग को दूर करता है तथा मायावियों का विनाश करता है। सविता देव से भक्त प्रार्थना करता है कि हे सविता अन्तरिक्षस्थ धूलि-रहित मार्ग से आकर मेरी रक्षा करो, हमारी तरफ से बोलो।[2]

इस प्रकार स्वर्णिम सविता सर्वव्यापक, प्रकाशमान्, रक्षक, पाप विनाशक, प्रकाशक, उत्प्रेरक धनदाता एवं हितकारक देवता है। यही कारण है कि आज भी प्रत्येक हिन्दू के घर में उनकी उपासना की जाती है। सुप्रसिद्ध गायत्री मन्त्र से हर भक्त उनकी उपासना करता है—

---

१. यजुर्वेद ३०.३

२. ऋग्वेद १.३५.११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥[1]

उषा से सम्बन्धित स्तुतियां

ऋग्वैदिक देवों में उषा की महत्ता प्रसिद्ध है। लगभग २० स्थलों पर प्रकाश, ज्ञान, धन, आयुष्य, भोगादि की कामना से ऋषियों ने रूपवती ऋतावरी उषा की स्तुति की है। भक्तों ने उस देवी के लिए अनेक साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग किया है। मघोनी (दानशीला), विश्ववारा—सभी प्राणियों के द्वारा वरणीया, प्रचेता-प्रकृष्टज्ञान से सम्पन्न, सुभगा, विभावरी, दास्वती, पुरानी युवति, हिरण्यवर्णा, अश्वावती, गोमती, जीरा (प्रेरित करने वाली), वाजिनीवति, शत्रुहन्त्री आदि सुशोभन विशेषणों से स्तोताओं ने अपने इष्टदात्री देवी को अलंकृत किया है।

संसारिक अभ्युदय की लालसा, भौतिक उत्थान, भोग प्राप्ति, धन-समृद्धि एवं शत्रु विनाश के लिए भक्त उषा की स्तुति करता है। प्रकाशवती आकाशात्मजा देवी उषा से याचना करता है—

सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
सह द्युम्नेन बृहता विभावरि राया देवी दास्वती ॥[2]

वह अश्व, गाय, धन-दौलत की स्वामिनी है। अपने भक्तों को सारे पदार्थों से परिपूर्ण करती है। भक्त याचना करता है कि—हे ऋतावरि ! मेरे प्रति सुन्दर वाणी बोलो और धन-दौलत से मुझे पूर्ण करो।[3]

एक सुन्दर दृष्टांत सकाम स्तुति के भाव को अधिक स्पष्ट करने में सहायक है। जैसे धन की इच्छा वाले समुद्र में नाव को सजाकर तैयार करते हैं उसी प्रकार भक्त उषा के आगमन पर रथ लेकर तैयार रहते हैं।[4] वह धनदात्री है।

उषा भक्तों को सम्पूर्ण प्राणियों को अपने कर्मों में प्रेरित करती है। वह हमेशा अपने भक्तों पर नजर लगाए रहती है। अपने स्तोताओं को धन देती है तथा उसके शत्रुओं एवं पापों का विनाश करती है। इसीलिए भक्त अपने अरिनाश की याचना करता है—

अपद्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदपसिधः ॥[5]

---

१. ऋग्वेद ३.६२.१०
२. तत्रैव १.४८.१
३. तत्रैव १.४८.२
४. तत्रैव १.४८.३
५. तत्रैव १.४८.८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह संसारिक भोग वस्तुओं के अतिरिक्त ज्ञान की दात्री भी है। स्तोताओं के हृदय में व्याप्त संसारकल्मष का विनाश कर हृदय को चमकीली किरणों से प्रकाशित करती है।

भक्त बेचैन है अपनी बात उषा देवी से विनिवेदित करने के लिए। सम्पूर्ण प्राणियों की रक्षा के लिए वह देवी से बार-बार प्रार्थना करता है।[1] ऋषि प्रस्कण्व धन, अन्न, यश वीर्य पराक्रम आदि की याचना करता है— हे महती उषा, प्रचुर तथा विविध रूप वाले धन से, पुष्टि कारक अन्न से; सबको जीतने वाले यश से हमें संयुक्त करो।[2] उषा विषयक स्तुतियों में स्तोताओं ने प्रातःकाल की अधिष्ठात्री देवी के रूप में उसका गुणगान किया है। उषा के स्वरूप के चित्रण में काव्यात्मक सौंदर्य, उदात्तता, ताजगी और नवीनता है। उसके स्वरूप की छटा सबको सम्मोहित, आकर्षित एवं आह्लादित करती है। सौन्दर्य की अप्रतिम सुनरी उषा अपने प्रकाश को किसी से भी नहीं छिपाती। सबके लिए समान रूप से वह अन्धकार को दूर करती है। वह सबको जगाने वाली है इसीलिए वह सबका प्राण है, जीवन है। वह सभी को गति के लिए उत्प्रेरित करती है। स्तोता बारं-बार उससे निवेदित करते हैं कि वह सबको दीर्घजीवन, धन, सन्तान एवं प्रकाश प्रदान करे।

ऋग्वेद में इन देवों के अतिरिक्त निर्जीव पदार्थ पत्थर, कुल्हाड़ी आदि की भी स्तुति की गई है। इससे हमारे ऋषियों का विशाल दृष्टिकोण एवं परमसत्ता की सर्वव्यापकता का उद्घाटन होता है।

ऋग्वेदिक स्तुतियों का महत्त्व

वैदिक ऋषि साक्षात्धर्मा थे। उन्होंने प्राकृतिक विभूतियों का दर्शन कर उनका देव रूप में प्रतिष्ठापन किया। प्रकृति की मोददायिनी गोद में ही उनके जीवन का सवेरा हुआ। प्रकृति के साथ ही वे रम गए और अन्त में प्रकृति में ही विलीन हो गए। प्रकृति के विभूतियों से आकृष्ट होकर ऋषियों ने उनके साथ संबन्ध स्थापित कर अपनी रक्षा, समृद्धि, विकास, शांति आदि के लिए उन शक्तिशाली विभूतियों की विभिन्न प्रकार से स्तुति की। उन स्तुतियों के पर्यालोचन से अधोविन्यस्त रूप में उनका महत्त्व उद्-घाटित होता है—

१. प्राकृतिक शक्तियों का देव रूप में निरूपण

ऋग्वेदीय ऋषि प्रकृति के रूपलावण्य, भाव सौन्दर्य और शील सौरभ

---

१. ऋग्वेद १,४८.१०

२. तत्रैव १.४८.१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर मुग्ध होकर उसके विभूति तत्त्व को देव के रूप में प्रतिष्ठित किया। जो प्राकृतिक विभूतियां उसके साथ हुई, उसके सुख-दुःख के रक्षक बनी, उन्हें देव मानकर ऋषि उपासना करने लगा। तभी से प्राकृतिक विभूतियां विभिन्न देवों के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी।

२. मानवीकरण

ऋग्वेदीय स्तुतियों में प्राकृतिक विभूतियों का मानवीकरण किया गया है। उसके स्वरूप मुंह, नाक, कान, हाथ, पैर आदि संपूर्ण शरीर की कल्पना की गई है। उसके रथ, अस्त्र शस्त्र आदि का भी ऋषि अपने विभिन्न स्तुतियों में उल्लेख करता है। उपास्यमान देवों का स्वरूप, परिवार, शक्ति एवं उनकी कार्य क्षमता का उदात्त निरूपण किया गया है। स्तोता आराध्य की मानवाकृति तो प्रस्तुत करता ही है, साथ ही उनके लोकातिशायी गुणों का निरूपण भी करता है।

३. आत्मनिवेदन या समर्पण

विश्व के विहड़ वन में जब जीव भटकता हुआ अत्यन्त व्यथित हो उठता है, तब अपने स्रोत, मूलकारण परमसत्ता को याद करने लगता है। असहाय अवस्था में वह उसको पुकार उठता है, यह पुकार ही आत्मनिवेदन या शरणागति है। जब भक्त की भौतिक शक्ति जबाव दे देती है तब वह सर्वात्मना प्रभु चरणों में समर्पित होकर अपनी हृदय की व्यथा को खोलकर रख देता है। स्तुतियों के मूल में यही भावना निहित है। जब शनुःशेप मृत्यु को निश्चित देखता तब वह अपनी हृदय व्यथा नैतिक सम्राट् वरुण से निवेदित करता है।[1] भक्त अपने उपास्य से निवेदित करता है—हे वरणीय देव! तुम्हारा प्यारा होकर भी मैं दिन-रात कितने पाप किया करता हूं। इन पापों के बावजूद भी तुमने भोग प्रदान किए हैं। हे पूज्यदेव ये भोग मुझे नहीं चाहिए। मुझे तो अब अपनी शरण प्रदान करो। इन पापों को हटाओ।[2]

४. अनन्यता

भक्त अपने उपास्य को छोड़कर और किसी की उपासना नहीं करता। हिरण्यगर्भ सूक्त का अर्द्धार्क—"कस्मै देवाय हविषा विधेम" उपास्य के प्रति अनन्यता एवं प्रगाढ़ निष्ठा का सूचक है। भक्त निवेदन करता है—हे बहुतों के द्वारा पुकारे गये प्रभु! तुम्हारी ओर गया हुआ मन अब और किसी ओर नहीं जाता। मेरी समस्त कामनाएं अब तुम्हारे ही अन्दर केन्द्री-

१. ऋग्वेद १.२४.११

२. तत्रैव ७.८८.६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूत हो गयी हैं। हे परम शोभासम्पन्न ! अब तुम मेरे हृदय रूपी सिंहासन पर राजा की भांति विराजमान हो जाओ और मेरे सोमस्वरूप निर्लिप्त आत्मार्पण को स्वीकार करो।[1]

५. ऐश्वर्य, धन, पुत्र-पौत्रादि, आयुष्य, बुद्धिप्रशांति, निरोग, विजय आदि की कामना से ऋग्वेदीय ऋषि अपने उपास्य का आह्वान करते हैं, अपनी वागञ्जलि उस प्रभु के चरणों में समर्पित करते हैं।

६. ऋग्वेदीय स्तुतियों में भक्त और भगवान् का सम्बन्ध परिलक्षित होता है। भक्त भगवान् के साथ पिता, पुत्र, भाई आदि का सम्बन्ध स्थापित कर निश्चिंत हो जाता है। अग्नि देव से निवेदित करता है कि हे अग्नि! पिता के समान उपकारक होवो।[2]

७. स्तुतियों में काव्यतत्त्व भी प्रचुर रूप में पाये जाते हैं। ऋषियों ने उपास्यों की शक्ति के निरूपण के प्रसंग में उपमान और रूपकों की सम्यक् योजना की है। संगीतात्मकता, गेयता और लयात्मकता ऋग्वैदिक स्तोत्रों में पद-पद विद्यमान हैं। प्रथित पाश्चात्त्य विपश्चित मैकडॉनल का अभिमत है कि ऋग्वेद में छन्दोमयता के साथ गेयता भी पायी जाती है तथा समस्त स्तुतियों में संगीत तत्त्व की पूर्ण योजना उपलब्ध है।[3] मैक्समूलर ने स्तुतियों में संगीत के साथ काव्यत्व की उपस्थिति की भी मान्यता प्रदान की है।[4] आचार्य रामचन्द्र मिश्र के अनुसार—ऋग्वेद में गेयता है। स्तुति परक ऋचाओं में आत्माभिव्यंजना, विचारों की एकरूपता, संक्षिप्तता आदि के अतिरिक्त उदात्त, अनुदात्त और स्वरित इन तीन स्वरों का भी उपयोग हुआ है, जिन्होंने गेयता के इंगित तत्त्वों के साथ इन ऋचाओं को अधिक संगीतमय बना दिया है।[5]

स्तुतियों में विभिन्न अलंकारों का प्रयोग हुआ है। उपमा तो स्तुतियों का प्राण है। अनेक स्थलों पर सारगर्भित उपमाओं का प्रयोग किया गया है। एक स्थल पर भक्त वरुण की स्तुति करते हुए कहता है कि हे वरुण ! हम अपने स्तुतियों के द्वारा तुम्हारे मन को वैसे ही ढीला करते हैं जिस प्रकार सारथी बंधे अश्व को। जैसे पक्षी अपने घोंसलों की ओर जाते हैं, वैसे ही हे वरुण ! जीवन प्राप्ति के लिए मेरी कामनाएं तुम्हारी ओर भाग रही हैं।

---

१. ऋग्वेद १०.४३.३
२. तत्रैव १.१.९
३. ए वैदिक रीडर, पृ० २७-२८
४. द वेदाज, पृ० ४३
५. वैदिक साहित्य में गीतितत्त्व—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् पत्रिका, वर्ष ६ अंक ३, पृ० ९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिस प्रकार गाएं अपने गोष्ठों की ओर जाती है उसी प्रकार मेरी स्तुतियां तुम्हारी ओर जा रही है।[1] इस प्रकार ऋग्वेदीय स्तुतियों में तथ्य निरूपण के अतिरिक्त काव्य तत्त्व भी प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं।

अन्य वेदों में निबद्ध स्तुतियां

यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में भी स्तुतियां पायी जाती हैं। यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता ४१ वां अध्याय ऋग्वेद का पुरुष सूक्त है। यह स्तुति की दृष्टि से महनीय है। यजुर्वेद का अन्तिम अध्याय ईशावास्योपनिषद् है। इसमें परमप्रभु की सर्वव्यापकता का प्रतिपादन किया गया है। आठवें मन्त्र में प्रभु के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों का प्रतिपादन हुआ है—

स पर्यगात् शुक्रमकायमव्रणमस्नाविरंशुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भू-र्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यद्धात् शाश्वतीभ्य समाभ्यः।

प्रभु प्राकृत गुणों से विहीन होने के कारण निर्गुण और अपने गुणों से युक्त होने के कारण सगुण कहलाता है। मन्त्र में अकायम्, अव्रणम्, अस्नाविरम्, अपापविद्धम् आदि शब्दों के द्वारा प्रभु के निर्गुण रूप का वर्णन किया गया है और शुक्रम्, शुद्धम्, कवि, मनीषी, परिभूः और स्वयंभूः शब्दों के द्वारा उसके सगुणत्व का प्रतिपादन किया गया है। १६ वें मन्त्र में कहा गया है कि हे प्रभु! हमें ऐश्वर्य के सम्पादन के लिए सुपथ से ले चलो। हमारे अन्दर जो इस विषय में वक्रतापूर्ण, छल-छद्म की बातें आती हैं; पापमयी प्रवृत्ति जागृत होती है उसे हमसे दूर कर दो। आपकी चरण शरण में रहते हुए, हम सदैव सत्पथ पर चलकर ही ऐश्वर्य को प्राप्त करें—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यास्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमोक्तिं विधेम॥[2]

३४ वें अध्याय का शिव संकल्प सूक्त में स्तुति के सभी तत्त्व समाहित हैं। उसमें मन की स्थिरता एवं कल्याणकारी रूप की कामना की गई है। १६ वें अध्याय में रुद्र की स्तुति की गई है। इस प्रकार यजुर्वेद में अनेक भक्तों ने भक्ति भावित हृदय से अपने प्रभु की स्तुति की है।

सामवेद में अनेक स्तुतियां संकलित हैं। इसमें ऋग्वेदिक ऋचाओं का संग्रह है। ऋक् मन्त्रों के ऊपर गाए जाने वाले गान ही साम शब्द के वाच्य हैं। यज्ञ के अवसर पर जिस देवता के लिए हवन किया जाता है, उसे बुलाने

१. ऋग्वेद १.२५.३, ४, १६
२. यजुर्वेद ४०.८
३. तत्रैव ४०.१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के लिए उद्गाता उचित स्वर में उस देवता का स्तुति मन्त्र गाता था। सामवेद में १८७५ ऋचाएं हैं जिसमें केवल ९९ ऋचाएं नवीन हैं।

सामवैदिक स्तुतियां संगीत की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें दो गान हैं—पूर्वार्चिक और उत्तरार्चिक। पूर्वार्चिक के अन्तर्गत ग्रामगान, आरण्यकगान तथा महानाम्नी आर्चिकगान है और द्वितीय में ऊहगान एवं उह्यगान का संकलन है।

अथर्ववेद में ऋग्वेद के मन्त्रों का ही संकलन है। लगभग पंचमांश ऋग्वेद से ही गृहीत हैं, शेष में जादु-टोना, मन्त्र-तंत्र आदि हैं।

इस प्रकार वेदों में अनेक प्रकार की स्तुतियां पायी जाती हैं। विभिन्न भक्तों द्वारा विभिन्न कामनाओं से प्रेरित होकर अपने उपास्य के चरणों में स्तुति समर्पित की गई है। इनमें प्रभु के सौन्दर्य निरूपण के अतिरिक्त काव्य का अकृत्रिम एवं अनलंकृत निसर्ग रमणीय लावण्य भी दृष्टिगोचर होता है।

महाकाव्य एवं पुराणों की स्तुति-सम्पत्ति

वैदिक मानसरोवर से निःसृत, स्वच्छसलिला स्तुति-स्रोतस्विनी, महाकाव्य काल तक आते-आते अत्यधिक विस्तार को प्राप्त होती हुई, असंख्य जीवों को अपनी मादकता, पवित्रता और रमणीयता से आप्यायित करती हुई, उनकी परम शरण्या बनी। भक्त अपने हृदय से भगवान् के निमित्त, उनके विभिन्न नाम—गुणात्मक स्तुतियों का गायन कर उसके शाश्वत वात्सल्य को प्राप्त करने के लिए लालायित हो उठे। अपनी भावना के अनुसार उस परम सत्ता को विभिन्न देवों के रूप में स्वीकार कर उनको परम शरण्य मानकर उनके प्रति श्रद्धासिक्त हृदय से वागञ्जलियां समर्पित की गई।

वैदिक देवता महाकाव्य एवं पुराणकाल में आकर विविध रूपों में प्रचलित हो गए। जिन प्राकृतिक विभूतियों का दर्शन कर समदर्शी, प्रज्ञा-विचक्षण, ऋषिगण अपने कार्यों के निमित्त अग्नि इन्द्रादि के रूप में आवाहन किया था, वे ही अब त्रिदेव—ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश तथा विभिन्न अवतारों के बाराह, मत्स्य, कूर्म आदि के रूप में प्रतिष्ठित हो गए।

ऋग्वेद का शक्ति तत्त्व—वाक्देवी आवांतर साहित्य में दुर्गा, काली, लक्ष्मी आदि के रूप में विकसित हुई। इन देवों के अतिरिक्त कुछ वंश देवों का भी उदय हुआ। जैसे मेघनाथ "राम-विजय" के लिए माता निकुम्भला के मन्दिर में जाकर उनकी उपासना करता है।

इन्द्र, अग्नि, मरुत्, वरुण आदि देवों की अर्चना प्रथा समाप्त प्राय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो गयी। वैदिक इन्द्र की अपेक्षा आवांतर कालीन इन्द्र की छवि धूमिल हो गयी।

पाप का भार असह्य होने तथा धर्मात्मा जीवों के पीड़ित किए जाने पर त्रिदेव में से किसी एक की स्तुति की जाने लगी। स्तोता स्तुत्य की महत्ता को प्रकट करता और उसी से जगदुद्धार की याचना की जाती थी। करुणार्द्र होकर, भयभीत होकर या किसी सांसारिक ऐश्वर्य की कामना से स्तुति की जाने लगी।

उपर्युक्त सकाम स्तुतियों के अतिरिक्त निष्काम स्तुतियों की एक विधा का भी विकास हुआ जिसमें केवल अपने उपास्य का गुणगान ही उसका लक्ष्य था। ऋग्वेद का पुरुष सूक्त और नासदीय सूक्त इस प्रकार के स्तुतियों के उत्स हैं। ऐसे स्तुतियों पर औपनिषदिक ज्ञानधारा का भी प्रभाव पड़ा। इनमें केवल प्रभु के गुण, उनकी सर्वसमर्थता आदि का प्रतिपादन कर उनके लोकातीत स्वरूप को भी उद्घाटित किया गया।

सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों में उपास्य की स्तुति की गई। निर्गुण, निराकार ही विश्वमंगल के लिए सगुण साकार हो जाता था। "ईशावास्योपनिषद्" का आठवें मंत्र (जो परमसत्ता को निर्गुण सगुण दोनों मानता है) का विस्तार बहुत काफी हुआ।

देवों के अतिरिक्त नृदेवों की भी स्तुति की जाने लगी। स्वयं प्रभु ही विश्वरक्षणार्थ नृदेवों के रूप में अवतीर्ण होते थे। आवांतर काल में अवतारवाद को काफी बल मिला। नृदेवों की स्तुतियों के अतिरिक्त श्रेष्ठ ब्राह्मण, ऋषि एवं ज्ञानी जनों की भी स्तुति की गई।

निर्जीव वस्तुओं में भी देवत्व का दर्शन कर उसे सामर्थ्यवान् मानकर उनकी गुणगाथा गायी गई। चन्द्रमादि ग्रह नक्षत्रों की भी उपासना की जाने लगी। धरती को माता मानकर भक्तगण श्रद्धासिक्त हृदय से उसकी पूजा करने लगे।

रामायण की स्तुतियां

रामायण आदिकाव्य है तो महर्षि वाल्मीकि हमारे आदिकवि। रामायण हिन्दू संस्कृति का अक्षय कोश है। इसमें विभिन्न विषयों के अतिरिक्त अनेक भक्तों द्वारा अपने उपास्य के प्रति स्तोत्र भी समर्पित किए गए हैं। विविध कामनाओं से प्रेरित होकर पुत्रादि धन-दौलत, आयुष्य, विजय, एवं विश्वमंगल के लिए भक्त जन अपने-अपने उपास्य के चरणों में स्तुति समर्पित करते हैं। दुःख दैन्य से पीड़ित होकर, राक्षसों से आतंकित होकर रक्षा के निमित्त से प्रभु की स्तुति की गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवगण राक्षसराज रावण से त्रस्तहोकर ब्रह्मा और विष्णु की स्तुति करते हैं। राजा रामचन्द्र रावण-विजय की लालसा से भगवान् सूर्य के निमित्त सुप्रसिद्ध आदित्य हृदयस्तोत्र का पाठ करते हैं। माली, सुमाली आदि सुकेश पुत्रों के आतंक से भीत देवगण शंकर एवं विष्णु की स्तुति करते हैं। इस प्रकार रामायण में अनेक स्तुतियां संग्रथित हैं। कुछ मुख्य स्तुतियों का विवेचन इस प्रकार है—

देवगणकृत ब्रह्मा और विष्णु स्तुति

ब्रह्मा स्तुति

रावण के त्रास से त्रैलोक्य त्रस्त है। ब्रह्मा का आशीर्वाद प्राप्त कर वह सम्पूर्ण देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षसों को त्रस्त कर रहा है। अब कोई उपाय शेष नहीं दिखाई पड़ता जिससे इस राक्षसराज का विनाश हो सके। ऋषि शृङ्ग के निर्देश पर राजा दशरथ पुत्रेष्टि यज्ञ का समायोजन कर रहे हैं। सभी देव गन्धर्वादि अपने भाग के लिए उस यज्ञस्थल में पधार रहे हैं। भीत देवगण उसी यज्ञशाला में पितामह की स्तुति करते हैं—हे पितामह! कोई उपाय हो तो बताओ। सात अनुष्टुप् श्लोकों में ब्रह्मा की स्तुति की गई है। उनके आशीर्वाद से प्राप्त रावण की अजेयता, एवं विकरालता का वर्णन पांच श्लोकों में किया गया है। ब्रह्मा के स्वरूप पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। हां प्राचीन परंपरा की तरह ब्रह्मा उपाय सुझाने का काम जरूर कर रहे हैं।

विष्णु स्तुति

राजा दशरथ की यज्ञशाला में भगवान् विष्णु का पदार्पण हुआ है। रावण विनाश के लिए ब्रह्मा सहित समस्त देवगण उस परमेश्वर से मनुष्य में अवतार ग्रहण करने के लिए प्रार्थना करते हैं, क्योंकि मनुष्य को छोड़कर अन्य कोई उसका विनाश नहीं कर सकता।

यह आर्त्त स्तुति है। ९ अनुष्टुप् श्लोकों तथा दो वंशस्थ छन्दों में देवगण अपनी वेदना, रावण का अत्याचार आदि भगवान् विष्णु से निवेदित करते हैं। देवों के हृदय में व्याप्त भय, पराजय एवं असहायता तीनों मिलकर प्रभु के चरणों में शाब्दिक रूप में अभिव्यक्त हो जाते है। इस लघु कलेवरीय स्तुति में भगवान् विष्णु के सर्वव्यापक, लोकहितरक्षक एवं शत्रु-विनाशक स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। हरेक विपत्तियों से प्रभु अभयत्व प्रदान करते हैं। वे सर्वसमर्थ हैं, तभी तो देवलोग इस महान् कार्य—रावण विनाश एवं त्रैलोक्य रक्षण का काम उस व्यापनशील देव पर सौंप देते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्वं नियोक्ष्यामहे विष्णो लोकानां हितकाम्यया ।'

विष्णु ही सबके परम शरण्य एवं परंतप-शत्रु विघातक हैं, देवाधिदेव है ।

देव प्रार्थना से प्रसन्न देवाधिदेव विष्णु दशरथ के यहां मनुज रूप में अवतार लेकर देवशत्रु रावण का विनाश करने लिए देवों को आश्वासन देते हैं । इस महान् उपकार से उपकृत होकर देवता, ऋषि, गन्धर्व आदि भगवान् की पुनः स्तुति करते हैं । दो वंशस्थ वृतात्मक इस स्तुति में उपकार एवं भय दोनों भाव मिश्रित हैं । रावण को ससैन्य जड़ से उखाड़ डालने की प्रार्थना की गई है ।

इस प्रकार इस स्तुति में विष्णु के सर्वसमर्थ एवं भक्तवत्सल स्वरूप के अतिरिक्त अवतारवाद पर भी प्रकाश पड़ता है । लोकमंगल के लिए एवं विपत्तियों से भक्तों के त्राणार्थ भगवान् परमब्रह्म परमेश्वर विभिन्न रूपों में अवतरित होते हैं ।

आदित्य हृदय स्तोत्र (युद्धकाण्ड १०५)

जगत्कल्याण एवं दुर्धर्ष शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए प्राचीन काल से ही विभिन्न देवों के प्रति स्तोत्र समर्पित करने की परम्परा रही है । रणक्षेत्र में मुनि अगस्त्य से उपदिष्ट दाशरथि राम सामने खड़ा प्रबल प्रतिपक्षी के ऊपर विजय प्राप्ति के लिए भगवान् भुवनभास्कर के चरणों में उनकी विभिन्न लीला-रूप-गुणों को प्रतिपादित करने वाले विशेषणों से युक्त स्तोत्र समर्पित करते हैं । यह सकाम स्तुति है । अगस्त्य मुनि से सूर्य के प्रताप, अद्भुत सामर्थ्य को सुनकर राम के हृदय से सहज ही स्तोत्र स्फूर्त होने लगता है, जिसका पूर्व संस्कार मुनि के द्वारा उपदिष्ट होने के कारण व्याप्त था—

रश्मिमन्तं समुद्यन्तं देवासुरनमस्कृतम् ।
पूजयस्व विवस्वन्तं भास्करं भुवनेश्वरम् ॥'

भास्कर के विशेष स्वरूप के विवेचन के पहले थोड़ा इस स्तोत्र के महत्त्व पर भी प्रकाश डालना आवश्यक है । स्वयं मुनि अगस्त्य ने ही इसके महत्त्व को समझा दिया है—इस गोपनीय स्तोत्र का नाम "आदित्य हृदय" है । यह परम पवित्र तथा सम्पूर्ण शत्रुओं का विघातक है । इसके जप से सदा विजय प्राप्ति होती है । यह नित्य, अक्षय एवं परम कल्याणमय स्तोत्र है । सम्पूर्ण मंगलों का भी मंगल है । इससे सब पापों का विनाश हो जाता है ।

---

१. वाल्मीकि रामायण—बालकांड १।१५।१९
२. तत्रैव—युद्धकांड १०५।६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह चिन्ता शोक को मिटाने वाला तथा आयु को बढ़ाने का परमसाधन है।[1] विपत्ति, कष्ट, दुर्गम-मार्ग, भयकाल तथा युद्ध में जो एकाग्र हृदय से इस स्तोत्र का पाठ करता है, उसकी रक्षा स्वयं सर्वसमर्थ भगवान् भास्कर करते हैं।[2]

इस स्तोत्र के द्वारा भगवान् भुवनभास्कर के विभिन्न रूपों पर प्रकाश पड़ता है। विभिन्न नाम या विशेषण इनके विभिन्न स्वरूप के बोधक हैं।

१. प्रकाशमय

इनके दीप्त स्वरूप अर्थात् प्रकाशमय रूप को प्रकट करने वाले अनेक विशेषणों का प्रयोग किया गया है—रश्मिमान्, विवस्वान्, भास्कर भुवनेश्वर, रश्मिभावन, प्रभाकर, गभस्तिमान्, सुवर्णस्वरूप, भानु, दिवाकर, सहस्रार्चि, मरीचिमान्, तिमिरोमन्थन, अंशुमान्, अग्निगर्भ, तमोभेदी, तपन, अहस्कर आदि।

२. त्रैलोक्य (संसार) से सम्बन्धित स्वरूप

विभिन्न नामों से स्पष्ट होता है कि सूर्य सम्पूर्ण लोकों के स्रष्टा, समग्रभूत (जीव) समुदाय को अपने-अपने कर्मों में प्रेरित करने वाले (सविता) संसार के पोषणकर्त्ता (पूजा) संसार के बीजभूत (हिरण्यरेता), जीवनदाता, उत्पत्ति-कारण एवं विश्व के पालक (विश्वकर्मा, विश्वभावन) हैं।

३. सर्वव्यापक

सूर्य, सविता, विश्व, विश्वभावन आदि विशेषणों से सूर्य के सर्व-व्यापक स्वरूप पर भी प्रकाश पड़ता है।

४. जन्मबोधक

कुछ विशेषणों से सूर्य के जन्म पर भी प्रकाश पड़ता है। वे अदिति के पुत्र थे इसलिए आदित्य हुए। एक जगह अदिति-पुत्र भी कहा गया है।

५. निजी स्वभाव

स्वभाव स्वरूप तथा उनके विभिन्न उपकरणों पर भी प्रकाश पड़ता है। उनका स्वभाव शिशिर विनाश करने वाला है। तपन, अहस्कर, तमोभेदी, कवि, उग्र, वीर, प्रचण्ड, आतपी, सारंग तथा आनन्द स्वरूप है। उनका शरीर पिंगल है। उनके घोड़े हरे रंग के हैं इसलिए उन्हें हरिदश्व, हर्यश्व तथा सात घोड़ों वाले होने से उन्हें सप्तसप्ति कहा गया है। वे हिरण्यगर्भ भी हैं।

---

१. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड १०५।४-५

२. तत्रैव, युद्धकाण्ड १०५।२५-२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. धामबोधक

सूर्य के धाम किंवा लोक बोधक भी नाम हैं। वे आकाशचारी हैं इसलिये उन्हें खग कहा गया है। वे आकाशपति हैं तथा विध्यवीथीप्लवङ्गम —आकाश में तीव्र चलने वाले हैं।

७. भक्त से सम्बन्धित स्वरूप

भगवान् सूर्य भक्तों को विपत्तियों से बचाते हैं। दुःखों के अपहर्त्ता, रवि तथा विजय दिलाने वाले हैं। शत्रुघ्न, परमप्रभु, फलदाता आदि भी हैं।

इस प्रकार इस ३१ श्लोकात्मक स्तोत्र में भगवान् भुवननाथ के विभिन्न स्वरूपों को उद्घाटित किया गया है। शुद्धचित्त से जप करते ही राम का शोक विनष्ट हो गया तथा रावणबध के लिए अद्भुत साहस एवं शौर्य से युक्त हो गए। भगवान् अहस्कर भी अपने नेत्रों से राम विजय की पूर्व सूचना भी प्रस्तुत कर देते हैं।

ब्रह्माकृत श्रीराम की स्तुति

१६ अनुष्टुप् श्लोकों में निबद्ध यह इतिहासात्मक पुरातन अार्ष स्तुति है।[1] इस स्तुति में राम का पुरातन इतिहास प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही राम के सर्वव्यापक स्वरूप को भी उद्घाटित किया गया है। इसमें किसी प्रकार की कामना निहित नहीं है, बल्कि राम की भगवत्ता एवं सर्वसमर्थता तथा सीता को उनकी निज-विभूति के रूप में प्रतिपादित किया गया है।

रावणबध के अनन्तर अपनी शुद्धता को प्रामाणित करने के लिए देखते ही देखते सीता अग्नि में प्रवेश कर जाती है। सम्पूर्ण वानर दल में माता-विनाश को देखकर हलचल मचा हुआ है। उसी समय सम्पूर्ण देवता, ऋषि, गन्धर्व आदि उपस्थित होकर राम के पूर्व रूप तथा सीता की पवित्रता एवं राम के साथ सनातन सम्बन्ध को उद्घाटित करते हैं।

राम सम्पूर्ण विश्व के उत्पादक, ज्ञानियों में श्रेष्ठ तथा सर्वव्यापक हैं एवं देवों में श्रेष्ठ स्वयं विष्णु हैं।[2] राम वसुओं के प्रजापति ऋतधामा तथा लोकों के आदिकर्त्ता स्वयं प्रभु हैं। वे शत्रुओं के संताप, लोकों के कर्त्ता, धर्त्ता और संहारक तीनों हैं। वे शार्ङ्गधन्वा, हृषीकेश, अन्तर्यामी, पुरुष और पुरुषोत्तम हैं।[3] वे वामन, वेदात्मा, शरणागत वत्सल, स्वयंप्रभु, विराट् पुरुष नारायण, सच्चिदानन्द स्वरूप एवं प्रजापति हैं तथा सीता साक्षात्

१. वाल्मीकि रामायण —युद्धकाण्ड ११८
२. तत्रैव ११८.६
३. तत्रैव ११८।१५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लक्ष्मी है।[1] अवतार के कारण का भी उल्लेख मिलता है। राम रावण वधार्थ ही मनुष्य रूप धारण कर सम्पूर्ण भूत समुदाय का मंगल प्रतिपादित किए।[2]

वे भक्त वांछाकल्पतरु हैं। उनके भक्तलोक उन्हीं की तरह संसार में पूज्य हैं। भगवान् राम भक्तों की सारी कामनाएं स्वयं पूर्ण करते हैं। इस प्रकार इस स्तुति में श्रीराम के परमेश्वरत्व गुण का प्रतिपादन किया गया है।

देवगणकृत शंकर एवं विष्णु की स्तुति[3]

राक्षस सुकेश के पुत्रों माली, सुमाली और माल्यवान् के आतंक से आतंकित होकर देव, ऋषि आदि भगवान् शंकर की शरणागति ग्रहण करते हैं। आठ अनुष्टुप् श्लोकों में भगवान् शंकर की अभ्यर्थना की गई है। भगवान् शंकर जगत् की सृष्टि और संहार करने वाले, अजन्मा, अव्यक्त, रूपधारी, सम्पूर्ण जगत् के आधार आराध्यदेव और परम गुरु हैं। कामनाशक, त्रिपुरविनाशक और त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकर से देवतालोग अपनी रक्षा के लिए याचना करते हैं, क्योंकि वे अभयदाता हैं—

तन्नोदेव भयार्तानामभयं दातुमर्हसि।
अशिवं वपुरास्थाय जहि वै दैवकण्टकान्॥[4]

इस स्तुति में भगवान् शंकर के लिए विभिन्न साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग किया गया है। वे कपर्दी, नील लोहित, प्रजाध्यक्ष, कामनाशक, त्रिपुर विनाशक आदि हैं।

भगवान् शंकर द्वारा निर्दिष्ट किए जाने पर देवगण विष्णु के पास जाकर उनकी स्तुति करते हैं। देव लोग अत्यन्त घबराए हुए भगवान् विष्णु के शरणापन्न होते हैं।

यह आर्त्तस्तुति है। इसमें भगवान् विष्णु के विभिन्न स्वरूपों पर प्रकाश डाला गया है। वे शंखचक्रगदाधर हैं, मधुसूदन हैं, सुरेश्वर हैं। एक सुन्दर उपमा का प्रयोग भगवान् विष्णु की भक्तवत्सलता को प्रतिपादित करने के लिए किया गया है—

नुदत्वं नो भयं देव नीहारमिवभास्करः।[5]

हे प्रभो! जैसे कुहरे को सूर्यदेव नष्ट कर देते हैं वैसे ही समराङ्गण में राक्षस का बध कर हमारे भय को दूर कीजिए।

१. वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड ११८।२७
२. तत्रैव ११८।२८
३. तत्रैव, उत्तरकाण्ड षष्ठ अध्याय
४. तत्रैव ६।८
५. तत्रैव ६।१८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंच श्लोकात्मक इस स्तुति में भगवान् के कष्टनिवारक, सर्वसमर्थ, सर्वव्यापक, शत्रुविनाशक एवं लोकमंगलकारक स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है।

ऋषिगणकृत श्रीराम स्तुति

लवणासुर से त्रस्त, व्यथित ऋषि लोग बहुत समर्थ लोगों से अपनी प्राण की रक्षा करने की याचना कर चुके, लेकिन कोई रक्षक नहीं मिला। सबके सब भय से आक्रांत हैं। अन्त में वे लोग प्रभु श्रीराम के शरणापन्न होते हैं—जो सम्पूर्ण जीवों के शरण्य है, जिसने अनेकों बार दुर्धर्ष राक्षसों से लोक को मुक्ति दिलायी है।

यह आर्त्त-स्तुति है। मात्र तीन श्लोकों में निबद्ध है। देवतालोग कहते हैं —अब तक कोई रक्षक नहीं मिला।[1] हे तात! आपने सेना सहित राक्षस रावण का विनाश किया है। अब भयपीड़ित महर्षियों की लवणासुर से रक्षा करें।

जब सामने भय उपस्थित हो तो अभय कौन दिला सकता है—जो स्वयं भययुक्त हो। सामर्थ्यवान् हो। श्रीराम को छोड़कर अन्य सभी राजा लवणासुर से परास्त होकर भयभीत हैं।

इस लघु कलेवरीय स्तुति में भगवान् श्रीराम के त्रैलोक्यरक्षक, विपत्ति निवारक तथा राक्षस विनाशक स्वरूप को उद्घाटित किया गया है।

इन्द्रकृत भगवद् स्तुति[2]

इन्द्र जो सदा तपस्वियों से डरते आये हैं, तपस्या में खलल पहुंचाना शायद उनका अन्य कर्त्तव्यों के साथ यह भी नैतिक कर्त्तव्य है। वृत्रासुर तपस्या कर रहा है, अपना सब कुछ अपने ज्येष्ठ पुत्र मधुरेश्वर को सौंप चुका है। वह विष्णु का भक्त है, उनका अनन्य सेवक है, फिर भी इन्द्र को चैन कहां, उन्हें डर इस बात से है कि मेरा इन्द्र पद वह छिन न ले। अनागत भय से आतंकित होकर देवेन्द्र भगवान् की स्तुति कर रहे हैं।

इस स्तुति में भगवान् विष्णु के असुर निहन्ता स्वरूप को उद्घाटित किया गया है। सम्पूर्ण भूत समुदाय पर आसन्न भय से रक्षा की याचना करते हैं —

सत्वं प्रसादं लोकानां कुरुष्व सुसमाहितः।
त्वत्कृतेन हो सर्व स्यात् प्रशान्तमरुजं जगत्॥[3]

---

१. वाल्मीकि रामायण उत्तरकांड ६।२२
२. तत्रैव ८४।१२-१८
३. तत्रैव ८४.१६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुनः इन्द्र वृत्र वध के लिए अनुरोध करते हैं।[1] भगवान् विष्णु ही एकमात्र निराश्रितों के आश्रयदाता हैं।[2]

इस प्रकार रामायण में अनेक स्तुतियां हैं जो विभिन्न अवसरों पर गायी गई हैं। दुःखनिवृत्यर्थ, पापविमोचनार्थ, भक्तोद्धारार्थ, विजयार्थ एवं सांसारिक कामनाओं से प्रेरित होकर भक्त अपने उपास्य के चरणों में स्तुतियां समर्पित करते हैं। यहां श्रीमद्भागवत की तत्त्वज्ञानप्रधान स्तुतियों का सर्वथा अभाव है। वेदों का अत्यधिक प्रभाव परिलक्षित है। वेदों में विभिन्न कामनाओं से प्रेरित होकर ऋषिगण अपने उपास्य के चरणों में सूक्त विनिवेदित करते हैं। वैदिक देवों-अग्नि, उषा, मरुत्, इन्द्र आदि के स्थान पर वैष्णव धर्म की प्रतिष्ठापना हो चुकी थी। विष्णु के अवतार श्रीराम ही जगपूज्य हो गए थे।

महाभारत की स्तुतियां

महाभारत विश्वकोश है। अन्य विषयों के अतिरिक्त विभिन्न भक्तों की स्तुतियां भी उपन्यस्त है, जो हृदयावर्जिका, भक्तजनाह्लादिक, भगवदाकर्षिका हैं। विभिन्न प्रकार के भक्त अपने-अपने उपास्य के चरणों में स्तुत्यांजलि समर्पित करते हैं। संकट से मुक्ति के लिए, सांसारिक अभ्युदय, युद्ध में विजय एवं लोक मंगल के लिए स्तुतियां गायी गई हैं। उपर्युक्त सकाम स्तुतियों के अतिरिक्त निष्काम स्तुतियां भी हैं जिसमें केवल प्रभुचरण-रति की ही प्रधानता है।

महाभारत में भक्तों की अनेक कोटियां हैं। राजवर्ग, सामान्य मनुष्य एवं पशु-पक्षी-तिर्यञ्चयोनि के भी भक्त अपने स्तव्य की स्तुति में संलग्न हैं। एक तरफ भीष्म, व्यास, युधिष्ठिर एवं ध्रुव जैसे ज्ञानी भक्त भी हैं तो दूसरी तरफ कद्रू-सर्पों की माता भी स्तुति कर रही है। राजन्यवर्ग के भक्तों में अर्जुन, युधिष्ठिर, भीष्म, मुचुकुन्द आदि हैं। मनुष्यों के अतिरिक्त देवगण भी स्तोता के रूप में उपस्थित होते हैं। इन्द्र, ब्रह्मा एवं अन्य देवगण भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति में निरत हैं।

स्तुतियों के अवसर भी भिन्न-भिन्न हैं। संकटकाल, तपस्याकाल, उपकृत होकर तथा महाप्रयाणिक वेला में भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की गई है। द्रौपदी पूर्णतः असहाय होकर— प्रभु श्रीकृष्ण की स्तुति करती है। कद्रू सर्पों की रक्षा के लिए इन्द्र की, देवगण लोक रक्षा के लिए गर्भस्थ श्रीकृष्ण की एवं ध्रुव की तपोज्वाला से संतप्त देवगण भगवत्स्तुति करते हैं।

शिव की क्रोधाग्नि से संतप्त प्रजापति दक्ष शिव के सहस्रनामों के

१. वाल्मीकि रामायण, उत्तरकांड ८४.१७

२. तत्रैव ८४।८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वारा उनकी अभ्यर्थना करता है। भगवान् की विभूतियों का दर्शन कर गद्-गद् गिरा में अर्जुन श्रीकृष्ण की स्तुति करता है।

कुछ स्तुतियों का यहां संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है—

भीष्मकृत श्रीकृष्ण स्तुति

पितामह भीष्म निष्काम भाव से दो बार भगवान् की स्तुति करते है। प्रथम बार उत्तरायण सूर्य के आगमन पर द्वितीय भगवान् द्वारा धर्म के बारे में पूछे जाने पर भगवान् श्रीकृष्ण की नुति करते हैं। प्रथम बृहदाकार स्तोत्र भक्त समाज में भीष्मस्तवराज के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें भगवान् श्रीकृष्ण के विभिन्न रूपों का प्रतिपादन किया गया है। अनेक साभिप्राय विशेषणों के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के सर्वव्यापकत्व सर्वसमर्थत्व आदि का प्रतिपादन किया गया है।

सम्पूर्ण इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों से हटाकर मन, वाणी और क्रिया द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में स्थित होकर पितामह स्तुति करते हैं। यह निष्काम स्तुति है। भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा की प्राप्ति ही भक्त का लक्ष्य है, इसलिए सर्वात्मभाव से पितामह भीष्म उन्हीं के शरण में उपस्थित होते है—

शुचिं शुचिपदं हंसं तत्पदं परमेष्ठिनम् ।
युक्त्वा सर्वात्मनाऽऽत्मानं तं प्रपद्ये प्रजापतिम् ॥[1]

यहां योगेश्वर, पद्मनाभ, विष्णु, जगत्पत्ति आदि श्रीकृष्ण के अनेक रूपों का प्रतिपादन किया गया है।

सर्वव्यापक श्रीकृष्ण

भीष्म के भगवान् श्रीकृष्ण सामान्य नहीं बल्कि सर्वलोकव्यापक और अगतिकगति हैं। उनका न आदि है न अन्त। वे ऋषि मुनि, देव मनुष्यादि की ज्ञान सीमा से परे हैं। वे सबका धारण पोषण करते हैं। नारायण नाम भी उनका प्रसिद्ध है। उन्हीं में सम्पूर्ण प्राणी स्थित हैं। वे ही समस्त जीवों के अधिष्ठान स्वरूप हैं। प्रकृति के कण-कण में व्याप्त हैं।

स्वरूप

इस स्तवराज में भगवान् के विराट् स्वरूप के साथ-साथ उनके विभिन्न विभूतियों का प्रतिपादन किया गया है। उनके सहस्रसिर, सहस्रचरण, सहस्रनेत्र, सहस्रों भुजाएं एवं सहस्रों मुख हैं। वे ही विश्व के परम आधार है।[2] वे सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा बृहद् से भी बृहद् हैं। वे सबके आत्मा,

१. महाभारत — शांतिपर्व ४७.१८
२. तत्रैव ४७.२३-२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा सर्वज्ञ हैं। ब्राह्मण, वेद और यज्ञ की रक्षा के लिए ही वे श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट हुए हैं।[1]

वे विश्व के विधाता एवं जगत् के स्वामी हैं। वे ही विभिन्न रूपों में प्रकट होते हैं। वे ही अधोक्षज, सूर्यरूप, सोमरूप, ज्ञेयरूप, वेदरूप यज्ञरूप, होमरूप, स्तोत्ररूप, हंसरूप, वाणीरूप, निद्रास्वरूप, तत्त्वस्वरूप, भूतस्वरूप, सूक्ष्मात्मा, मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, श्रीराम, बलराम, श्रीकृष्ण एवं कल्कि स्वरूप भी हैं। भक्तवत्सल, भक्तवांछाकल्पतरू एवं सत्त्व-रज-तमोमय है।

भगवान् श्रीकृष्ण सर्वलोकमहेश्वर, हिरण्यनाभ, यज्ञाङ्गरूप, अमृतमय कमलनयन एवं परमशरण्य हैं। वे मंगलमय हैं। वे सत्यस्वरूप, धर्मस्वरूप, कामस्वरूप, क्षेत्रस्वरूप, योगरूप एवं धीररूपधारी हैं।

जो ज्ञान, प्रमाण आदि की सीमा से रहित हैं, संपूर्ण लोकों में व्याप्त पुरातन पुरुष हैं। उनके प्रति समर्पित पूजा, श्रद्धा, भक्ति एवं स्तुति से मनुष्य भवबन्धन विमुक्त हो जाता है। जो ब्राह्मणों के हितकारी हैं, वे ही मेरी गति हों।

इस प्रकार भक्तिभावित चित्त से भीष्म इस स्तवराज का गायन करते हैं। ८४ श्लोकों में ८२ श्लोक अनुष्टुप् छन्द में तथा शेष दो 'जतजास्ततोगौ' लक्षण लक्षित उपेन्द्रवज्रा छन्द में हैं।

द्रौपदीकृत श्रीकृष्ण स्तुति[2]

द्रौपदी की स्तुति में मात्र तीन ही श्लोक हैं लेकिन वह समस्त हृदयस्थ मनोव्यथा को, कौरव जन्य अपमान को तथा अपनी असहाय स्थिति को निरूपित कर देती है। यह आर्त्त स्तुति है।

स्थिति देखिए—लोक में पांचों पांडव बड़े वीर धनुर्धर हैं, पितामह भीष्म सदसद्विवेकी हैं, विदूर नीतिशास्त्र में पारङ्गत हैं, आचार्य द्रोण और कृपाचार्य अपने विचार के पक्के हैं—लेकिन भरी सभा में द्रौपदी का वस्त्र कुटिल दुःशासन के द्वारा खींचा जा रहा है। वह आर्त्त नेत्रों से अपनी रक्षा की याचना करती है। लगता है उसकी करुण-विलाप के शब्द वीरों के कानों तक नहीं जा पाते थे और उसकी स्थिति पर हो सकता है कि उन तथाकथित महात्माओं की दृष्टि गयी ही न हो। सब ओर से असहाय हो जाती है तभी पूर्व संस्कार वशात् वशिष्ठ का उपदेश काम आ जाता है—

१. महाभारत शान्तिपर्व ४७।२९

२. तत्रैव सभापर्व, ६८.४१-४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महत्यापदि सम्प्राप्ते स्मर्तव्यो भगवान् हरिः ॥[1]

बस इतनी ही की तो आवश्यकता थी। वह हृदयस्थ शोक को समेट-कर शब्द के माध्यम से उस त्रैलोक्य नाथ को पुकारने लगी—अब कौन रक्षक है। मन, वाणी और काय से उसी त्रिलोकी के चरण ध्यान में स्थित हो जाती है। पुकार उठती है अपने नाथ को—

गोविन्द द्वारिकावासिन् कृष्णगोपीजनप्रिय।
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव ॥[2]

हे नाथ कौरव रूपी समुद्र में डुबी जा रही इस अबला का अब कौन उद्धार करेगा। हे कृष्ण ! महायोगिन् ! विश्वात्मन्। गोविन्द ! कौरवों के बीच कष्ट पाती हुई मुझ शरणागत अबला की रक्षा कीजिए।[3]

अब देखिए श्रीकृष्ण की स्थिति—खुले पैर दौड़े आ रहे हैं, घोर विपत्ति में निमग्न याज्ञसेनी कृष्णा की रक्षा के लिए। प्रभु वस्त्र स्वरूप ही हो गए। नीच दुःशासन की कपटी भुजाएं थक गयी। हाहाकार मच गया। भगवान् कृष्ण की जय-जयकार होने लगी—साधु-साधु की पुकार होने लगी।

भगवान् शंकर की स्तुति[4]

तपश्चर्या की सफलता पर भक्त सामने समुपस्थित भगवान् की गद्गद् गिरा में स्तुति करता है। यहां स्थिति यह है कि अर्जुन अपने उपास्य से ही भीषण संग्राम कर रहा है, उसे क्या पता कि उसके भगवान् ही उसकी परीक्षा ले रहे हैं। जब किरात वेशधारी शिव प्रकट हो जाते हैं तो अर्जुन आह्लादित हो उठता है। अपने प्रभु की दयालुता और वत्सलता पर हृदय विगलित होकर, मनःस्थित भाव अभिव्यक्त होने लगते हैं—शब्द के माध्यम से। उपास्य से सम्बन्धित विभिन्न विशेषण प्रकट होने लगते हैं—

कपर्दिन् सर्वदेवेश भगनेत्रनिपातन देवदेव महादेव नीलग्रीव जटाधरः।[5]

शिव के विभिन्न नाम इस स्तुति में प्रयुक्त हुए हैं। इन्हीं विशेषणों या नामों के आधार पर अर्जुनोपास्य के स्वरूप पर भी प्रकाश पड़ता है—

भगवान् शंकर देवाधिदेव महादेव हैं, जटाधारण करने वाले हैं,

---

१. महाभारत, सभापर्व ६८।४१
२. तत्रैव ६८।४१
३. तत्रैव ६८।४३
४. तत्रैव , वनपर्व ३९
५. तत्रैव ३९।७४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनकी ग्रीवा नीली है, त्रिनेत्रधारी हैं, परमकारण हैं, सर्वव्यापी तथा सम्पूर्ण लोकों के आश्रय हैं। विष्णु स्वरूप हैं, दक्षयज्ञ विनाशक एवं शत्रु-नाशक हैं। आप भूतगणों के स्वामी, सम्पूर्ण जगत् के कल्याणकर्त्ता शिव हैं।

भक्त जाने अनजाने में अपने द्वारा कृत अपराधों की क्षमा एवं प्रभु प्रसन्नता की याचना करता है।

शरणं प्रतिपन्नाय तत् क्षमस्वाद्यशंकर ॥[1]

युधिष्ठिर कृत भगवती दुर्गा की स्तुति[2]

दुर्गा—इस ढाई अच्छरीय पद में अद्भुत शक्ति है। संसार को अपने में कवलित कर लेने का प्रभूत सामर्थ्य है। इस नाम के उच्चारण मात्र से ही सारे पाप, ताप, ग्रह, रोग, दुःख अपने आप समाप्त हो जाते है। सद्यः उस ममतामयी माता के पवित्र गोद में उसका पापी पुत्र भी स्थान पा जाता है—उसके वात्सल्य को प्राप्त कर जगत् में महिमान्वित हो जाता है।

राजा विराट् के रम्योद्यान में प्रतिष्ठित भगवती दुर्गा के चैत्य में आकर भक्तराज युधिष्ठिर महिमामण्डित माता की स्तुति करते हैं। कौरवों की विशाल शक्ति को पार पाना अत्यन्त दुस्तर है लेकिन जहां मां की शक्ति है वहीं जय है। विजय की लालसा से युधिष्ठिर माता की स्तुति करते हैं। २६ अनुष्टुप् छन्दों से युक्त इस स्तुति में माता के विभिन्न पूर्व चरित एवं विभूतियों का वर्णन किया गया है।

जब कोई भक्त अपने उपास्य की स्तुति में प्रवृत्त होता है तो पहले सांसारिक सम्बन्ध के आधार पर उनकी स्तुति करता है। द्रौपदी स्तुति करती है तो अपने सांसारिक सम्बन्धों को ध्यान में रखकर—द्वारिकावासिन् गोपीजनप्रिय आदि। युधिष्ठिर की स्तुति भी प्रथमतः लौकिक सम्बन्ध पर ही स्फूर्त्त होती है—

यशोदागर्भसंभूतां नारायणवरप्रियाम्।
नन्दगोपकुले जातां मङ्गल्यां कुलवर्धिणीम् ॥[3]

दुस्सह दुःख से जो उद्धार करे वह दुर्गा है—

दुर्गान् तारयसे दुर्गे तत् त्वं दुर्गा स्मृता जनैः।[4]

---

१. महाभारत वनपर्व ३९।८२
२. तत्रैव—विराट् पर्व ६
३. तत्रैव ६।२
४. तत्रैव ६।२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्तुति करते-करते भक्त उसके दिव्य गुणों का वर्णन करने लगता है। वह चार भुजाओं एवं चार मुखों से अलंकृत विष्णुरूपा और ब्रह्मस्वरूपा है। वह आजीवन कुमारी है। उसका रूप सौन्दर्य अलौकिक है। विभिन्न शस्त्रास्त्रों से वह सुसज्जित है। वह पृथिवी का भार उतारने वाली है। वही कीर्त्ति, श्री, धृति, सिद्धि, लज्जा, विद्या, संतति, मति, संध्या, रात्रि, प्रभा, निद्रा, ज्योत्स्ना, कांति, क्षमा और दया है। तथा संपूर्ण संकटों का विनाशक भी है। शरणागत रक्षक है। युधिष्ठिर सर्वात्मना अपनी रक्षा के लिए और आसन्न संग्राम में विजय के लिए प्रार्थना करते हैं—

जयात्वं विजया चेव संग्रामे च जयप्रदा।
ममापि विजयं देहि वरदा त्वं च साम्प्रतम्॥[1]

व्याधिग्रस्त, संकट, रोग, मृत्यु आदि से पीड़ित तथा राज्यभ्रष्ट भक्तों के लिए वही एक मात्र शरण्या है इसलिए भक्तराज युधिष्ठिर उसी की शरणागति में समुपस्थित होते हैं—

व्याधि मृत्युं भयं चैव पूजिता नाशयिष्यसि।
सोऽहं राज्यात् परिभ्रष्टः शरणं त्वां प्रपन्नवान्॥[2]

स्तोत्र से प्रसन्न भगवती दुर्गा विजय का वरदान देती है—

भविष्यति अचिरादेव संग्रामे विजयस्तव।
मम प्रसादान्निर्जित्य हत्वा कौरववाहिनीम्॥
राज्यं निष्कण्टकं कृत्वा भोक्ष्यसे मेदिनीं पुनः।
भ्रातृभिः सहितो राजन् प्रीतिं प्राप्स्यसि पुष्कलाम्॥[3]

शिव सहस्रनामस्तोत्र[4]

विष्णुसहस्रनाम और शिवसहस्रनाम बृहदाकार स्तोत्र है। यज्ञ विध्वंस हो जाने पर खण्डिताभिमान प्रजापति दक्ष भगवान् शंकर से सहस्रनामस्तोत्र के द्वारा अपनी रक्षा की याचना करता है। शंकर के गणों ने उसके यज्ञ को विकृत कर दिया। वीरभद्र से आदिष्ट होकर दक्ष देवाधिदेव उमावल्लभ की शरणागति में उपस्थित होता है। विनाश-भय से आक्रांत दक्ष की चित्तवृत्तियां सर्वतोभावेन प्रभु महादेव के चरणों में समर्पित हो जाती है।

जब तक सांसारिक मानाभिमान काम आता है, अपनी शक्ति पर पूरा भरोसा रहता है, तब तक उस देवाधिदेव को याद कौन करता?

---

१. महाभारत, विराटपर्व ६।१६
२. तत्रैव ६।२४
३. तत्रैव ६।२८-२९
४. तत्रैव, शांतिपर्व २८४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसलिए उन्हें यज्ञ में निमन्त्रित करता ? लेकिन विनाश नजदीक हो जाता है, अपनी शक्ति काम नहीं आती तब जीव उस प्रभु के चरणशरणापन्न होता है ।

प्रपद्ये देवमीशानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् ।
महादेवं महात्मानं विश्वस्य जगतः पतिम् ।।[1]

इसमें भगवान् के हजार नामों के द्वारा उनके विभिन्न रूपों पर प्रकाश डाला गया है । वे जगत् के कर्त्ता धर्त्ता एवं संहारकर्त्ता हैं ।

सर्वव्यापक, नित्य, अव्यय, लोकातीत तथा सर्वसमर्थ हैं । भक्तों के रक्षक एवं सम्पूर्ण जीवों के एकमात्र शरण्य हैं । पापी कितना भी पाप क्यों न किया हो शिव का ध्यान करते ही पापमुक्त हो जाता है । जो परमेश्वर हैं, अज हैं, निद्रा रहित हैं, ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनों रूपों में अवस्थित रहते हैं, यज्ञ कर्त्ता एवं यज्ञ रक्षक हैं । उसी सर्वगुणोपेत महादेव की शरणागति में अपनी रक्षा के लिए भक्त उपस्थित होता है । प्रजापति मन वाणी और समस्त इन्द्रियों से प्रभु महादेव से अपनी रक्षा की याचना करते हैं—

प्रसीद मम भद्र ते भव भावगतस्य मे ।
त्वयि में हृदयं देव त्वयिबुद्धिर्मनस्त्वयि ।।[2]

इस प्रकार शिव सहस्रनाम स्तोत्र में शिव के सर्वव्यापक मंगल स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है ।

विष्णुपुराण की स्तुतियां

विष्णुपुराण में १२ प्रमुख स्तुतियां हैं जो भगवान् विष्णु एवं तदावतार श्रीकृष्ण को विविध भक्तों द्वारा विभिन्न अवसरों पर समर्पित की गई हैं ।[3] प्रथम स्तुति ब्रह्माकृत भगवत्स्तुति है । यह आर्त्त स्तुति है । होता यह है कि ऋषि दुर्वासा से शापित होकर इन्द्र श्रीहीन हो गए हैं, जिससे दैत्यों का आतंक बढ़ गया है । समस्त लोक दैत्यों से त्रस्त है । अब कोई ऐसा दिखाई नहीं पड़ता जो इस विपत्ति से बचा सके । अतएव देवों सहित ब्रह्मा विष्णु की शरणागति ग्रहण करते हैं—जो निखिललोक विश्राम, पृथिवी के आधार स्वरूप, अप्रकाश्य, अभेद्य, सर्वरूप, सर्वेश्वर, अनन्त, अज, अव्यय, नारायण, विशुद्ध, बोधस्वरूप, नित्य, अजन्मा, अक्षय, अव्यक्त, अविकारी, स्थूल सूक्ष्म आदि विशेषणों से रहित, अच्युत, भक्तरक्षक तथा जगत् के कारण हैं ।

---

१. महाभारत, शांतिपर्व २८४।५७
२. तत्रैव, शान्तिपर्व २८५।१८०
३. विष्णु पुराण १।९।४०-५७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार विभिन्न विशेषणों एवं अद्भुत कर्मों के वर्णन के द्वारा विष्णु के सर्वव्यापक, सर्वसमर्थ एवं लोकातीत स्वरूप का उद्घाटन किया गया है तथा दैत्यत्रास से रक्षा की याचना की गई है।

द्वितीय स्तुति है—देवकृतविष्णु स्तुति।[1] बालक ध्रुव लौकिक पिता से तिरस्कृत होकर भगवान् विष्णु की शरणागति ग्रहण करता है। उसके अखण्ड तप से अग्नि, मरुत, वरुणादि देवलोग डर गए हैं कि शायद ध्रुव उनका स्थान न छीन ले। यह आर्त्त स्तुति है। इन्द्रादि देवता ध्रुव तप से भयभीत होकर ध्रुव को तप से उपरत करने के लिए भगवान् विष्णु से स्तुति करते हैं—हे देवाधिदेव जगन्नाथ! परमेश्वर! पुरुषोत्तम! हम सब ध्रुव की तपस्या से सन्तप्त होकर आपकी शरण में आए हैं।[2] हे ईश! आप हम पर प्रसन्न होइए और इस उत्तानपाद के पुत्र को तप से निवृत्त करके हमारे हृदय का कांटा निकालिए।[3]

तृतीय स्तुति है—'ध्रुवकृत विष्णु स्तुति'।[4] यह स्तुति तपस्या की पूर्णता पर की गई है। जब जन्मजन्मान्तर के आराध्य स्वयं भगवान् विष्णु बालक ध्रुव के तप से प्रसन्न होकर प्रकट होते हैं। अपने आराध्य को प्रत्यक्ष देखकर वह भावविह्वल हो जाता है। भयभीत और रोमांचित स्थिति में वह प्रभु की स्तुति करने में समर्थ बुद्धि के लिए प्रभु से ही याचना करता है।[5]

इस स्तुति में किसी प्रकार की लौकिक कामना नहीं है। ध्रुव का एक मात्र लक्ष्य प्रभु प्राप्ति ही है।

इसमें भगवान् के विविध पराक्रमयुक्त कार्यों का वर्णन किया गया है। ध्रुव कहता है—जो सर्वव्यापक, सूक्ष्म से सूक्ष्म, बृहद् से बृहद्, वर्धनशील, विराट्, सम्राट्, स्वराट और अधिराट् आदि सबका कारण, निर्गुण एवं सगुण स्वरूप परमेश्वर को नमस्कार है। हे सर्वात्मन्, सर्वभूतेश्वर, सर्वसत्त्व-समुद्भव, सर्वभूत एवं सर्वसत्त्व मनोरथ स्वरूप आपको नमस्कार है।[6]

चतुर्थ स्तुति है प्रह्लादकृत भगवत्स्तुति।[7] इसमें पुरोहितों की प्राण रक्षा की याचना की गई है अतएव आर्त्त स्तुति है। हिरण्यकशिपु से निर्दिष्ट पुरोहितगण प्रह्लाद को मारने के लिए कृत्या उत्पन्न करते हैं लेकिन स्वयं

१. विष्णुपुराण १।१२।३३-३७
२. तत्रैव १।१२।३३
३. तत्रैव १।१२।३७
४. तत्रैव १।१२।५१-५४
५. तत्रैव १।१२।४८
६. तत्रैव १।१२।७३
७. तत्रैव १।१८।३९-४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसका ग्रास बनते है। पुरोहितों के विनाश से भीत प्रह्लाद प्रभु विष्णु की स्तुति करता है—हे सर्वव्यापी ! विश्वरूप ! विश्वस्रष्टा ! जनार्दन ! इन ब्राह्मणों की इस मंत्राग्निरूप दुःसह दुःख से रक्षा करो।[1] भगवान् विष्णु सर्वव्यापक हैं इस सत्य के प्रभाव से पुरोहित गण जीवित हो जाएं।[2]

इस प्रकार इसमें मांगलिक चेतना निहित है। भक्त इतना उदार होता है कि अपने विरोधियों की रक्षा के लिए भी प्रभु से याचना करता है।

पंचम स्तुति है प्रह्लादकृत भगवत्स्तुति।[3] वह अनन्त समुद्र में पहाड़ों से दबाया जा चुका है, फिर नित्यकर्म के समय वह भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करता है—हे कमल नयन ! आपको नमस्कार है। हे पुरुषोत्तम, सर्वलोकात्मन् ! आपको नमस्कार है। गो ब्राह्मण हितकारी भगवान् कृष्ण, गोविन्द को नमस्कार है।[4] इस स्तुति में भगवान् विष्णु के सर्वव्यापक, सर्वसमर्थ तथा विश्व के कर्त्ता, पालक एवं संहारक आदि स्वरूप को उद्घाटित किया गया है। भक्त प्रकृति के कण-कण में भगवान् की सर्वव्यापकता का अनुभव करता है और अन्त में स्वयं भी विष्णुमय हो जाता है—मैं ही अक्षय, नित्य और आत्माधार परमात्मा हूं तथा मैं जगत् के आदि अन्त में स्थित ब्रह्मसंज्ञक परम पुरुष हूं।

अन्य स्तुतियों हैं—देवगण कृत देवकी स्तुति (५.२.७-२१) वसुदेव-देवकी कृत श्रीकृष्ण स्तुति (५.३.१०-११ एवं, १२-१३) नागपत्नियों एवं कालिय नाग द्वारा कृत श्रीकृष्ण स्तुति (५.७.४८-५९ एवं ५.७.६१-७६) इन्द्रकृत श्रीकृष्ण स्तुति (५.१२.६-१२) तथा मुचुकुन्दकृत श्रीकृष्ण स्तुति (५.२३.२६-४७) आदि।

महाकाव्यों की स्तुति सम्पदा

महर्षि वाल्मीकि एवं लोकसंग्रही व्यास के बाद महाकवि कालिदास अपनी काव्य-प्रतिभा तथा कल्पना चातुरी के लिए प्रख्यात हैं। विश्व प्रसिद्ध महाकाव्य रघुवंश तथा प्रख्यात नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् का प्रारम्भ शिव की स्तुति से ही होता है।

रघुवंश महाकाव्य के दसवें सर्ग में विष्णु भगवान् की स्तुति की गई है। रावण के भय से त्रस्त देवता लोग क्षीरशायी विष्णु के पास जाकर स्तुति करते हैं। उस समय भगवान् विष्णु अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे, तभी देवगण

१. विष्णुपुराण १।१८।३९
२. तत्रैव १।१८।४३
३. तत्रैव १।१९।६४-८६
४. तत्रैव १।१९।६४-६५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनसे निवेदित करने लगे[1]—विश्व को बनाने, पालन करने और अंत में संहार करने वाले—तीनों रूप आप अपने में धारण करते हैं। जैसे एक स्वाद वाला वर्षा का जल अलग-अलग देशों में बरसकर अलग-अलग स्वाद वाला हो जाता है उसी प्रकार आप सभी विकारों से दूर होते हुए भी सत्त्व, रज और तम—तीनों गुणों को लेकर बहुत से रूप धारण करते हैं। आप अत्यन्त विशाल हैं, आपने ही दृश्यमान सम्पूर्ण संसार को उत्पन्न किया है

अमेयो मितलोकस्त्वमनर्थी प्रार्थनावहः।
अजितो जिष्णुरत्यन्तमव्यक्तो व्यक्ताकारः।[2]

हृदयस्थ होते हुए भी आप दूर हैं, आप इच्छारहित भी तप करते हैं, आप दयावन्त हैं, लोग पुराण कहते हैं पर आप कभी बूढ़े नहीं होते हैं। आप सर्वज्ञ हैं, सबके कारण हैं—

सर्वज्ञस्त्वमविज्ञातः सर्वयोनिस्त्वमात्मभूः।
सर्वप्रभुरनीशस्त्वमेकस्त्वं सर्वरूपभाक्॥[3]

इस प्रकार दसवें सर्ग में श्लोक सं० १६ से लेकर २७ तक भगवान् विष्णु के विभिन्न गुणों का प्रतिपादन हुआ है। सर्वज्ञता, सर्वकारणता, पुराणत्व, सबके स्वामी, रक्षक, सर्वव्यापकता आदि गुणों का आधान विष्णु में किया गया है।

प्रस्तुत स्तुति में काव्य गुणों का उचित समावेश हुआ है। शैली प्रसाद गुण से परिपूर्ण है। अलंकारों का उचित सन्निवेश से स्तुति की कमनीयता में वृद्धि हो गयी है। भाषा की प्रांजलता, शब्दों का उचित प्रयोग अवलोकनीय है। उपमाओं की अद्भुत छटा भी रम्य है।

इस स्तुति पर ऋग्वेदीय पुरुषसूक्त का ज्यादा प्रभाव परिलक्षित होता है। सम्पूर्ण संसार विष्णु से ही उत्पन्न होता है और फिर उसी में विलीन हो जाता है। कुमारसंभव में ब्रह्मा की स्तुति अत्यन्त कमनीय है। यह आर्त्त स्तुति है। तारकासुर के उपद्रव से त्रस्त देवगण पितामह ब्रह्मा के शरण में जाकर उनकी स्तुति करते हैं।[4] हे भगवन्! संसार के स्रष्टा! पहले एक ही रूप में रहने वाले और संसार रचते समय सत्त्व, रज और तीन गुण उत्पन्न करके ब्रह्मा, विष्णु, महेश नाम से तीन रूपों को धारण करने वाले आपको नमस्कार है। हे प्रभो आप संसार के उत्पत्तिकर्त्ता हैं। आप ही विष्णु और हिरण्यगर्भ इन तीन रूपों में अपनी शक्ति प्रकट करके संसार का नाश, पालन

१. रघुवंश महाकाव्य १०।१९-३७
२. तत्रैव १०।१८
३. तत्रैव १०।२०
४. कुमारसंभवम् २।३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और उत्पादन करते हैं। आप ही सृष्टि के प्रारम्भ में स्त्री और पुरुष दोनों रूप धारण करने के कारण संसार के माता-पिता कहे जाते हैं—

स्त्रीपुंसावात्मभागौ ते भिन्नमूर्तेः सिसृक्षया।
प्रसूतिभाजः सर्गस्य तावेव पितरौ स्मृतौ ॥[1]

संसार को आपने उत्पन्न किया है पर आपको किसी ने उत्पन्न नहीं किया। आप संसार का अन्त करते हैं पर आपका कोई अन्त नहीं कर सकता। आप संसार के स्वामी हैं पर आपका कोई स्वामी नहीं हो सकता। आप अपने में ही स्थित रहते हैं—

आत्मानमात्मना वेत्सि सृजस्यात्मानमात्मना।
आत्मना कृतिना च त्वमात्मन्येव प्रलीयसे ॥[2]

आप हवन द्रव्य भी हैं, हवनकर्त्ता भी हैं। आप भोग्य-भोक्ता, ज्ञेय-ज्ञाता, तथा ध्येय और ध्यानकर्त्ता भी हैं—

त्वमेव हव्यं होता च भोज्यं भोक्ता च शाश्वतः।
वेद्यं च वेदिता चासि ध्याता ध्येयं च यत् परम् ॥[3]

किरातार्जुनीय की स्तुति सम्पदा

किरातार्जुनीय अलंकृत शैली का उत्कृष्ट महाकाव्य है। महाभारतीय आख्यान पर विरचित यह ग्रन्थ महाकवि भारवि की अमर रचना है। इस महाकाव्य के अन्त में अर्जुन ने भगवान् शंकर की स्तुति की है। अर्जुन की वीरता पर किरात वेशधारी भगवान् शंकर शीघ्र ही प्रकट हो जाते हैं। सामने त्रैलोक्य पति को देखकर अर्जुन की गद्गद्गिरा स्वतः निःसृत हो जाती है – हे अपराजित ! लोग आपकी भक्ति, दया, अनुकम्पा प्राप्त कर अरिदमन में समर्थ हो जाते हैं। नाथ ! जब तक प्राणी आपके चरणों की शरणागति नहीं ग्रहण करता तभी तक उसे असहाय समझकर विपत्तियां आती हैं। आप निस्वार्थ भाव से जगत् का मंगल करते हैं। संसार में सुदूर यात्रा करके लोग तीर्थ को प्राप्त करते हैं, वह तीर्थ भी आपही हैं क्योंकि समस्त कामनाओं की पूर्त्ति आपके द्वारा ही सम्भव है। हे वरदायक ! आपसे प्रेम रखने वाला मोक्ष प्राप्त करता है तथा आपसे द्वेष रखने वाला नरकगामी होता है। आपही भक्तों को स्वर्ग तथा अभक्तों को नरक देते हैं। आपका स्मरण ही कैवल्य प्रदायक है। ज्ञान और कर्म के द्वारा जिस मुक्ति की प्राप्ति का वर्णन किया जाता है वह ज्ञान और कर्म रूप तो आपही हैं। आपकी

१. कुमारसम्भव महाकाव्य, २।७
२. तत्रैव २।१०
३. तत्रैव २।१५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महिमा अचिन्त्य अनन्त और अगम्य है। आपका चित्त राग से मुक्त है क्योंकि आप परम योगी हैं, पर विलासिता भी आपमें कम नहीं है क्योंकि आपने अपने अर्द्धाङ्ग में स्त्री को धारण कर रखा है। आप जगद्वन्द्य होकर भी प्रभातकाल में ब्रह्मदेव की वन्दना करते हैं इसलिए आपके याथार्थ्य स्वरूप को जानना कठिन है।

इस प्रकार शंकर के विभिन्न गुणों, रूपाकृति एवं कार्यों का विवेचन इस स्तुति में किया गया है। भगवान् शंकर समस्त लोकों के रक्षक, पालक तथा संहारक हैं। वे मंगल के देवता हैं। कलिकाल में प्रमुख रूप से उनकी आराधना सभी कामनाओं को देने वाली है। इस स्तुति में अर्जुन ने भगवान् शिव की अष्टमूर्तियों—वायमूर्ति, अग्निमूर्ति, जलमूर्ति, व्योममूर्ति आदि की आराधना कर अन्त में शस्त्र विद्या की प्राप्ति की कामना की है। अविद्या, माया, जीव, ब्रह्म आदि दार्शनिक विषयों का भी निरूपण इस स्तुति में पाया जाता है। अर्थगौरव की दृष्टि से यह स्तुति अत्यन्त प्रमुख है।

माघकाव्य की स्तुति सम्पदा

महाकवि माघ संस्कृत साहित्याकाश के देदीप्यमान नक्षत्र हैं। सुर-भारती के वरदवत्स हैं। महाकवि माघ न केवल काव्यशास्त्रीय तत्त्वों के पारदृश्वा है, अपितु व्याकरणशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, कामशास्त्र, दर्शनशास्त्र, ज्योतिष, संगीत, पाकविद्या, हस्तिविद्या, अश्वशास्त्र एवं पुराणादि के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। सभी शास्त्रों का सार तत्त्व इनके शिशुपालवध नामक महाकाव्य में समाहित है। श्रीमद्भागवतीय कथा 'शिशुपाल का कृष्ण के द्वारा पराक्रम पूर्वक वध' पर आधारित यह एक प्रौढ़ महाकाव्य है। "माघे सन्ति त्रयोगुणा" का यह आभाणक विद्वत् मण्डली में आदृत है।

वस्तुतः महाकवि माघ काव्यकला में निष्णात पण्डित हैं, जिन्होंने केवल विदग्ध एवं विचक्षण विद्वानों के मनोविनोद के लिये इस प्रौढ़ महा-काव्य की रचना की। अर्थालंकारों के साथ-साथ कतिपय लघुकाय गीतियों का प्रयोग भी इस महाकाव्य की प्रमुख विशेषता है। चतुर्दश सर्ग में पितामह भीष्म ने सर्वनियन्ता अर्जुन सखा भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति उदात्त स्तुति समर्पित की है—

योगीजन आपको ध्यान के योग्य होने पर भी बुद्धिमार्ग का अविषय मानते हैं। स्तुत्य होने पर भी शब्दों के द्वारा आपका चित्रण नहीं किया जा सकता। आप उपासना के योग्य होने पर भी अत्यन्त दूरवर्ती एवं अचिन्त्य रूप वाले हैं। आपमें तीनों गुणों की स्थिति—रजोगुण का आश्रय कर संसार की सृष्टि करने वाले ब्रह्मा, तत्त्व गुण का आश्रयण कर संसार की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थिति को धारण करते हुए पालन कर्त्ता विष्णु एवं तमोगुण विशिष्ट संसार के प्रलयकर्त्ता रूद्र के रूप में आपहीं प्रसिद्ध हैं। हे प्रभो आपको भक्तजन सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ, सर्वनियन्ता, क्लेशों एवं कर्मों के भोग से रहित पुरुषविशेष ईश्वर के रूप में जानते हैं। भक्तजन आप भक्तवत्सल की स्तुति-भक्ति करके सद्यः सांसारिक क्लेशों से मुक्त हो जाते हैं। सामादि वेदज्ञान के ज्ञाता ब्रह्मा रूपी भ्रमर जिसके भीतर में है ऐसा जिनके नाभिरूप जलाशय में उत्पन्न कमल लक्ष्मीजी के मुख रूप चन्द्रमा के समीप में भी शोभता है।[1]

नैषध महाकाव्य की स्तुतियां

नैषध महाकाव्य महाकवि हर्ष की अनुपम कृति है। महाकवि हर्ष विचित्र मार्ग के कवि हैं। इनकी अद्‌भुत काव्य प्रतिभा, वर्णन-कला तथा निरूपण की शक्ति का चूड़ांत निदर्शन है "नैषधं विद्वदौषधम्" यह सूक्ति जो सम्पूर्ण विदग्ध-संसार में प्रथित है।

रस, अलंकार एवं काव्य-गुणों के साथ इस महाकाव्य में कतिपय गीतियां भी अपनी रसमाधुरी के लिए सहृदय जनों का हृदयरंजन करती हैं। भगवान् के विभिन्न अवतार विषयक स्तुतियां, भक्तहृदय की सरल अभिव्यक्ति है। अन्य प्रसंगों की तरह शब्दों का चमत्कार, अर्थगौरव का गांभीर्य, उपमादि अलंकारों का मनोज्ञ चित्रण आदि हर्ष द्वारा निबद्ध स्तुतियों के वैशिष्ट्य हैं। २४ वें सर्ग में विभिन्न अवतारों की स्तुतियां गायी गई हैं। मत्स्यावतार की स्तुति करते हुए नल कहता है --शंखासुर के कपट से मत्स्य का शरीर धारण किए हुए तुम्हारी पूंछ के आस्फालन से ऊपर उछला हुआ जल नील नभ के संसर्ग से नीलिमा को प्राप्त कर मानो आकाश गंगा के रूप में प्रकट हुआ है।[2]

कच्छपावतार की स्तुति करते हुये कहा गया है कि तुम्हारी पीठ पर अनेक सृष्टियों के धारण किये गए पृथिवी-मण्डलों के घट्ठे के समान चक्राचिह्नों से स्पृष्ट पृथिवी की रक्षा करने में तत्पर आपका कच्छप शरीर संसार की रक्षा करे।[3]

इस महाकाव्य में वाराहावतार, मत्स्यावतार के अतिरिक्त नृसिंहावतार वामनावतार एवं अन्य भगवदवतारों की स्तुतियां संग्रथित हैं।

रत्नाकर कवि ने "हरिविजयम्" नामक महाकाव्य के ४७ वें सर्ग में देवताओं द्वारा १६७ पद्यों में चण्डी की स्तुति करायी है।

इस प्रकार संस्कृत के अलंकृत महाकाव्यों की स्तुतियां भक्ति युक्त हृदय

१. शिशुपालवध महाकाव्य १४।६०-६९
२. नैषधमहाकाव्यम् २१-५३
३. तत्रैव २१-५४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के नैसर्गिक उद्‌गार हैं। पुराण, दर्शन, काव्य-धर्म आदि की दृष्टि से ये स्तुतियां महत्त्वपूर्ण हैं।

अन्य स्तुति साहित्य

वैदिक, पौराणिक एवं महाकाव्यों में ग्रथित स्तुतियों के अतिरिक्त अन्य स्वतन्त्र स्तोत्र ग्रन्थों की भी रचना हुई है। भौतिक कामना सिद्धि के लिये, दारिद्रय निवारण, भय से मुक्ति, पुत्र-पौत्रादि की वृद्धि एवं आयुष्य की कामना से अनेक भक्त कवियों ने स्तोत्रात्मक ग्रन्थों की रचना कर अपने उपास्य को समर्पित किया है। भौतिक उत्थान के अतिरिक्त अध्यात्म विषयक स्तोत्र-ग्रन्थ भी पाए जाते हैं जिसमें आध्यात्मिक उन्नति, भवबन्धन से मुक्ति, प्रभु शरण की प्राप्ति आदि बातें दृष्टिगोचर होती हैं। भक्तों ने इन स्तोत्रों में अपने हृदय की दीनता, हीनता, विनम्रता, समर्पण की भावना तथा भगवान् की उदारता, भक्तवत्सलता, सर्वसमर्थता आदि का परिचय दिया है वह सचमुच अपने आप में बेजोड़ है। सुप्रसिद्ध आधुनिक आलोचक पण्डित बलदेव उपाध्याय ने लिखा है--हमारा भक्त कवि कभी भगवान् की दिव्य-विभूतियों के दर्शन से चकित हो उठता है तो कभी भगवान् के विशाल हृदय, असीम अनुकम्पा और दीन जनों पर अकारण स्नेह की गाथा गाता हुआ आत्म-विस्मृत हो उठता है। जब अपने पूर्व कर्मों की ओर दृष्टि डालता है तो उसकी क्षुद्रता उसे बेचैन बना डालती है। बच्चा जिस प्रकार अपनी माता के पास मनचाही वस्तु न मिलने पर कभी रोता है, कभी हंसता है और कभी आत्मविश्वास की मस्ती में नाच उठता है। ठीक यही दशा हमारे भक्त कवियों की है। वे अपने इष्ट देवता के सामने अपने हृदय को खोलने में किसी प्रकार की आना-कानी नहीं करते। वे अपने हृदय की दीनता तथा दयनीयता कोमल शब्दों में प्रकट कर सच्ची भावुकता का परिचय देते हैं। इन्हीं गुणों के कारण इन भक्तों के द्वारा विरचित स्तोत्रों में बड़ी मोहकता है, चित्त को पिघला देने की अतुल शक्ति है।[1]

इस प्रकार स्तुतियों में सरसता, सरलता, समर्पण की भावना तथा भगवान् को हिला देने की शक्ति है।

स्वतंत्र स्तोत्र-साहित्य का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है—

शिवमहिम्न स्तोत्र—पुष्पदन्त द्वारा शिखरिणी छन्द में विरचित शिवमहिम्नस्तोत्र भगवान् भूतभावन त्रिलोकीनाथ शिव के चरणों में समर्पित एक उत्कृष्ट स्तुति काव्य है। इसमें शिव की सर्व-व्यापकता एवं सर्वसमर्थता का निरूपण है। ईश्वर की सत्ता एवं सर्व-व्यापकत्व का दार्शनिक विवेचन अतिश्लाघनीय है। अनेक टीकाकारों ने अपनी वैखरी से इस महनीय

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास—बलदेव उपाध्याय, पृ० ३४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्तोत्र को सजाया है। इसमें शंकर के विभिन्न रूपों का कल्पनात्मक एवं भावनात्मक चित्रण के साथ सगुण और निर्गुण रूप का भी प्रतिपादन हुआ है।

सूर्यशतक—बाण पत्नी से शापित मयूर कवि ने अमंगल की शांति के लिये सौ स्रग्धरा छन्द में अलंकृत एवं प्रौढ़ स्तुति काव्य "सूर्यशतक" की रचना की। बाण और मयूर दोनों राजा हर्षवर्द्धन के दरबार में सभा पण्डित थे। इस स्तुतिकाव्य में भाव की अपेक्षा शब्द-चमत्कार की अत्यधिक प्रधानता है। सूर्यशतक के पद्य काव्य प्रकाश, ध्वन्यालोक आदि लक्षण ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। इस स्तोत्र पर बल्लभदेव, मधुसूदन एवं त्रिभुवन पाल की संस्कृत टीकाएं भी उपलब्ध है। इसमें भगवान् सूर्य का प्रकाशमय स्वरूप का अंकन किया गया है।

चण्डीशतक—यह स्तोत्रकाव्य सुप्रसिद्ध महाकवि बाणभट्टद्वारा स्रग्धरा वृत्तों में निबद्ध भगवती चण्डी के प्रति समर्पित है। इसमें भगवती दुर्गा के विभिन्न रूपों का चित्रण उपलब्ध होता है।

अद्वैतवाद के प्रतिष्ठापक शंकराचार्य विरचित स्तुति काव्य

आचार्य शंकर अद्वैतवाद के प्रतिष्ठापक आचार्य हैं। ये शिव के अवतार माने जाते हैं। इनका जन्म भारत के केरल प्रांत में सातवीं शताब्दी में हुआ था। बाल्यावस्था में ही इन्होंने संन्यास ग्रहण कर सम्पूर्ण भारत में भ्रमण कर अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा की। इनकी शेमुषी-प्रतिभा, अगाध पांडित्य, अलौकिक वक्तृता शक्ति एवं दिव्य ज्ञान के समक्ष सारा विश्व नतमस्तक हो गया। अतएव ये जगद्गुरु कहलाये।

संस्कृत साहित्य में शंकराचार्य विरचित अनेक स्तोत्र-काव्य उपलब्ध होते हैं। उनमें आनन्द लहरी, मोहमुद्गर, आत्मबोध, कनकधारा-स्तोत्र, अपराध भंजन, यतिपंचक आदि प्रसिद्ध हैं। इन स्तुतियों में उत्कृष्ट काव्य के सभी गुण पाये जाते हैं। ये रसात्मकता, सरलता, सरसता, सहजता, प्रासादिकता, संगीतात्मकता और अर्थगांभीर्य से परिपूर्ण हैं।

आनन्दलहरी या सौन्दर्यलहरी में भगवती उमा की स्तुति की गई है। इसमें १०३ पद्य हैं। भगवती उमा को जगज्जनी के रूप में निरूपित किया गया है। भगवती उमा के प्रति निवेदित यह महनीय पद्य अवलोकनीय है।

> धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी पंच विशिखा।
> वसन्तः सामन्तो मलयमरुदायोधनरथः।
> तथाप्येकः सर्वं हिमगिरिसुते कामपि कृपां
> अपांगात्ते लब्ध्वा, जगदिदमनंगो विजयते॥[1]

१. सौन्दर्यलहरी-७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आनन्द लहरी में १०२ पद्य शिखरिणी में और अंतिम पद्य वसंततिलक छन्द में विरचित है।

मोहमुदगर में १७ पद्य हैं। इसमें मायामय विश्व से अलग होकर ब्रह्म में लीन होने के लिये उपदेश दिया गया है। अपराध भंजन में १७ पद्यों में भगवान् शिव के सगुण रूप का चित्रण किया गया है। भक्त धारणा-ध्यानादि के द्वारा समाधि में लीन होकर सदाशिव का साक्षात्कार कर उनकी शरण में जाकर अपने अपराधों की क्षमायाचना करता है—

उन्मत्तयावस्थया त्वां विगतकलिमलं शंकरं स्मरामि।
क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिवशिव भोः श्रीमहादेव शम्भो॥[1]

इस प्रकार शंकराचार्य ने अन्नपूर्णा, विष्णु, हनुमान एवं अन्य देवी-देवताओं की भी स्तुति की है।

उपर्युक्त स्तोत्र काव्यों के अतिरिक्त आचार्य कुलशेखर विरचित २२ पद्यात्मक विष्णु से सम्बन्धित कुन्दमालास्तोत्र, यामुनाचार्य का अलबंदार-स्तोत्र, लीला शुक्र का कृष्णकर्णामृत स्तोत्र आदि प्रसिद्ध हैं। बाद के कवियों, भक्तों ने भी भिन्न-भिन्न देवी-देवताओं की प्रसन्नता के लिये स्तोत्र की रचना की है। विभिन्न सम्प्रदाय के आचार्यों ने अपने अनुसार स्तुति काव्य का विरचन किया है—

१. शिव से सम्बन्धित स्तोत्र
२. भगवती दुर्गा एवं उनके विभिन्न रूपों से सम्बन्धित स्तोत्र
३. विष्णु एवं उनके अवतारों से सम्बन्धित
४. जैन साहित्य में वर्णित स्तुतियां
५. बौद्ध वाङ्मय में निरूपित भगवान् बुद्ध की स्तुतियां

---

१ अपराधभंजन—१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. भागवत की स्तुतियां : स्रोत, वर्गीकरण एवं वस्तु विश्लेषण

उपक्रम

श्रीमद्भागवत भक्ति का शास्त्र है। इसमें भक्ति का साङ्गोपाङ्ग विवेचन किया गया है। अनेक भक्तों की कथा एवं आख्यानोपाख्यान के द्वारा भक्ति तत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। भक्ति रूप साध्य के अनेकविध साधनों में स्तुति को सर्वोत्कृष्ट माना गया है। भगवत्कथा-गुणकीर्तन एवं विविध लीलागायन से अचला भक्ति पूर्ण होती है। यहां अनेक प्रकार के भक्त अपने भगवान् के श्रीचरणों में अपनी भावना के अनुसार स्तुति समर्पित करते हुये दृष्टिगोचर होते हैं।

श्रीमद्भागवत महापुराण में छोटी बड़ी कुल १३२ स्तुतियां विभिन्न अवसरों पर विविध स्तोताओं के द्वारा गायी गई हैं। इनमें से कुछ निष्काम हैं और कुछ सकाम। सकाम स्तुतियों में भक्त का कोई स्वार्थ निहित रहता है। वह सांसारिक भोग, वैभव, ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए, तथा दुःख, रोग एवं विपत्ति से बचने के लिये अपने उपास्य की स्तुति करता है। निष्काम स्तुतियों का लक्ष्य है—प्रभु प्रेम या प्रभु चरणरति। वह प्रभु चरणरज की प्राप्ति के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की कामना नहीं करता है। स्तुतियां सहज-स्वाभाविक रूप में भागवतीय भक्तों के हृदय से स्वतः स्फूर्त होती दिखाई देती हैं। यहां ज्ञानादि गौण हैं। ईश्वरानुरक्ति और प्रभु प्रेम की ही प्रमुखता है।

भागवतीय स्तुतियों एवं वैदिक स्तुतियों में स्तोता के आधार पर विभिन्नता पायी जाती है। वेद में ज्ञान प्रभासम्पन्न ऋषिगण ही—जो सर्वद्रष्टा थे—स्तुति गान में प्रवृत्त होते दिखाई पड़ते हैं। अपनी ज्ञानगंगा में स्थित होकर स्वयं में समाधिस्थ हो प्रभु का दर्शन कर उनकी स्तुति गान करते थे। लेकिन श्रीमद्भागवत में समाज के सभी वर्ग के लोग—ज्ञानी, अज्ञानी, पुण्यात्मा, पापी सबके सब प्रभु नाम का उच्चारण कर भव-सागर तर जाते हैं। एक तरफ शुकदेव, पितामह भीष्म, अम्बरीष और राजा पृथु जैसे सर्वज्ञ, ज्ञानी भक्त हैं तो दूसरी तरफ अजामिल जैसे घोर पापी, गजेन्द्र जैसे मूढ़ पशु, सुदामा माली जैसे शूद्र, वृत्रासुर जैसे महापातकी घोर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राक्षस। सबके सब प्रभु नाम की नौका पर चढ़कर प्रभु के ही मधुमय निकेतन को प्राप्त कर लेते हैं।

दोनों भागवतीय स्तुतियों एवं वैदिक स्तुतियों में लक्ष्य का भी अंतर है। वैदिक ऋषि किसी कामना से धन-दौलत, भोग-ऐश्वर्य एवं सांसारिक अभ्युदय के लिए ही अपने उपास्य की अभ्यर्थना करता है, लेकिन भागवतीय स्तुतियों के भक्तों का एक मात्र लक्ष्य श्रीकृष्ण गुण गान या उनकी सेवा है। तभी तो कुन्ती असंख्य विपत्तियों की कामना करती है क्योंकि प्रभु दर्शन विपत्तियों में ही होता है। पितामह भीष्म मन, वाणी और काय से श्रीकृष्ण पादपङ्कज में ही अपने को प्रतिष्ठित कर देते हैं। वृत्रासुर, नलकुवर-मणिग्रीव हजारों कान, हजारो हाथ और हजारो वर्ष की आयु इसलिए मांगते हैं कि वे प्रभु की सेवा कर सकें। वैदिक स्तोता भौतिक अभ्युदय एवं अध्यात्मिक शांति की अवाप्ति की अभिलाषा करता हुआ दिखाई पड़ता है लेकिन हमारा भागवतीय भक्त लौकिक कल्याण एवं लोक मंगल की अभीप्सा करते हैं। अधिक संख्यक भक्त सम्पूर्ण विश्व की विभूति को भी लात मारकर प्रभु चरण सेवा में ही अपने को धन्य समझते हैं। ये वाक्य स्वयं प्रभु के ही हैं—सुनिए उन्हीं के शब्दों में—

न पारमेष्ठ्यं न महेन्द्रधिष्ण्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा मय्यर्पितात्मेच्छति मद्विनान्यत्।[1]

यहीं तक ही नहीं; सम्पूर्ण जगत् के एक-एक पदार्थ का निषेध करते-करते अन्त में स्वयं अपना भी निषेध कर भागवतीय भक्त श्रीकृष्ण स्वरूप ही हो जाते हैं।[2] धन्य है भागवतीय भक्तों की सौभाग्यचारुता, उनकी महत्ता—जिसे देखकर देवता लोग भी उद्घोष करते हैं—हजारों वर्षों की आयु से भारत भूमि पर अल्पायु होकर जन्म लेना श्रेष्ठ है, क्योंकि वहां के लोग क्षणभर में अपने पुण्य-पाप को उस परम दयालु भक्त-वत्सल श्रीकृष्ण के चरणों में समर्पित कर उन्हीं का हो जाते हैं—

क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः सन्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः॥[3]

दोनों प्रकार की स्तुतियों में उपास्य देवों का भी अन्तर है। बहुतायत वैदिक देवता भागवत काल में आते-आते विलीन हो गये, उनके स्थल पर ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा विष्णु के विभिन्न अवतारों की प्रधानता हो गयी। भागवतों के परम उपास्य नंदनंदन गोकुलनाथ नटराज कृष्ण हो गए।

---

१. श्रीमद्भागवत महापुराण ११।१४।१४
२. तत्रैव १०।८७।४१
३. तत्रैव, ५।१९।२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमद्भागवत पुराण की स्तुति सम्पदा

श्रीमद्भागवत में प्राप्त स्तुतियों का उल्लेख स्कंधानुसार किया जा रहा है।

प्रथम स्कन्ध

	अध्याय	श्लोक संख्या
१. अर्जुन कृत श्रीकृष्ण स्तुति	७	२२-२६
२. उत्तरा कृत श्रीकृष्ण स्तुति	८	९-१०
३. कुन्ती कृत भगवत्स्तुति	८	१८-४३
४. भीष्म कृत भगवत्स्तुति	९	३२-४२
५. हस्तिनापुर की कुलीन स्त्रियों द्वारा कृत श्रीकृष्ण स्तुति	१०	२१-३०

द्वितीय स्कन्ध

१. ब्रह्मा कृत भगवत्स्तुति	९	२४-२९
२. शुकदेव कृत भगवत्स्तुति	४	१२-२३

तृतीय स्कन्ध

१. कर्दम ऋषिकृत भगवत्स्तुति	२१	१३-२१
२. जीवकृत भगवत्स्तुति	३१	१२-२१
३. देवगण कृत वाराह स्तुति	१९	३-३०
४. देवहूति कृत कपिल स्तुति	२५	७-११
५. " " "	३३	७- ८
६. देवगण कृत ब्रह्मा स्तुति	१५	३-१०
७. देवगण कृत भगवत्स्तुति	५	३८-५०
८. ब्रह्माकृत भगवत्स्तुति	९	०१-२५
९. मरीच्यादि ऋषिगणकृत वाराह स्तुति	१३	३४-३५

चतुर्थ स्कन्ध

१. अग्नि कृत विष्णु स्तुति	७	४१
२. अत्रि कृत त्रिदेव स्तुति	१	२७-२८
३. इन्द्र कृत विष्णु स्तुति	७	३२
४. ऋत्विजगण कृत विष्णु स्तुति	७	२७
५. ऋषिगण कृत विष्णु स्तुति	७	३४
६. गंधर्व गण कृत विष्णु स्तुति	७	४३
७. दक्षकृत विष्णु स्तुति	७	२६
८. दक्ष पत्नी कृत विष्णु स्तुति	७	३६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	अध्याय	श्लोक संख्या
९. दक्ष कृत शिव स्तुति	७	१३-१५
१०. ध्रुव कृत विष्णु स्तुति	९	६-१७
११. पृथुकृत विष्णु स्तुति	२०	२३-३६
१२. पृथ्वीकृत पृथु स्तुति	१७	२९-३६
१३. ब्रह्मकृत भगवत्स्तुति	७	३१
१४. बन्दिजन कृत पृथुस्तुति	१६	०२-२७
१५. भृगुकृत विष्णु स्तुति	७	३०
१६. योगेश्वर गणकृत विष्णु स्तुति	७	३८
१७. रूद्र कृत विष्णु स्तुति	७	२९
१८. लोकपाल कृत विष्णु स्तुति	७	३७
१९ शब्द ब्रह्म कृत विष्णु स्तुति	७	
२०. सदस्यगण कृत विष्णु स्तुति	७	२८
२१. याज्ञिकपत्नियों द्वारा कृत विष्णु स्तुति	७	३३
२२. सिद्धगण कृत विष्णु स्तुति	७	३५
२३. ब्रह्म (वेद) कृत विष्णु स्तुति	७	४०
२४. विद्याधर कृत विष्णु स्तुति	७	४४
२५. ब्राह्मणगण कृत विष्णु स्तुति	१८	३०-३३

पंचम स्कन्ध

१. अर्यमाकृत कूर्मावतार स्तुति	१८	३०-३३
२. कुशलादि चतुवर्ण कृत अग्नि स्तुति	२०	१७
३. नारदकृत नर-नारायण स्तुति	१९	११-१५
४. नारदकृत संकर्षण स्तुति	२५	९-१३
५. पुरुषादि चतुवर्ग कृत जलदेवता स्तुति	२०	२३
६. पुष्करद्वीप के वासी कृत श्रीहरि स्तुति	२०	३३
७. पृथिवी कृत वाराहावतार स्तुति	१८	३५-२९
८. प्रह्लाद कृत नृसिंह स्तुति	१८	०८-१४
९. भद्रश्रवा कृत हयग्रीव स्तुति	१८	०२- ६
१०. मनुकृत मत्स्यावतार स्तुति	१८	२५-२८
११. राजा रहुगण कृत जडभरत स्तुति	१२	०१-४
१२. लक्ष्मी कृत भगवत्स्तुति	१८	१८-२३
१३. शिव कृत संकर्षण स्तुति	१७	१७-२४
१४. श्रुतधरादि कृत चंद्र स्तुति	२०	१२
१५. हनुमत्कृत श्रीराम स्तुति	१९	०३-८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	अध्याय	श्लोक संख्या
१६. हंसादि कृत सूर्य स्तुति	२०	५
षष्ठ स्कंध		
१. चित्रकेतु कृत संकर्षण स्तुति	१६	३४-४८
२. देवगण कृत भगवत्स्तुति	९	२१-२७
३. देवगण कृत भगवत्स्तुति	९	३४-४५
४. नारद कृत संकर्षण स्तुति	१६	१८-२५
५. प्रजापति दक्षकृत भगवत्स्तुति (हंसगुह्य स्तोत्र)	४	२३-३४
६. विश्वरूप निर्दिष्ट नारायणकवच	८	१२-४०
७. वृत्रासुर कृत भगवत्स्तुति	११	२४-२७
८. शुकदेवोपदिष्ट लक्ष्मीनारायण स्तुति	१९	११-१४
सप्तम स्कंध		
१. (१६) ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, ऋषिगण पितर, विद्याधर, नागगण, मनुगण गन्धर्व, चारण, यक्ष, किम्पुरुष वैतालिक, किन्नर एवं विष्णु पार्षद कृत (एक-एक श्लोकों में की गई) विष्णु की स्तुतियां (कुल १७)	८ क्रमशः	४०-५६
(१७) प्रह्लाद कृत नृसिंह स्तुति	९	०८-५०
(१८) ब्रह्माकृत नृसिंह स्तुति	१०	२६-२९
अष्टम स्कंध		
१. अदिति कृत भगवत्स्तुति	१७	०८-१०
२. कश्यपोदिष्ट भगवत्स्तुति	१६	२९-३७
३. गजेन्द्र कृत भगवत्स्तुति	३	०२-२९
४. प्रजापति कृत शिवस्तुति	७	२१-३५
५. ब्रह्माकृत भगवत्स्तुति	५	२६-४४
६. ब्रह्माकृत भगवत्स्तुति	१७	२५-२८
७. राजा सत्यव्रत कृत मत्स्यावतार की स्तुति	२४	४६-५३
८. शिवकृत भगवत्स्तुति	१२	०४-१३
नवम स्कंध		
१. अम्बरीष कृत सुदर्शन चक्र स्तुति	५	०३-११
२. अंशुमान् कृत कपिल स्तुति	८	२२-२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दशम स्कंध

	अध्याय	श्लोक संख्य
१. अक्रूरकृत श्रीकृष्ण स्तुति	४०	०१-३०
२. अक्रूरकृत श्रीकृष्ण स्तुति	४८	१७-२७
३. इन्द्रकृत श्रीकृष्ण स्तुति	२७	०४-१३
४. गोपीगण कृत श्रीकृष्णस्तुति	२९	३१-४१
५. गोपीगण कृत श्रीकृष्ण स्तुति (गोपीगीत)	३१	०१-१९
६. जाम्बवान् कृत श्रीकृष्ण स्तुति	५६	२६-२८
७. देवकी कृत भगवत्स्तुति	३	२४-३१
८. नलकूबर मणिग्रीव कृत भगवत्स्तुति	१०	१९-२८
९. नागपत्नीकृत श्रीकृष्ण स्तुति	१६	३३-५३
१०. नारदकृत श्रीकृष्ण स्तुति	३७	११-२४
११. नारदकृत श्रीकृष्णस्तुति	६९	१७-१८
१२. नारदकृत श्रीकृष्ण स्तुति	७०	३७-४४
१३ पृथिवी कृत श्रीकृष्ण स्तुति	५९	२५-३१
१४. बलिकृत श्रीकृष्ण बलराम स्तुति	८५	२९-४६
१५. ब्रह्मा कृत श्रीकृष्ण बलराम स्तुति	१४	०१-४०
१६. देवगण कृत भगवत्स्तुति (गर्भस्तुति)	२	२६-४१
१७. महेश्वर कृत श्रीकृष्ण स्तुति	६३	३४-४५
१८. मुचुकुन्द कृत श्रीकृष्ण स्तुति	५१	४६-५८
१९. मुनिगण कृत श्रीकृष्ण स्तुति	८४	१६-२६
२०. यमुना कृत बलराम स्तुति	६५	२६-२७
२१. राजागण कृत श्रीकृष्णस्तुति	७०	२५-३०
२२. राजागण कृत श्रीकृष्णस्तुति	७३	०८-१६
२३. राजानृग कृत श्रीकृष्णस्तुति	६४	१०-२९
२४. राजा बहुलाश्व कृत श्रीकृष्ण स्तुति	८६	३१-३६
२५. वरुण कृत श्रीकृष्ण स्तुति	२८	५-८
२६. वसुदेव कृत श्रीकृष्ण स्तुति	३	
२७. वेदकृत भगवत्स्तुति	८७	१४-४१
२८. श्रुतदेव कृत भगवत्स्तुति	८६	४४-४९
२९. सुदामा मालीकृत भगवत्स्तुति	४१	४५-५१
३०. सुरभिकृत श्रीकृष्ण स्तुति	२७	१९-२१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकादश स्कंध

	अध्याय	श्लोक संख्या
१. उद्धवकृत श्रीकृष्ण स्तुति	१६	०१-५
२. करभाजनोपदिष्ट भगवत्स्तुति	५	३३-३४
३. देवगणकृत श्रीकृष्ण स्तुति	६	०७-१५
४. देवगणकृत नरनारायण स्तुति	४	०९-११

द्वादश स्कंध

१. मार्कण्डेय कृत शिवस्तुति	८	४०-४९
२. मार्कण्डेय कृत भगवत्स्तुति	१०	२८-३४
३. याज्ञवल्क्यकृत आदित्य स्तुति	६	६७-७६
४. सूतोपदिष्ट कृष्ण स्तुति	११	२४-२६
५. सूतोपदिष्ट कृष्ण स्तुति	१३	१-२

इस प्रकार श्रीमद्भागवत में कुल १३२ स्तुतियां हैं। प्रथम स्कन्ध में पांच, द्वितीय स्कन्ध में दो, तृतीय स्कन्ध में नौ, चतुर्थ स्कन्ध में पचीस, पंचम स्कन्ध में सोलह, षष्ठ स्कन्ध में आठ, सप्त स्कन्ध में अट्ठारह, अष्टम स्कन्ध में आठ, नवम स्कन्ध में दो, दशम स्कन्ध में तीस, एकादश स्कन्ध में चार एवं द्वादश स्कन्ध में पांच स्तुतियां हैं।

स्रोत

वेद ब्राह्मण उपनिषद्, आरण्यक, रामायण, महाभारत एवं पुराणादि से संग्रहित सार तत्त्वों के धरातल पर व्यासर्षि ने भागवत के महाप्रासाद को सर्जित किया है। श्रीमद्भागवत में स्तुतियों का आधिक्य है। विभिन्न स्थलों पर विभिन्न देवविषयक स्तुतियां उपन्यस्त हैं। इन स्तुतियों का मूल स्रोत क्या है ? कहां से पराशरात्मज ने मुक्तामणियों को एकत्रित कर स्तुति-स्रग्वी का निर्माण किया ? स्तुति साहित्य की शीतल निर्झरिणी कहां से उद्भूत होती है, भागवतारण्य में उपचित होने वाली कलकल निनादवती श्रुति मधुर शब्दों की धारा किस अमृतागार से निःसृत होती है ? इत्यादि विषय प्रस्तुत संदर्भ में विचारणीय हैं।

सर्वप्रथम भागवतीय स्तुतियों का मूल स्रोत वेद है। वैदिक ऋषि द्वारा उपास्य चरणों में समर्पित स्तोत्रों से अलौकिक सौन्दर्य एवं सुरभिमण्डित पुष्पों को ग्रहण कर व्यास देव ने भागवतीय स्तुति-माला को खूब संवारा है। ऋग्वेद का प्रारंभ ही अग्नि देव की स्तुति से होता है

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवं ऋत्विजं होतारं रत्नधातमम्।[1]

१. ऋग्वेद १.१.१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वहां स्पष्ट शब्दों में अन्य वार्ता को छोड़कर देव स्तुति करने का निर्देश दिया गया है-- "माचिद् अन्यद् विशंसत ।" प्रभु के अतिरिक्त कोई सुख प्रदाता नहीं—

नह्यन्यं बलाकरं मडितारं शतक्रतो । त्वं न इन्द्र मृळय ॥
यो नः शश्वत् पुराविथामृध्रो वाजसातये । सत्वं न इन्द्र मृळय ॥[1]

प्रभु की यश गाथा प्रत्येक जीव के द्वारा गाने योग्य है । अर्थात् प्रभु संस्तुत्य हैं, उनकी स्तुति करनी चाहिए—

कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत् ।[2]
तद् वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत् ।[3]
तां सु ते कीर्तिं मघवन् महित्वा ।[4]

ऋग्वेद स्पष्ट निर्देश करता है कि जैसे-जैसे ज्ञान विकसित होता जाए वैसे-वैसे प्रभु की स्तुति करनी चाहिए—

तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथाविद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन ।
आस्य जानन्तो नाम विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥[5]

एक स्थल पर स्तुति करने का आदेश है और एक स्थल पर उसकी प्रतिज्ञा —

श्रेष्ठमु प्रियाणां स्तुहि ।[6]
महो महीं सुष्टुतिं मीरयामि ।[7]

अथर्ववेद में अनेक स्थलों पर स्तुति का प्रसंग उपस्थित है । एक स्थल पर ऋषि इन्द्र का आह्वान कर रहा है—"इन्द्रं वयमनुराधं हवामहे ।[8] नामकीर्त्तन का अन्यत्र उल्लेख प्राप्त होता है—सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ।[9]

यस्य नाम महद यशः—यजुर्वेद माध्यदिनशाखा ३२.३
यत् ते अनाधृष्टं नाम यज्ञियम—तत्रैव ५.९

---

१. ऋग्वेद ८.८०.१,२
२. तत्रैव १.१०३.४
३. तत्रैव १.११६.६
४. तत्रैव १०.५४.१
५. तत्रैव १.१५६.३
६. तत्रैव ८.१०३.१०
७. तत्रैव ३.२३.८
८. अथर्ववेद १९.१५.२
९. ऋग्वेद ७.२२.५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चारु इन्द्राय नाम—ऋग्वेद ९.१०९.१४
विश्वा हि वो नमस्यानि वन्द्यानामा—तत्रैव १०.६३.२
मनामहे चारुदेवस्य नाम—तत्रैव १.२४.१
मर्त्या अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे—तत्रैव ८-११.५
भूरि नाम वन्दमानो दधाति—तत्रैव ५.३.१०
नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे—तत्रैव ३.३७.३

वैदिक वाङ्मय में सामूहिक स्तुतिगायन का भी उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद १.८९.८, सामवेद उत्तरार्द्ध २१.२६, शुक्लयजुर्वेद २५.२१ और तैत्तिरीय आरण्यक १.१.१ में सामूहिक स्तुति का गायन किया गया है—

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

अथर्ववेद १९.६७.१८, शुक्लयजुर्वेद ३६.३४, तै० आ० ४.४२.५ में ऋषि सौ वर्षों तक विभूति सहित जीवित रहने के लिए और अन्यत्र मंगल के लिए प्रार्थना कर रहा है—

ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः। शं नो भवत्वर्यमा।
शं न इन्द्रो बृहस्पतिः।[1]

भागवत की स्तुतियों का मूल स्रोत पुरुष, हिरण्यगर्भ और नासदीय आदि सूक्तों के अतिरिक्त अन्य सूक्तों में भी प्राप्त होता है। सकाम में अर्जुन, उत्तरा, गजेन्द्र, नृपगण आदि की स्तुतियां हैं जिनमें जीवन रक्षा के लिए उपास्य से आर्त प्रार्थना की गई है। ऋग्वेद के वरुण सूक्त इन स्तुतियों का मूल आधार है। वहां ब्राह्मण पुत्र शुनःशेप अपनी प्राण रक्षा की याचना नैतिक देवता वरुण से करता है। उसे देवता वरुण अभय भी प्रदान करते हैं।

भागवत के स्तुतियों में श्रीकृष्ण के अनेक गुणों से जैसे सर्वव्यापक, आद्यरूप, शरणागतवत्सल, सर्वश्रेष्ठशासक, शक्तिशाली, असुरों के निहन्ता, संसार के आश्रय आदि से गुणों से विभूषित कहा गया है। ऋग्वैदिक इन्द्र, विष्णु आदि की स्तुतियों में ये सारे विशेषण उपलब्ध होते हैं।

भागवतीय भक्तों ने अनेक बार अपने उपास्य को प्रकाशस्वरूप, प्रकाश प्रदाता, ज्ञानस्वरूप आदि कहा है। एक स्थल पर अदिति अपनी स्तुति में उपास्य के अज्ञानापास्तक स्वरूप को उद्घाटित कर रही है—हे प्रभो! आप सदा अपने स्वरूप में स्थित रहते हैं। नित्यनिरन्तर बढ़ते हुए पूर्ण बोध के द्वारा आप हृदय के अन्धकार को नष्ट करते रहते

१. ऋग्वेद १.९०.९, अथर्ववेद १९.९.६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। भगवन् ! मैं आपको नमस्कार करती हूं। यह तथ्य ऋग्वेदीय सविता सूक्तों से प्रभावित है। अनेक स्थलों पर सविता को अन्धकार—अज्ञानांधकारविधातक, तमोविनाशक एवं उत्प्रेरकदेव कहा गया है।[1]

भागवत में अनेक स्थलों पर अपने उपास्य को यज्ञीय देवता कहा गया है। यज्ञस्वरूप, यज्ञरक्षक एवं यज्ञपति विशेषणों का प्रयोग किया गया है।[2] ये विशेषण अग्नि सूक्तों से गृहित प्रतीत होते हैं। अग्नि को भी यज्ञ का पुरोहित, देवता, अधिष्ठाता, यज्ञस्वरूप, यज्ञरक्षक आदि कहा गया है।

भागवतीय स्तोताओं ने अपने स्तव्य के लिए कालातीत, सृष्टिकर्त्ता, भक्तरक्षक, असुरहन्ता, प्राणदाता, कामनादाता, क्लेशहन्ता आदि विशेषणों का संग्रह ऋग्वैदिक सूक्तों से किया होगा, ऐसा प्रतीत होता है. क्योंकि भागवत के प्रारंभ में ही भागवतकार ने बताया है कि भागवत वेदरूप कल्पवृक्ष का पका हुआ फल है। शुक के मुख सम्बन्ध से यह परमानन्दमयी सुधा से परिपूर्ण है। इसमें तनिक भी त्याज्य भाग नहीं है और यह पृथिवी पर ही सुलभ है इसलिए भागवतकार ने जीवनपर्यन्त इस दिव्य भगवद्रस का निरन्तर बार-बार पान करने के लिए सलाह दी है।[3] इससे स्पष्ट है कि भागवतकार ने वैदिक वाङ्मय से विभिन्न तथ्यों का संकलन कर तथा भक्तिरस से परिपूर्ण कर इस ग्रन्थ का निर्माण किया। इसमें जो कुछ भी है वेद की व्याख्या है और विद्वत् समाज की यह उक्ति भी है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।[4]

उपनिषद्, आरण्यक में भागवतीय स्तुतियों का स्रोत

औपनिषदिक विद्या—आत्मा, परमात्मा, जीव, अज्ञान, संसार सृष्टि, प्रलय, जगत्प्रपंच का आदि कारण, सबका मूल आश्रय आदि के विवेचन से सम्बन्धित है। विभिन्न उपनिषदों में जिस प्रकार से परमात्मस्वरूप का प्रतिपादन किया गया है वैसा वर्णन भागवतीय स्तुतियों में भी पाया जाता है। यह सम्पूर्ण संसार ईश्वर से ही शासित है। इस तथ्य का प्रतिपादन भागवतीय स्तोताओं ने बार-बार किया है।

सर्व एव यजन्ति त्वां सर्वदेवमयेश्वरम्।
येऽप्यन्यदेवता भक्ता यद्यप्यन्यधियः प्रभो॥

---

१. ऋग्वेद १.२.२
२. श्रीमद्भागवतमहापुराण ४.७.२७,४१,४५,४७,८.१७.८
३. तत्रैव १.१.३
४. वायुपुराण १.२०.१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथाद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्यापूरिताः प्रभो ।
विशन्ति सर्वतः सिन्धुं तद्वत्त्वां गतयोऽन्ततः ॥

(श्रीमद्भागवतमहापुराण, १०.४०.९-१०)

स त्वं त्रिलोकस्थितये स्वमायया विभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः ।
सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये ॥

(श्रीमद्भागवतमहापुराण १०.३.२०)

ईशावास्योपनिषद् का प्रथम मन्त्र ही इस तथ्य का आद्यस्थल है— "ईशावास्यमिदम्" में ऋषि ईश्वर की सर्वव्यापकता एवं सर्वशक्तिमता का उद्घाटन किया है ।

उपनिषदों में विवेचित परब्रह्म परमात्मा को ही भागवतकार ने श्रीकृष्ण के रूप में प्रतिष्ठित किया है । या यों कहिए कि उपनिषद् का निर्गुण, निर्विकार अनन्त, सर्वव्यापक, इन्द्रियागोचर परमात्मा ही भक्ति का बाना पहनकर भागवत में सगुण-निर्गुण उभयरूप श्रीकृष्ण के रूप में अवतरित हुआ है । भागवतीय भक्तों ने अपने उपास्य के लिए कुछ ऐसे विशेषणों का प्रयोग किया है जो उपनिषद् से गृहित प्रतीत होते हैं । निर्विकार (७.८.४०, १०.४०.१२), सर्वतन्त्रस्वतन्त्र (४.७.२६) इन्द्रियागोचर (४.९.१३) अनन्त (४.३०.३१), सर्वव्यापक (८.३.१८) योगीजनग्राह्य (८.३.२७), सर्वलोकातीत (१२.१२.६६) आदि परमात्मा के भागवतीय विशेषणों का प्रथम प्रयोग उपनिषदों में प्राप्त होता है ।

अनन्त —सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म— तैत्तिरीयोपनिषद् २.१.१
अमर—श्वेताश्वर ३.२१ ५.२, तद्ब्रह्म तद्मृतं स आत्मा- छान्दयोग्योपनिषद् ८.१४.९, सर्वेश्वर—माण्डूक्य, सर्वव्यापी—मैत्रायणी ५.१, सर्वकारणस्थान, लयस्थान- तैत्तिरीयोपनिषद् ३.१, २.६, श्वेताश्वर ४.१२
असंग—बृहदारण्यकोपनिषद् ४.२.४
सर्वेश्वर—माण्डूक्य ६,७
यज्ञस्वरूप- मुण्डक २.१.६

इस प्रकार भागवतीय स्तुतियों पर औपनिषदिक प्रभाव भी परिलक्षित होता है ।

रामायण, महाभारत हिन्दू संस्कृति के प्राण स्वरूप हैं । महर्षि वाल्मीकि और पराशरात्मज व्यास की ऋतम्भरीय प्रभा का चूड़ान्त निदर्शन हैं । रामायण में अनेक प्रकार की स्तुतियां हैं जिनका प्रभाव भागवतीय स्तुतियों पर दृष्टिगोचर होता है । भागवतीय सामूहिक स्तुतियों का उत्स रामायणीय देवगणकृत ब्रह्मा एवं विष्णु स्तुति (बालकाण्ड १।१६) है । भाषा और भाव की भी समानता है । देव लोग रावण से संत्रस्त होकर अपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राण रक्षा के लिए ब्रह्मा एवं विष्णु की स्तुति करते हैं। भागवत में भी कंश से मुक्ति के लिए देवलोग भगवान् कृष्ण की स्तुति करते हैं। आदित्य हृदय स्तोत्र (रामायण युद्धकाण्ड १०५) पश्चात्वर्ती वैसे स्तोत्रों का आद्य उपजीव्य है, जिसमें उपास्य के विभिन्न गुण कर्मानुसारी नामों की चर्चा की गई है। भागवत महापुराण के "नारायणकवच" का प्रथम स्रोत यहीं आदित्य हृदयस्तोत्र है। दोनों में समय एवं परिस्थिति की भी समानता है। भागवत में इन्द्र पुरोहित विश्वदेव द्वारा उपदिष्ट होकर राक्षस राज वृत्रासुर पर विजय प्राप्त करने के लिए "नारायणवर्म" का पाठ करते हैं, जिसमें भगवान् विष्णु के विभिन्न नामों की चर्चा है। रामायण में श्रीराम ऋषि याज्ञवल्क्य द्वारा अनुज्ञापित होकर रावण विजय के लिए आदित्य हृदयस्तोत्र का पाठ करते हैं। अन्य भागवतीय स्तुतियों का स्रोत भी रामायण की स्तुतियों में उपलब्ध होता है।

महाभारत की द्रौपदीकृत श्रीकृष्ण स्तुति सारे भागवतीय आर्त स्तुतियों का मूल स्रोत है। द्रौपदी भरी सभा में विवस्त्रा हो रही है। पूर्णतः असहाय एवं संकटग्रस्त होकर श्रीकृष्ण को पुकार उठती है (सभापर्व ६८.४१-४३)। भागवत में उत्तरा, अर्जुन, गजेन्द्र आदि की स्तुतियां द्रौपदीकृत कृष्ण स्तुति से प्रभावित हैं।

महाभारत का भीष्मस्तवराज (शान्तिपर्व-४७) भागवतीय भीष्मकृत श्रीकृष्ण स्तुति का मूल है। यह वृहद्काय स्तोत्र है। इसमें ८४ श्लोक हैं जो ८२ अनुष्टुप् में तथा शेष अंतिम दो उपेन्द्रवज्रा छन्द में निबद्ध हैं। भागवतीय भीष्म स्तुति में इसी स्तवराज से विभिन्न भावों, उपास्य के नाम एवं स्वरूप का संग्रहण किया गया है।

श्रीमद्भागवत की स्तुतियों का वर्गीकरण

श्रीमद्भागवत में १३२ स्तुतियां विभिन्न प्रकार के भक्तों द्वारा अपने-अपने उपास्य के प्रति समर्पित की गई हैं। इन स्तुतियों का विभाजन अधोविन्यस्त रूप में किया गया है—

१. उपास्य के आधार पर स्तुतियों का वर्गीकरण

उपास्य के आधार पर श्रीमद्भागवतीय स्तुतियों को तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—

१. सर्वतन्त्रस्वतन्त्र, परात्पर ब्रह्म अथवा अनौपाधिक ब्रह्मविषयक स्तुतियां

श्रीमद्भागवत परमहंसों की संहिता है। इसमें कतिपय ऐसे भक्त हैं, जो अनौपाधिक ब्रह्म की स्तुति या उपासना करते हैं। सृष्टिकर्त्ता सृष्टि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करने में जब अक्षम थे, तब उन्होंने परात्पर ब्रह्म की स्तुति की। आरम्भ में ब्रह्मा निवेदन करते हैं—"भगवन् ! आपके अतिरिक्त संसार में कोई भी वस्तु अधिगम योग्य नहीं है। जिन वस्तुओं की हमें प्रतीति हो रही है, वह प्रतीति माया के कारण क्षुब्ध हुए आपके ही अनेक रूपों पर आधारित है।[1] हे विश्वकल्याणमय ! मैं आपका उपासक हूं, मेरे हित के लिए ही ध्यान में मुझे आपने अपना रूप दिखलाया है।

संसारिक कष्ट से त्रस्त जीव माता के गर्भ में उस सच्चिदानन्द परम प्रभु से अपनी मुक्ति के लिए याचना करता है। सप्तधातुमय स्थूल शरीर से बंधा हुआ वह देहात्मदर्शी जीव अत्यन्त भयभीत होकर दीन वाणी से कृपा याचना करता हुआ हाथ जोड़कर उस प्रभु की स्तुति करता है—

तस्योपसन्नमवितुं जगदिच्छयात्त नानातनोर्भुवि चलच्चरणारविन्दम्।
सोऽहं व्रजामि शरणं ह्यकुतोभयं मे येनेदृशी गतिरदर्श्यसतोनुरूपा ॥[2]

ग्राह के द्वारा ग्रसित गजेन्द्र निर्विशेष प्रभु के चरणों में अपनी स्तुत्यांजलि अर्पित करता है। गजेन्द्र ने बिना किसी भेद-भाव से स्तुति की थी, इसलिए स्वयं अनौपाधिक प्रभु हरि ही आकर उसकी रक्षा करते हैं। प्राग्जन्मानुशिक्षित गजेन्द्र परेश की स्तुति करता है—

ॐ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम्।
पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि ॥[3]

२. विष्णु एवं तदवतार विषयक स्तुतियां

श्रीमद्भागवत में विष्णु एवं उनके अवतार राम, कृष्ण, कूर्म, नृसिंह, कपिल, वाराह नर-नारायण, हयग्रीव, मत्स्य आदि देवों की स्तुतियां संग्रथित हैं। सबसे ज्यादा कृष्ण विषयक स्तुतियां हैं। उन स्तुतियों में श्रीकृष्ण के विभिन्न रूपों का प्रतिपादन किया गया है।

३. अन्य देवों से सम्बन्धित स्तुतियां

श्रीमद्भागवतीय भक्तों ने विभिन्न देवों की भिन्न अवसरों पर स्तुतियां की हैं। शिव, ब्रह्मा, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, जलदेवता, त्रिदेव, पृथु, संकर्षण आदि देवों से सम्बन्धित स्तुतियां भी हैं। दक्ष प्रजापति पुनर्जीवन के बाद गद्गद् स्वर से भगवान् शिव की स्तुति करते हैं।

मृष्यानुग्रह अहो भवता कृतो मे दण्डस्त्वया मयि भृतो यदपि प्रलब्धः।
न ब्रह्मबन्धुषु च वां भगवन्नवज्ञा तुभ्यं हरेश्च कृत एव धृतव्रतेषु ॥[4]

---

१. श्रीमद्भागवत ३.९.१
२. तत्रैव ३.३१.१२
३. तत्रैव ३.३.२
४. तत्रैव ४.७.१३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वादश स्कन्ध में साक्षात् उमा-शिव को देखकर बालर्षि मार्कण्डेय इस प्रकार स्तुति करते हैं—

नमः शिवाय शान्ताय सत्त्वाय प्रमृडाय च।
रजोजुषेऽप्यघोराय नमस्तुभ्यं तमोजुषे ॥[1]

कौरवगण, चित्रकेतु, नारद तथा यमुना आदि भक्त विभिन्न स्थलों पर संकर्षण देव की स्तुति करते हैं। जब क्रोधाभिभूत बलरामजी कौरवों की नगरी हस्तिनापुर को हल से खींचकर गंगा की ओर ले जाने लगे तब डर-कर कौरवों ने बलराम की उपासना की—

राम रामाखिलाधार प्रभावं न विदाम ते।
मूढानां नः कुबुद्धीनां क्षन्तुमर्हस्यतिक्रमम् ॥[2]

२. कामना की दृष्टि से स्तुतियों का वर्गीकरण

कामना की दृष्टि से स्तुतियों के दो भेद होते हैं—निष्काम और सकाम। निष्काम स्तुतियों में किसी प्रकार की सांसारिक कामना नहीं होती है। इस प्रकार की स्तुतियां केवल प्रभु के नाम, गुण, लीला आदि के प्रति-पादक तथा उन्हीं के चरणों में समर्पित होती है। ऐसी स्तुतियों में भक्त मुक्ति और आत्मसाक्षात्कार का भी निषेध करते हैं—हमें सत्संग, लीला के श्रवण-कीर्त्तन और भक्त के चरित्र में इतना आनन्द आता है कि उतना स्वरूप स्थिति में भी नहीं आता। हमें हजारों कान दो, जिससे हम तुम्हारी कथा का श्रवण कर सकें—

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिद् न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः ॥[3]

इन सभी स्तुतियों से आत्मशुद्धि होती है, भगवत्तत्त्व का ज्ञान होता है, साधन में और भगवान् के स्वरूप में निष्ठा होती है। ऐसी स्तुतियों को दो भागों में रख सकते हैं—

(१) तत्त्वज्ञान प्रधान स्तुतियां
(२) साधन प्रधान स्तुतियां।

तत्त्वज्ञान प्रधान स्तुतियों में तत्त्ववर्णन की ही प्रमुखता होती है। तत्त्ववर्णन प्रधान स्तुतियां सारे जगत् का, वाणी का, विचारों का, स्तुति करने वालों का, भगवान् में पर्यवसान करके स्वयं भी उसी में पर्यवसित हो जाती हैं। स्तुतियां उस प्रभु के गुणों का वर्णन करते समय परमात्मा के अतिरिक्त वस्तुओं का निषेध करते-करते अन्त में अपना भी निषेध कर प्रभु

१. श्रीमद्भागवत १२.१०.१७
२. तत्रैव १०.६८.४४
३. तत्रैव ८.२०.२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में ही अपनी सत्ता खोकर सफल हो जाती हैं।[1] वेद स्तुति और भीष्म स्तुति तत्त्वज्ञान प्रधान हैं।

साधन प्रधान स्तुतियों में सम्पूर्ण वैभव, विलास को त्यागकर केवल उपास्य के चरणों में अखण्ड रति की ही कामना रहती है। पृथु, प्रह्लाद, ध्रुव, अम्बरीष, ब्रह्मा, वृत्रासुर, नल-कुवर मणिग्रीव आदि की स्तुतियां साधन प्रधान है। भक्त योगसिद्धि एवं अपुनर्भव का भी त्यागकर केवल श्रीकृष्ण भक्ति की ही कामना करता है—

न नाक पृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धिरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे॥[2]

भागवतभक्त एकमात्र प्रभु की ही भक्ति को अपना सर्वस्व समझते हैं। सारी कामनाओं को त्याग देते हैं, यहां तक कि हस्तगत मुक्ति की भी उपेक्षा कर देते हैं।[3] भक्त प्रह्लाद ब्रह्मलोक की आयु, लक्ष्मी, ऐश्वर्य, इन्द्रियभोग को त्यागकर केवल प्रभु के दासों की सन्निधि चाहता है—

तस्मादभूस्तनुभृतामहमाशिषो ञ
आयुः श्रियं विभवमैन्द्रियमा विरिञ्चात्।
नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण
कालात्मनोपनय मां निज भृत्यपार्श्वम्॥[4]

नल-कुवर मणिग्रीव अपना सब कुछ समर्पित कर यही चाहते हैं कि वाणी प्रभु के गुण कथन में, कान कथा के श्रवण में, हाथ प्रभु की सेवा में लगे रहें।[5]

सकाम स्तुतियां कामना प्रधान होती हैं। किसी प्रकार की सांसारिक कामना से प्रेरित होकर भक्तगण अपने उपास्य या प्रभु की स्तुति करते हैं। कारागार से मुक्ति के लिए, दुःखशान्ति के लिए, क्रोध निवारणार्थ, पुत्रादि की प्राप्ति के लिए स्तुतियां की जाती हैं। ऐसी स्तुतियों का श्रीमद्भागवत में बाहुल्य है।

सकाम स्तुतियों को चार वर्गों में विभाजित कर सकते हैं

१. कारागार से मुक्ति के लिए

दुष्टों के द्वारा कारागार में निबद्ध भक्त अपनी मुक्ति के लिए प्रभु की उपासना करते हैं। विधर्मी जरासंध के कारागार में बंधे हुए २० हजार

१. श्रीमद्भागवत वेदस्तुति १०.८७.४१
२. तत्रैव ६.११.२५
३. तत्रैव ५.१७.३
४. तत्रैव ७.९.२४
५. तत्रैव १०.१०.३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजा गण अपना दूत भेजकर प्रभु के चरणों में कारागार से मुक्ति के लिए याचना करते हैं। हे प्रभो ! जैसे सिंह भेड़ों को पकड़ लेते हैं, उसी प्रकार दुष्ट जरासंध ने हम लोगों को पकड़ रखा है। हे नाथ ! आपने उसे १७ बार पराजित किया लेकिन लीला विस्तार के लिए १८वीं बार खुद पराजित हो गये। इसलिए हे भक्तवत्सल उसके गर्व ने अत्यन्त प्रचण्ड रूप धारण कर लिया है। हे अजित ! वह यह जानकर हम लोगों को और सताता है कि हम लोग आपके भक्त हैं, आपकी प्रजा हैं। अब आपकी जैसी इच्छा हो वैसा कीजिए।[1]

मातृगर्भरूप कारागार में फंसा जीव वर्तमान में प्राप्त तथा भविष्य में प्राप्तव्य सांसारिक दुर्दशा का अनुमान कर घबरा जाता है। वह उस परमात्मन् के चरण-शरण होता है जिसने उसे ऐसा कष्ट दिया है—विण्मूत्र कुप में डाला है। कष्ट से घबराकर वह जीव सर्वतोभावेन प्रभु के चरणों में अपने-आप को समर्पित कर देता है।[2]

२. क्रोध शान्ति के लिए

भगवान् अथवा किसी नृप विशेष के क्रोध शमन के लिए भी कतिपय स्तुतियां विभिन्न भक्तों द्वारा अपने उपास्य के प्रति समर्पित की गई हैं। जगज्जेता हिरण्यकशिपु के बध के बाद नरसिंह भगवान् की क्रोधाग्नि इतनी भड़क उठी थी मानो वे त्रैलोक्य को भी जला डालेंगे। देव-गण स्तुति करते रह गये तथापि प्रभु शान्त नहीं हुए। तब देव लोग प्रभु के अनन्य भक्त बालक प्रह्लाद को नरसिंह की उपासना में भेज देते हैं। प्रह्लाद की स्तुति से प्रभु गद्गद् हो गये।[3] कौरवों की उदण्डता से कुपित संकर्षण जब हस्तिनापुर को हल से कर्षण कर गंगा की ओर ले जाने लगे तो डरकर कौरवों ने उनकी प्रसन्नता के लिए स्तुति की।[4]

राजा पृथु की प्रसन्नता के लिए पृथिवी, शिव की कोप-शान्ति के लिए देवगण और दक्ष प्रजापति, सुदर्शन चक्र की शान्ति के लिए अम्बरीष स्तुति करते हैं। भक्तरक्षण में नियुक्त सुदर्शन चक्र ऋषि दुर्वासा के मस्तक भंजन के लिए उनकी ओर उन्मुख होता है। डर के मारे दुर्वासा त्रैलोक्य में भागते चले लेकिन उनका कोई रक्षक नहीं मिला। अन्त में अम्बरीष के शरण-प्रपन्न होते हैं। भक्त प्रवर अम्बरीष सुदर्शन शान्ति के लिए इस प्रकार स्तुति करते हैं—

---

१. श्रीमद्भागवत १०.७०.३०
२. तत्रैव ३.३१.१२
३. तत्रैव ७।९।८-५०
४. तत्रैव १०।६८।४८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्वमग्निर्भगवान् सूर्यस्त्वं सोमो ज्योतिषां पतिः ।
त्वमापस्त्वं क्षितिर्व्योम वायुर्मात्रेन्द्रियाणि च ॥[1]

३. कष्ट से मुक्ति के लिए

सांसारिक कष्टों से निवृत्ति के लिए श्रीमद्भागवत में कतिपय स्तुतियां समाहित हैं। जब तक जीव-विशेष की सांसारिक शक्ति काम आती है तब तक उसे प्रभु की याद नहीं आती। जब शक्ति पूर्णतः क्षीण हो जाती है, प्राणसंकट उपस्थित हो जाता है, तब भक्त अपने उपास्य को, प्रभु को पुकारता है। ग्राह से ग्रसित गजेन्द्र निर्विशेष प्रभु की उपासना करता है, अपनी रक्षा की याचना करता है उस आत्ममूल से---

यः स्वात्मनीदं निज मायया र्पितं, क्वचिद्विभातं क्वच तत्तिरोहितम् ।
अविद्धदृक् साक्ष्युभयं तदीक्षते, स आत्ममूलोवतु मां परात्परः ॥[2]

द्रौणि के ब्रह्मास्त्र से त्रस्त अर्जुन और उत्तरा प्रथम स्कंध में स्तुति करते हैं। सम्पूर्ण धरा को अश्वत्थामा ने "अपाण्डवमिदंकर्तुम्" की प्रतिज्ञा की है। वह पाण्डव के नवजात शिशुओं एवं स्त्रीगर्भों को विनष्ट कर चुका था, सिर्फ एक ही उत्तरा का गर्भ बचा था, जिसमें महान् भागवत भक्त परीक्षित् संवर्द्धित हो रहे थे, उसे भी नष्ट करने के लिए ब्रह्मास्त्र का संधान कर दिया। उत्तरा के शब्दों में---हे प्रभो ! मेरी रक्षा करो। प्राणसंकट उपस्थित होने पर संसार में ऐसा कौन प्राणी है, जो जीव मात्र को अभयदान दे सके ?

पाहि-पाहि महायोगिन् देव-देव जगत्पते ।
नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम् ॥[3]

भौमासुर के बध के अनन्तर उसके पुत्र भयभीत भगदत्त की रक्षा के लिए पृथिवी श्रीकृष्ण की नुति करती है।[4] हिरण्यकशिपु के भय से अपनी रक्षा के लिए प्रह्लाद जगन्नियन्ता विष्णु की स्तुति करता है।

४. सांसारिक अभ्युदय की कामना से

सांसारिक अभ्युदय, पुत्र-पौत्र, धन-सम्पत्ति, मान-मर्यादा, सैन्यशक्ति आदि की वृद्धि के लिए कतिपय भक्त अपने स्तव्य की उपासना करते हैं। वृत्रासुर के बध के लिए या राक्षसों पर विजय के लिए देवराज इन्द्र पुरोहित विश्वरूप से उपदिष्ट होकर "**नारायणवर्म**" का पाठ करते हैं।[5] आज भी

१. श्रीमद्भागवत ९।५।३
२. तत्रैव ८.३.४
३. तत्रैव १.८.९
४. तत्रैव १०.५९.३
५. तत्रैव ६.८.४-४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस कलिकाल में नारायण-कवच अद्भुत शक्ति से पूर्ण, संकट से उबारने वाला एवं विजय दिलाने वाला है। नामरूपात्मक स्तोत्र का एक श्लोक, जिसमें हरि से रक्षा की कामना की गई है--

ॐ हरिर्विदध्यान्मम सर्वरक्षां न्यस्तांघ्रिपद्मः पतगेन्द्रपृष्ठे।
दरारिचर्मासिगदेषु चाप पाशान् दधानोऽष्टगुणोऽष्टबाहुः॥[1]

पुंसवनव्रत के अवसर पर व्रतानुष्ठानकर्त्री स्त्रियां अपने पति के उत्थान के लिए विष्णु की एवं संतान की इच्छा से अदिति भगवान् कश्यप की उपासना करती हैं। विद्याधरगण अपने उत्थान, सांसारिक मान-मर्यादा की कामना से प्रभु विष्णु की आराधना करते हैं। सुन्दर पत्नि के लिए कर्दम, (३.२१) प्रजा के विकास के लिए दक्ष प्रजापति (६.४) भगवान् विष्णु की स्तुति करते हैं।

५. भावना के आधार पर स्तुतियों का वर्गीकरण

विभिन्न भावनाओं से प्रेरित होकर भागवतीय भक्त प्रभु की स्तुति करते हैं। कोई सख्य भाव से, कोई दास्य भाव से तो कोई वात्सल्य भाव से, कोई तत्त्वज्ञान की भावना से प्रभु की नुति करता है तो कोई केवल पादपंकज की सेवा की इच्छा से (दास्य भाव) अपने प्रियतम की ईडा करता है।

(क) ज्ञानी भक्तों की स्तुतियां

श्रीमद्भागवत में कुछ ऐसी स्तुतियां भी है जो तत्त्व वर्णन की भावना से की गई है। नारद, शुकदेव, व्यास, मार्कण्डेय आदि ऋषियों द्वारा कृत स्तुतियां इस श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं।

(ख) पादपंकजेच्छुक भक्तों की स्तुतियां या दास्य भाव से युक्त स्तुतियां

श्रीमद्भागवत में बहुत अधिक ऐसी स्तुतियां है जिसमें केवल दास्य भाव की प्रधानता है। भक्त सम्पूर्ण वैभव विलास को त्यागकर अपने प्रियतम भगवान् के चरण-रज में ही निवास करना चाहता है। एकाग्र मन से सब कुछ समर्पित कर, सारे इन्द्रियों को प्रभु में स्थित कर, केवल उनके दासों का दास होना चाहता है। भक्तराज वृत्रासुर की प्रयाणिक वेला में की गई स्तुति का एक श्लोक द्रष्टव्य है—

अहं हरेः तव पादैकमूलदासानुदासो भवितास्मि भूयः।
मनः स्मरेतासुपतेः गुणांस्ते गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः॥[2]

---

१. श्रीमद्भागवत ६.८.१२
२. तत्रैव ६.११.२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किम्पुरुष वर्ष में भक्तराज हनुमान् भगवानादिपुरुष लक्ष्मणाग्रज राम के चरणों में ही अखंड रति की कामना करते हैं।[1] प्रह्लाद (७.९), अम्बरीष (९.५), अंशुमान्, बलि, पृथु, नल-कुबर-मणिग्रीव की स्तुतियां दास्य भाव से युक्त हैं। सम्पूर्ण संसार के आधिपत्य, स्वर्ग-सुख, एवं हस्तगत मुक्ति की भी उपेक्षा कर ये भक्त केवल प्रभु के पादपंकज में ही निवास करना चाहते हैं। नलकुबर-मणिग्रीव के उद्गार—

वाणी गुणानुकथने श्रवणं कथायां हस्तौ च कर्मसु मनस्तवपादयोर्नः।
स्मृत्यां शिरस्तव निवास जगत्प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥[2]

(ग) सख्यभाव प्रधान स्तुतियां

कतिपय स्तुतियां उपास्य के प्रति सखा भाव से निवेदित की गई हैं। अक्रूर, सुदामा, उद्धव, सिद्धपाण्डवगण और अर्जुनादि सखा भाव से प्रेरित होकर उनकी स्तुति करते हैं।

(घ) प्रेम भाव प्रधान स्तुतियां

यही भाव भक्ति साहित्य में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इसी भाव में निमज्जित होकर आदृत्या गोपियां अपने प्रियतम के चरणों में अनन्यभाव से सब कुछ समर्पित कर देती हैं। पति-भाई, पिता एवं धन-दौलत पर लात मारकर गोप बधुएं प्रभु के चरणों में सर्वतोभावेन उपस्थित हो जाती हैं। एक क्षण भी गोप बालाएं अपने प्रियतम कृष्ण के बिना स्थिति धारण नहीं कर सकती है। यही भक्ति की सर्वश्रेष्ठ परिभाषा है —तदर्पिताखिलाचारिता तद्विस्मरणे परम व्याकुलतेति।[3] इस प्रकार की स्तुतियों में भक्त मानापमान, लाभ-हानि, जय-पराजय, सुख-दुःख आदि का विचार न करके, आसक्ति और फल की इच्छा छोड़कर शरीर और संसार में अपने लिए अहंता-ममता रहित होकर एकमात्र परमप्रियतम भगवान् को ही परम आश्रय, परमगति परम सुहृद समझकर, अनन्यभाव से, अत्यन्त श्रद्धा के साथ प्रेमपूर्वक निरन्तर तैल धारावत् उनके नाम, गुण, प्रभाव और स्वरूप का चिन्तन करते हुए उन्हीं को सुख पहुंचाने के लिए स्वार्थ से रहित होकर उन्हीं के चरणों में समर्पण कर देते हैं अपने निज का, सर्वात्मना।

(ङ) उपकृत होकर की गई स्तुतियां

कुछ ऐसी स्तुतियां भी हैं जो प्रभु के द्वारा समय-समय पर किए गये उपकारों से उपकृत होकर की गई है। प्रलयकाल में रक्षा करने के उपकार

१. श्रीमद्भागवत ५.१९.८
२. तत्रैव १०.१०.३८
३. नारद भक्ति सूत्र १९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से महाराज मनु मत्स्यावतार की (५।१८) अर्यमा कुर्मावतार की (५।१८) स्तुति करते हैं। कामधेनु (१०।२७) नलकुबरमणिग्रीव (१०।१०) राजागण (१०।७३) सुदामा माली (१०।४१) आदि भक्त भगवान् कृष्ण द्वारा उपकृत होकर उनकी स्तुति करते हैं। भगवान् कृष्ण के द्वारा समय-समय पर अपने पुत्रों की रक्षा किए जाने के कारण भक्तिमती कुन्ती उनकी स्तुति करती है।[1] वह केवल विपत्तियों की ही कामना करती है क्योंकि विपत्ति में ही प्रभु के दर्शन होते हैं, जो मुक्ति का हेतु है—

विपदः सन्तु नः शश्वदत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत् स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥[2]

प्रभु के आगमन से सुदामा माली गद्गद् कण्ठ से श्रीकृष्ण-बलराम की स्तुति करता है—प्रभो! आप दोनों के शुभागमन से हमारा जन्म सफल हो गया। हमारा कुल पवित्र हो गया। आज हम पितर, ऋषि एवं देवताओं के ऋण से मुक्त हो गये। वे हम पर अब परम संतुष्ट हैं।[3]

(च) कामक्रोधादिभाव से युक्त होकर की गई स्तुतियां

कुब्जा, पुतना और हिरण्यकशिपु आदि कामादि से युक्त होकर प्रभु की उपासना करते हैं। श्रीकृष्ण के स्पर्श से रूपवती नवयौवन को प्राप्त कुब्जा कामासक्त हो प्रभु की उपासना करती है। कुब्जा के शब्दों में वीर शिरोमणे! आइए घर चलें। अब मैं आपको यहां नहीं छोड़ सकती क्योंकि आपने मेरे चित्त को मथ डाला है। पुरुषोत्तम मुझ दासी पर प्रसन्न होइए।[4]

(छ) आर्तभाव प्रधान स्तुतियां

श्रीमद्भागवत में आर्तभाव प्रधान स्तुतियों की बहुलता है। विभिन्न विपत्तियों में फसने पर, प्राण संकट उपस्थित होने पर भक्त अपने प्रभु से रक्षा की याचना करता है। द्रौण्यास्त्र से भयभीत अर्जुन (१।७) और उत्तरा (१।८) संसार के भय से त्रस्त जीव (३।३१) राक्षसों से त्रसित देवगण (३।१५), (६।९) ब्रह्मा (८।५) आदि प्रभु की स्तुति करते हैं। ग्राह से विपाटित गजेन्द्र प्राक्तन जन्म के संस्कारवशात् निर्विशेष प्रभु की उपासना करता है।[5] विमुक्त मुनिगण जिसके पादपंकजों के दर्शन की लालसा रखते हैं वे ही प्रभु मेरे गति हों—

---

१. श्रीमद्भागवत १।८।१८-४३
२. तत्रैव १.८.२५
३. तत्रैव १०.४.४५
४. तत्रैव १०।४२।१०
५. तत्रैव ८।३।२-२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिदृक्षवो यस्य पदं सुमङ्गलं विमुक्तसङ्गा मुनयः सुसाधवः ।
चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वने भूतात्मभूताः सुहृदः स मे गतिः ॥[1]

यमुना जल को विषाक्त करने वाले कालिय-नाग का जब प्रभु मर्दन करने लगे तब नाग पत्नियों ने अपने सुहाग की याचना की—शान्तात्मन् ! स्वामी को एक बार अपनी प्रजा का अपराध सह लेना चाहिए। यह मूढ़ है, आपको पहचानता नहीं, इसलिए आप इसको क्षमा कर दीजिए। अबलाओं पर दया कीजिए हमारे प्राण स्वरूप पति को छोड़ दीजिए।[2] गोपियों के गर्वभंजन के लिए भक्ताहंभजक भगवान् कृष्ण अन्तर्धान हो गये। रूप गर्विता गोपियों को जब यह भाण हुआ तो व्याकुल होकर भगवान् की स्तुति करने लगी—

जयति तेऽधिकं जन्मनाव्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ।
दयित दृश्यतां दिशु तावकाः त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥[3]

६. समय के आधार पर—इस संवर्ग में स्तुतियों का त्रिविधा वर्गीकरण किया गया है—

दुःखावसान होने पर, सुखावसान होने पर एवं प्राण प्रयाणावसर पर की गई स्तुतियां।

(क) दुखावसान होने पर की गई स्तुतियां

दुःख के अन्त होने पर की जाने वाली स्तुतियों की बहुलता है। प्रभु की दया एवं उनकी भक्तवत्सलता से भक्त गम्भीर कष्ट से मुक्त हो जाता है, तब उसके मुख से अनायास अपने प्रभु के चरणों में हृदय के भाव समर्पित हो जाते हैं। दुःखावसान होने पर राजरानी कुन्ती अपने सम्बन्धी, सर्वलोक-नियामक पद्मनाभ की स्तुति करती है—हे प्रभो ! आपने बार-बार कष्टों से उबारा है —

विषान्महाग्नेः पुरुषाददर्शनादसत्सभाया वनवासकृच्छ्रतः ।
मृधे-मृधेऽनेकमहारथास्त्रतो द्रौण्यस्त्रतश्चास्म हरेऽभिरक्षिताः ॥[4]

इसी प्रकार अन्य भक्त भी दुःखावसान होने पर प्रभु की उपासना करते हैं – देवगण (३।१९) मरीच्यादि (३।१३), सनकादि (३।१६) भगवान् वाराह की, सत्यव्रत (४।२४) भगवान् मत्स्य की, देवकी वसुदेव (१०।१३), नलकुबरमणिग्रीव (१०।१०) कामधेनु (१०।२७), राजागण (१०।७३), आदि

१. श्रीमद्भागवत ८।३।७
२. तत्रैव १०।१६।५१-५२
३. तत्रैव १०।३।१
४. तत्रैव १।८।२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भक्त भगवान् कृष्ण की स्तुति करते हैं। एकादश स्कन्ध में कामदेव नर-नारायण की स्तुति करता है। ऋषि मार्कण्डेय (१२।१०) भगवान् शंकर की स्तुति करते हैं—

अहो ईश्वरलीलेयं दुर्विभाव्या शरीरिणाम्।
यन्नमन्तीशितव्यानि स्तुवन्ति जगदीश्वराः॥[1]

(क) सुखावसान होने पर

सुख के अन्त होने पर श्रीमद्भागवत में विभिन्न देवों की स्तुतियां की गई हैं। अपने ऊपर आये विपत्तियों का सामना करने के लिए भक्त भगवान् की स्तुति करता है। इस प्रकार अनेकशः स्तुतियां श्रीमद्भागवत में विद्यमान हैं। अर्जुन (१।७), उत्तरा (१।८), जीव (३।३१), देवगण (३।१५, ६।९), गजेन्द्र (८।३), प्रजापतिगण (८।७), गोपियां (१०।२९), नागपत्नियां (१०।१६) राजागण (१०।७०), आदि भक्त सुखावसान होने पर यानि संकट काल उपस्थित होने पर अपनी रक्षा के लिए अपने प्रियतम प्रभु के चरणों में शरण ग्रहण करते हैं।

(ग) प्राण प्रयाणावसर पर

महाप्रास्थानिक वेला में पितामह भीष्म (१।९) श्रीकृष्ण की और भक्तराजवृत्रासुर (६।११), भगवान् विष्णु की स्तुति करते हैं। महाभारत के कराल समर में पितामह भीष्म अर्जुन के बाणों से विद्ध होकर धराशायी हो जाते हैं। जब उत्तरायण सूर्य का आगमन होता है, अन्तकाल में पितामह भीष्म अपने सामने समुपस्थित साक्षात् परमेश्वर कृष्ण की स्तुति करने लगते हैं। भीष्म की सारी वृत्तियां प्रभु के चरणों में समर्पित हो चुकी है—

इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा भगवति सात्वतपुङ्गवे विभूम्नि।
स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः॥[2]

भीष्म त्रिभुवन कमन, तमाल वर्ण श्रीकृष्ण में अनवद्यारति की कामना करते हैं—

त्रिभुवन कमनं तमालवर्णं रविकरगौरवाम्बरं दधाने।
वपुरलककुलावृत ननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या॥[3]

अन्तकाल समुपस्थित जानकर राक्षसराज वृत्रासुर सब कुछ त्यागकर प्रभु के चरणों में अपने को समर्पित कर देता है। दासों के दास बनने की कामना करता है।[4] वह प्रभु से निवेदित करता है—

---

१. श्रीमद्भागवत १२.१०.२८
२. तत्रैव १।९।३२
३. तत्रैव १।९।३३
४. तत्रैव ६।११।२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः ।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥[1]

भक्ति के सारे तत्त्व, अलौकिक कविकर्म एवं काव्य के गुण समवेत रूप में इस एक ही श्लोक में समाहित हो गये हैं। भक्तराज वृत्रासुर की सम्पूर्ण समर्पण की भावना अत्यन्त उदात्त है।

७. भक्तों की सामाजिक स्थिति के आधार पर स्तुतियों का वर्गीकरण

भक्तों की सामाजिक स्थिति के आधार पर स्तुतियों का दो प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है—

(क) सर्वस्वत्यागी भक्तों द्वारा गायी गई स्तुतियां

श्रीमद्भागवत परमहंसों की संहिता है। बहुत से ऐसे भक्त हैं जो संसार के सारे बंधनों से ऊपर उठ चुके हैं, केवल भक्ति लोकमंगल एवं संसार में फंसे जीवों के उद्धार के लिए भगवान् के गुणों को गा-गाकर सर्वत्र प्रेम की धारा प्रवाहित करते चलते हैं। ऐसे गुणी-गुणज्ञ भक्तों द्वारा कृत स्तुतियां भी श्रीमद्भागवत में समाहित हैं। ऐसे भक्तों को न तो कोई कामना होती है न कोई इच्छा—केवल भगवान् के चरणों में ही निवास करते हैं। शरीर सम्बन्ध की दृष्टि से इनका कोई नहीं होता है अन्यथा ये संपूर्ण धरती को ही अपना परिवार मानते हैं। शुकदेव, व्यास, मार्कण्डेय और नारद इसी कोटी के भक्त हैं। सर्वस्वत्यागी भक्तराज शुकदेव श्रीमद्भागवत में तीन बार स्तुति करते हैं। प्रथम बार द्वितीय स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय में भगवत्स्तुति, षष्ठ स्कन्ध के उन्निसवें अध्याय में लक्ष्मीनारायण की तथा वहीं पर भगवान् विष्णु की स्तुति करते हैं। जब राजा परीक्षित ने प्रभु के गुणों का वर्णन करने के लिए प्रार्थना की—तब श्रील शुकदेव गोस्वामी परात्पर ब्रह्म की इस प्रकार गुणात्मक स्तुति करने लगे—

नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे सदुद्भवस्थाननिरोधलीलया ।
गृहीतशक्तित्रितयाय देहिनामन्तर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने ॥[2]

ब्रह्मर्षि नारद छः बार स्तुति करते हैं। एक बार नर-नारायण की (५।१९), दो बार संकर्षण की (५।२५), (६।१६) एवं तीन बार भगवान् श्रीकृष्ण, (१०।३७,६९,७०) की स्तुति करते हैं। ब्रह्मर्षि नारद तुम्बुरुगंधर्व के साथ ब्रह्माजी की सभा में भगवान् संकर्षण के अद्भुत गुणों का गायन

१. श्रीमद्भागवत ६।११।२६
२. तत्रैव २।४।१२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते हैं।[1] ऋषि मार्कण्डेय दो बार स्तुति करते हैं। प्रथम बार (१२।८) भगवान् विष्णु की एवं द्वितीय बार (१२।१०) भगवान् शिव की। भगवान् शिव की स्तुति करते हुए ऋषि मार्कण्डेय कहते हैं---

नमः शिवाय शान्ताय सत्त्वाय प्रमृडाय च।
रजोजुषेऽप्यघोराय नमस्तुभ्यं तमोजुषे॥[2]

(ख) गार्हस्थ्य भक्तों द्वारा कृत स्तुतियां

श्रीमद्भागवत में बहुत से भक्त गार्हस्थ्य धर्म का अवलम्बन करते हुए प्रभु की उपासना करते हैं। इन गृहस्थ भक्तों में कुछ तो राजकुलोत्पन्न हैं तो कुछ सामान्य कुलोत्पन्न। अतएव गार्हस्थ्य भक्तों द्वारा कृत स्तुतियों को दो कोटियों में रख सकते हैं---

१. राजकुलोत्पन्न भक्तों द्वारा कृत स्तुतियां

श्रीमद्भागवतीय राजकुलोत्पन्न भक्त भौतिक भोगों से सर्वथा अलग रहकर भगवान् के चरणों में ही अखण्डरति की कामना करते हैं। भीष्म, अर्जुन, उत्तरा, कुन्ती, परीक्षित्, रन्तिदेव, पृथु नृग, वेन, रहुगण और बहुलाश्वादि भक्त विभिन्न अवसरों पर भगवान् की स्तुति करते हैं। अर्जुन, उत्तरा प्राण संकट उपस्थित होने पर, कुन्ती और नृग उपकृत होकर तथा यज्ञशाला में राजा पृथु भगवान् की स्तुति करते हैं। पृथ्वी का सम्राट् वैसा कुछ भी नहीं चाहता जहां भगवान् के चरणरज की प्राप्ति न हो सके---

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिद् न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः।[3]

२. सामान्य कुलोत्पन्न भक्तों द्वारा कृत स्तुतियां

इस प्रकार की स्तुतियों को पुनः दो भागों में विभाजित किया गया है---

(अ) उच्च कुलोत्पन्न भक्तों द्वारा कृत स्तुतियां

भागवत में बहुत से उच्चकुलोत्पन्न ब्राह्मण और क्षत्रिय भक्त परम प्रभु भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं। ब्राह्मण कुलोत्पन्न भक्तों द्वारा कृत स्तुतियों में---श्रुतदेव (१०।८६) कृत कृष्ण स्तुति, वृत्रासुर (६।११) कृत विष्णु स्तुति, याज्ञवल्क्य (१२।६) कृत आदित्य स्तुति एवं कश्यप कृत भगवत्स्तुति प्रधान है। मिथिला के गृहस्थ ब्राह्मण श्रुतदेव भगवान् श्रीकृष्ण की इस प्रकार स्तुति करते हैं---

---

१. श्रीमद्भागवत ५।२५।१९-२३
२. तत्रैव १२।१०।१७
३. तत्रैव ४।२०।२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाद्य नो दर्शनं प्राप्तः परं परमपूरुषः ।
यर्हीदं शक्तिभिः सृष्ट्वा प्रविष्टोह्यात्मसत्तया ॥
यथा शयानः पुरुषो मनसैवात्ममायया ।
सृष्ट्वा लोकं परं स्वाप्नमनुविश्यावभासते ।।[1]

(अ) निम्नकुलोत्पन्न भक्तों द्वारा कृत स्तुतियां

बहुत से निम्नकुलोत्पन्न भक्त भगवान् के चरणों में अपने आप को समर्पित कर देते हैं। विदुर, सुदामा माली आदि भगवान् की स्तुति करते हैं। वह माली आज प्रभु का दर्शन कर धन्य धन्य हो गया। प्रभु से निवेदित करता है—प्रभो आपके शुभागमन से हमारा जन्म सफल हो गया, कुल पवित्र हो गया। आज हम पितर, ऋषि एवं देव ऋण से मुक्त हो गये।[2] और फिर आगे भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम की स्तुति करता है—

भवन्तौ किल विश्वस्य जगतः कारणं परम् ।
अवतीर्णाविहांशेन क्षेमाय च भवाय च ।।[3]

८. भक्तों की योनि के आधार पर स्तुतियों का वर्गीकरण

भक्त किस योनि-विशेष के हैं इस आधार पर स्तुतियों का त्रिविधा वर्गीकरण किया जा सकता है।

(क) देवयोनि में उत्पन्न भक्तों द्वारा कृत स्तुतियां

श्रीमद्भागवत में विभिन्न देव अपने अपने उपास्य की स्तुति करते हैं। अग्नि (४।७) कृत विष्णु स्तुति, अत्रि (४।१) कृत त्रिदेव स्तुति, इन्द्रकृत कृष्ण (१०।२७), नृसिंह (७।८) एवं विष्णु (४।७) स्तुति, देवगण कृत कृष्ण स्तुति (१।६) नरनारायण स्तुति (४।१) (११।४) भगवत्स्तुति (६।९), वाराह स्तुति (३।१९), विष्णु स्तुति (४।७), नारदकृत स्तुतियां, ब्रह्माकृत कृष्णस्तुति, (१०।४), नृसिंह स्तुति (७।८।१०), भगवत्स्तुति (२।९,३।९), एवं ८।५,६, १८) ब्रह्माशिवादिकृत भगवत्स्तुति (१०।२), रुद्र कृत नृसिंह स्तुति (७।८), वरुणकृत कृष्ण स्तुति (१०।२८), शब्दब्रह्माकृत विष्णुस्तुति (४।७) शिवकृत भगवत्स्तुति (५।१७) आदि प्रमुख हैं। जब भगवान् लोक कल्याणार्थ, धर्म-रक्षणार्थ देवकी के गर्भ में आते हैं तो सभी देवता, ऋषि, कंश के कारागार में जाकर गर्भस्थ प्रभु की स्तुति करते हैं।[4]

---

१. श्रीमद्भागवत १०।८६।४४-४५
२. तत्रैव १०।४१।४५
३. तत्रैव १०।४१।४६
४. तत्रैव १०।२।२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ख) मनुष्य योनि में उत्पन्न भक्तों द्वारा की गई स्तुतियां

उत्तरा, अर्जुन, कुन्ती, भीष्म, पृथु, अम्बरीष, उद्धव, कौरवगण, गोपीगण, देवकी-वसुदेव, राजागण, राजानुग आदि भक्तों द्वारा की गई स्तुतियां इस कोटी के अन्तर्गत आती हैं।

(ग) प्रकृति जगत् से सम्बद्ध भक्तों द्वारा की गई स्तुतियां

बहुत से प्राकृतिक पदार्थ यथा नदी, वनस्पति, नक्षत्र, ग्रह आदि भी विभिन्न अवसरों पर अपने उपास्य की स्तुति करते हैं। इस कोटि के अन्तर्गत अग्निकृत (४।७) विष्णुस्तुति, हंस पतंगादि चतुर्वर्णकृत सूर्य स्तुति (५।२०), गजेन्द्रकृत भगवत्स्तुति (८।३) नागगण कृत नृसिंह स्तुति (७।८) नागपत्नी कृत श्रीकृष्ण स्तुति (१०।१६) पृथ्वीकृत पृथु स्तुति (१०।५९), यमुनाकृत बलराम स्तुति (१०।६५) एवं सुरभिकृत कृष्ण स्तुति (१०।२) आदि प्रमुख हैं। भौमासुर के बध के बाद उसके पुत्र भगदन्त की रक्षा के लिए सर्वंसहा पृथिवी भगवान् श्रीकृष्ण की इस प्रकार स्तुति करती है—

नमस्ते देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधरः।
भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन् नमोऽस्तु ते॥[1]

बलराम के क्रोध से डरकर यमुना उनकी स्तुति करती है—लोकाभिराम बलराम महाबाहो! मैं आपका पराक्रम भूल गई थी। जगत्पति! अब मैं जान गयी कि आपके अंशभूत शेष जी इस सारे जगत् को धारण करते हैं। प्रमादवश किए गए मेरे अपराधों को हे भक्त वत्सल! क्षमा कीजिए, मुझे छोड़ दीजिए।[2] श्रीमद्भागवत में ज्वर स्तुति (१०।६३) अत्यन्त प्रसिद्ध है। वैष्णव ज्वर के तेज से डरकर माहेश्वर ज्वर प्रभु श्रीकृष्ण की स्तुति करता है :—

नमामि त्वानन्तशक्तिं परेशं सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्ति मात्रम्।
विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं यत्तद् ब्रह्म ब्रह्मलिङ्गं प्रशान्तम्॥[3]

भगवान् श्रीकृष्ण कालियनाग का जब दमन कर रहे थे तब नागपत्नियों ने अपने पति की रक्षा के लिए शरणागतवत्सल भगवान् की स्तुति की। प्रभो आपका यह अवतार ही दुष्टों को दण्ड देने वाला है, इसलिए इस अपराधी को दण्ड देना सर्वथा उचित है। आपकी दृष्टि में शत्रु और पुत्र का कोई भेद-भाव नहीं है। इसलिए जो अपराधी को आप दण्ड देते हैं, वह उसके पापों का प्रायश्चित्त कराने और उसका परम कल्याण करने के लिए ही है।[4]

---

१. श्रीमद्भागवत १०।५९।२५
२. तत्रैव १०।६६।२६-२७
३. तत्रैव १०।६३।२५
४. तत्रैव १०।१६।३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. श्लोकों की संख्या के आधार पर स्तुतियों का वर्गीकरण

श्लोकों की संख्या के आधार पर श्रीमद्भागवत की स्तुतियों को हमने चार कोटियों में विभक्त किया है—

(क) प्रथम कोटि

इस कोटि के अन्तर्गत उन स्तुतियों को समाहित किया गया है जिनमें एक से पांच श्लोक हैं। ऐसी स्तुतियों की बहुलता है। एक श्लोक वाली स्तुतियों की संख्या बहुत अधिक है। ४५ से भी अधिक स्थलों पर एक श्लोकात्मक स्तुतियां ग्रथित हैं। देवगण कृत स्तुति (३।१९) अग्निकृत (४।७), इन्द्र (४।७), ऋषि (४।७), गन्धर्व (४।७), यजमानी (४।७), वसुदेव (५।२०) कृत स्तुति आदि। इस प्रकार की स्तुतियां अधिकतर विभिन्न अवतारों के अवसर पर देव, ऋषि, यक्ष, मनुष्यादि भक्तों द्वारा की गयी है।

उत्तराकृत भगवत्स्तुति (१।८), अत्रिकृत एवं (४।१) सूत कृत स्तुति (११।३) आदि दो श्लोकों से युक्त है।

तीन श्लोकों से युक्त स्तुतियां— दक्षकृत शिव स्तुति (४।७), कामधेनुकृत कृष्ण स्तुति (१०।२७) जाम्यवान् (१०।५६) एवं करभाजन कृत कृष्ण स्तुति (११।५), कामदेव कृत नरनायण स्तुति (११।४) आदि हैं।

चार श्लोकों से युक्त स्तुतियां— नारद कृत-नरनारायण स्तुति (५।११), मनुकृतमत्स्यस्तुति (५।१८), अर्यमाकृत कूर्म स्तुति (५।१८), रहुगण कृत-भगवत् स्तुति (५।१८), वृत्रासुर कृत विष्णु स्तुति (६।११), शुकदेवोपदिष्ट लक्ष्मी नारायण स्तुति (६।१९), वरुणकृत कृष्ण स्तुति (१०।२) एवं सुदामा-मालीकृत कृष्णस्तुति (१०।४२) आदि।

पांच श्लोकों से युक्त स्तुतियों की भी बहुलता है। अर्जुनकृत कृष्ण स्तुति (१।७), देवहूति कृत कपिल स्तुति (३।२५), नारदकृत संकर्षण स्तुति (५।२५), हनुमान् कृत राम स्तुति (५।१९), पृथिवीकृत यज्ञ पुरुष की स्तुति (५।१८), भद्रश्रवाकृत हयग्रीवस्तुति (५।१८), अंशुमान् कृत कपिल स्तुति (९।८), कौरवगणकृत बलराम स्तुति (१०।६८), एवं उद्धव कृत कृष्ण स्तुति (११।६), इत्यादि पंचश्लोकात्मक स्तुतियां हैं।

(ख) द्वितीय कोटि

इस कोटि के अन्तर्गत छः से दश श्लोकों से युक्त स्तुतियों को रखा गया है। लक्ष्मीकृत भगवत् स्तुति (५।१८), राजागण कृत कृष्ण स्तुति (१०।७०), श्रुतदेव कृत कृष्ण स्तुति (१०।८६), एवं याज्ञवल्क्यकृत आदित्य स्तुति (११।६) आदि प्रमुख षडश्लोकात्मक स्तुतियां हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तश्लोकात्मक स्तुतियां दो हैं— प्रह्लाद कृत नृसिंह स्तुति (५।१८), और मार्कण्डेय कृत शंकर स्तुति (१२।१०), अष्टश्लोकात्मक स्तुतियों में कर्दमकृत भगवत्स्तुति (३।२१), देवगण कृत ब्रह्मा स्तुति (३।१५), नारदकृत संकर्षण स्तुति (६।१६), शिवकृत संकर्षण स्तुति (५।१८), सत्यव्रत कृत मत्स्य स्तुति (८।२४), अम्बरीषकृत सुदर्शन स्तुति (९।५) एवं देवकी कृत श्रीकृष्ण स्तुति (१०।८) आदि प्रमुख हैं। नवश्लोकात्मक स्तुतियों में पृथुकृत भगवत्स्तुति (४।२०) देवगणकृत नारायण स्तुति (६।९) एवं राजागण कृत कृष्णस्तुति आदि प्रमुख हैं।

दस श्लोकात्मक स्तुतियों में हस्तिनापुर के स्त्रियों द्वारा कृत कृष्णस्तुति (१।१०), जीवकृतभगवत्स्तुति (३।३१), सनकादि कृत भगवत्स्तुति (३।१६), इन्द्रकृत कृष्ण स्तुति (१०।२७), वसुदेवकृत (१०।३) एवं नलकुबर मणिग्रीव कृत कृष्णस्तुति (१०।१०) तथा मार्कण्डेय कृतिशिव स्तुति (१२।८) प्रमुख हैं।

(ग) तृतीय कोटि

इस कोटि के अन्तर्गत ११ से लेकर २० श्लोकात्मक स्तुतियों को रखा गया है। भीष्मस्तव (१।९) एवं अक्रूर कृतकृष्णस्तुति (१०।४८), एकादश श्लोकात्मक, शुकदेवकृत भगवत्स्तुति (२।४), मरीच्यादिकृत वाराह स्तुति (३।१३), ध्रुवकृत विष्णु स्तुति (४।९) एवं प्रजापतिकृत विष्णु स्तुति (६।४) आदि द्वादश श्लोकात्मक स्तुतियां हैं। चित्रकेतुकृत संकर्षण स्तुति (६।१६) एवं प्रजापति कृत शिव स्तुति (८।७) आदि पंचदश श्लोकात्मक हैं। देवगणकृत कृष्णस्तुति (१२।२) षोडश श्लोकात्मक, गोपी जनकृतकृष्णस्तुति (१०।३१) एवं ब्रह्माकृत भगवत्स्तुति (८।५) उन्नीस श्लोकात्मक हैं।

(घ) चतुर्थ कोटि

इस कोटि में २१ से लेकर ५० श्लोकों से युक्त स्तुतियों को रखा गया है। नागपत्नियों द्वारा कृतस्तुति (१०।१६) में २१ श्लोक सूतकृत कृष्ण स्तुति (११।११) में २३ श्लोक हैं। अक्रूर कृत भगवत्स्तुति (१०।४०) में तीस श्लोक एवं प्रह्लाद कृत नृसिंह स्तुति (७।९) में ४३ श्लोक हैं।

इस प्रकार उपास्य कामना, भावना, भक्तों की सामाजिक अवस्था आदि को दृष्टि में रखकर स्तुतियों का सात प्रकार से विभाजन किया गया।

प्रमुख स्तुतियों का वस्तु विश्लेषण

श्रीमद्भागवत में स्तुतियों का विशाल भण्डार समाहित है। विभिन्न वर्ग के भक्त विभिन्न अवसरों पर अपने उपास्य के प्रति स्तुति समर्पित करते हैं। स्कन्धानुसार कतिपय प्रमुख स्तुतियों का विश्लेषण एवं विवेचन का अवसर प्राप्त है —

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम स्कन्ध

प्रथम स्कन्ध में पांच स्तुतियां ग्रथित हैं। पांचों स्तुति के स्तुतिकर्त्ता अलग-अलग तथा अवस्थाएं भी अलग-अलग हैं लेकिन सबका स्तव्य एक मात्र भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। द्रौण्यास्त्र से भीत अर्जुन (१।७) और उत्तरा (१।८) अपनी रक्षा के लिए परमप्रभु श्रीकृष्ण की शरणागति को प्राप्त करते हैं। बुद्धिमती कुन्ती भगवान् श्रीकृष्ण के उपकारों से उपकृत होकर उनकी आराधना करती है। (१।८) प्राण-प्रयाणावसर में पितामह भीष्म मन इन्द्रिय और सारे कर्मों को भगवान् श्रीकृष्ण में स्थापित कर देते हैं। (१९) कृष्णागमन की बात सुनकर हस्तिनापुर की स्त्रियां अपने वार्त्तालाप क्रम में प्रभु के दिव्य चरित का गायन करती हैं।

कुन्तीकृत भगवत्स्तुति

आज पांडवों के परम हितैषी गोकुलनाथ भगवान् श्रीकृष्ण हस्तिनापुर से प्रस्थान कर रहे, ऐसी बात सुनकर एवं पूर्वकृत बहुविध उपकारों से उपकृत कुन्ती हाथ जोड़े हुए उस मार्ग पर आती है जिस मार्ग से उसके जन्म-जन्मान्तर के उपास्य भगवान् श्रीकृष्ण जा रहे हैं। महारानी कुन्ती को देखकर भगवान् श्रीकृष्ण रथ रोक देते हैं। तब कुन्ती के हृदय की संचित भावनाएं श्रीकृष्ण को पाकर शब्द के रूप में प्रस्फुटित हो जाती हैं—

नमस्ये पुरुषं त्वमाद्यमीश्वरं प्रकृतेः परम्।
अलक्ष्यं सर्वभूतानामन्तर्बहिरवस्थितम् ॥[1]

कुन्ती की भक्ति मर्यादा भक्ति है। मर्यादा भक्ति साधन भक्ति होती है और पुष्टि भक्ति साध्य। पहले मर्यादा भक्ति आती है तब प्रेमलक्षणा पुष्टि भक्ति। कुन्ती दास्यमिश्रित वात्सल्य भाव से प्रभु की स्तुति करती है। कुन्ती श्रीकृष्ण का मुख निहारती है – मेरे भाई के पुत्र हैं, तथा मेरे भगवान् हैं— यह दास्यभाव है। चरण दर्शन से तृप्ति नहीं हुई तो अब मुख देख रही है—

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिन।
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥[2]

कुन्ती श्रीकृष्ण द्वारा किए गये उपकारों को बार-बार याद करती है हृषिकेश! जैसे आपने दुष्ट कंस के द्वारा कैद की हुई और चिरकाल से शोकग्रस्त देवकी की रक्षा की थी वैसे ही मेरे पुत्रों को बार-बार विपत्तियों से बचाया है। आपहीं हमारे स्वामी हैं, आप सर्वशक्तिमान् हैं। श्रीकृष्ण! आपके द्वारा कृत उपकारों को कहां तक गिनाऊं—

१. श्रीमद्भागवत १.८.१८
२. तत्रैव १.८.२२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषान्महाग्नेः पुरुषादभक्षतसभायाः वनवासकृच्छ्रतः ।
मृधे-मृधेऽनेकमहारथास्त्रतो द्रौण्यस्त्रतश्चास्म हरेऽभिरक्षिता ॥[1]

कुन्ती नमस्कार से स्तुति प्रारम्भ करती है और नमस्कार से ही स्तुति का अन्त करती है। इस स्तुति में भगवान् श्रीकृष्ण के विभिन्न गुणों की चर्चा है। भगवान् सगुण भी हैं—निर्गुण भी। अपने सगे सम्बन्धी भाई, चाचा और भतीजा भी हैं और परात्पर ब्रह्म भी। उनका दर्शन ही भवबंधन से मुक्ति दिला सकता है, इसीलिए कुन्ती केवल विपत्तियों की ही कामना करती है क्योंकि विपत्ति में प्रभु के दर्शन होते हैं।

पितामह भीष्मकृत श्रीकृष्ण स्तुति

भक्तराज भीष्म के कल्याणार्थ भगवान् श्रीकृष्ण उनकी बाणशय्या के पास पधारते हैं। पितामह की यही इच्छा थी कि अन्त समय में परम प्रभु का दर्शन प्राप्त हो जाए। आज पितामह की महाप्रयाणिकवेला में सारे स्वजन श्रीकृष्ण भगवान् के साथ उपस्थित होते हैं। अपने सामने परम प्रभु को प्रत्यक्ष पाकर पितामह धन्य हो गए, जन्मजन्मान्तर की उनकी साधना आज सफल हो गयी। अपने मन, बुद्धि तथा इन्द्रिय को प्रभु में स्थापित कर स्वयं भी उन्हीं में स्थापित हो जाते हैं—"**समधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः ।**"[2]

पितामह भीष्म भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति निष्काम भावना से ओत-प्रोत होकर करते हैं। आज पितामह को केवल विजयसखा की चरणरति की ही आवश्यकता है। महाराज ! मैंने धर्म किया, यज्ञ किया, ब्रह्मचर्य का पालन किया, पिता की आज्ञा शिरोधार्य की और इन सब साधनों द्वारा बुद्धि को वितृष्ण बनाया। अब मैं अपनी बुद्धि आपके चरणों में समर्पित करता हूं। आप जब प्रकृति में विहार करते हैं तब यह सृष्टि चलती है।[3] आपका शरीर कितना सुन्दर है—

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवाम्बरं दधाने ।
वपुरलककुलावृतं ननाञ्जं विजयसखेरतिरस्तु मेऽनवद्या ॥[4]

युद्धकालीन छबि की याद आ रही है। पितामह कहते हैं—मुझे युद्ध के समय की उनकी वह विलक्षण छबि याद आती है। उनके मुख पर लहराते हुए घुंघराले बाल घोड़ों की टाप के धूल से मटमैले हो गये थे और पसीने के छोटे-छोटे स्वेद-कणों से युक्त मुख शोभायमान हो रहा था। मैं अपने तीखे बाणों से उनकी त्वचा को बींध रहा था। उन सुन्दर कवचमण्डित

१. श्रीमद्भागवत १.८.२३
२. तत्रैव १.९.४२
३. तत्रैव १.९.३२
४. तत्रैव १.९.३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति मेरा शरीर, अन्तःकरण और आत्मा समर्पित हो जाय।[1]

द्वितीय स्कन्ध

श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कन्ध में दो स्तुतियां उपन्यस्त हैं—शुकदेवकृत भगवत्स्तुति और ब्रह्माकृत भगवत्स्तुति।[2] द्वितीय स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय में परीक्षित् द्वारा श्रीकृष्ण के गुणविषयिणी जिज्ञासा समुपस्थित होने पर श्रीलशुकदेव महाराज भगवान् श्रीकृष्ण की गुणात्मक स्तुति करते हैं।[3] १३ श्लोकों में शुकदेव गोस्वामी के इस स्तुति में श्रीकृष्ण को परमात्मा एवं तीनों लोकों का स्वामी के रूप में प्रतिपादन किया है। ज्ञानियों में श्रेष्ठ अवधूतशिरोमणि शुक द्वारा यह स्तुति निष्काम भाव से की गई है।

स्तुति करते हुए शुकदेव जी कहते हैं—जो संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय की लीला करने के लिए सत्त्व रज और तमोगुण रूप तीन शक्तियों को स्वीकार कर ब्रह्मा विष्णु और शंकर का रूप धारण करते हैं। जो सर्वव्यापक और अतीन्द्रिय हैं उन पुरुषोत्तम भगवान् के चरण कमलों में कोटि-कोटि प्रणाम है। जिनका कीर्त्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन, श्रवण और पूजन जीवों के पापों को तत्काल नष्ट कर देते हैं, उन पुण्यकीर्ति भगवान् को बार-बार नमस्कार है—

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम्।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः॥[4]

यह स्तुति पूर्णतः नमस्कारात्मक है। अधिकांश श्लोकों में "नम" शब्द का प्रयोग हुआ है।

ब्रह्माकृत भगवत्स्तुति

जब ब्रह्मा सृष्टि कार्य में असमर्थ थे। तब अव्यक्त प्रभु की प्रेरणा से तपस्या कार्य में संलग्न हुए। तपस्या से प्रसन्न होकर लोकभावन परात्पर प्रभु प्रकट हुए और ब्रह्मा को आशीर्वाद देकर सृष्टि करने की शक्ति प्रदान की। सर्वव्यापी प्रभु को सामने समुपस्थित देखकर ब्रह्मा सृष्टि विषयक कामना से प्रेरित होकर उनकी स्तुति करते हैं।[5] ब्रह्मा जी कहते हैं—भगवन्! आप समस्त प्राणियों के अन्तःकरण में साक्षी रूप से विद्यमान

१. श्रीमदभागवत १.९.३४
२. तत्रैव २।४ एवं २।९
३. तत्रैव २।४।१२-२४
४. तत्रैव २.४.१५
५. तत्रैव २।९।२४-२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहते हैं। नाथ ! कृपा करके मुझ याचक की यह मांग पूरी कीजिए जिससे मैं आपके सगुण और निर्गुण दोनों ही रूपों को जान सकूं। आप माया के स्वामी हैं। आपका संकल्प कभी व्यर्थ नहीं जाता। आप मुझ पर कृपा कीजिए कि मैं सजग रहकर सावधानी से आपकी आज्ञा का पालन कर सकूं। प्रभो ! आपने एक मित्र के समान हाथ पकड़कर मुझे अपना मित्र स्वीकार किया है। अतः मैं जब आपकी इस सेवा-सृष्टि रचना में लगूं और सावधानी से पूर्वसृष्टि के गुण-कर्मानुसार गुणों का विभाजन करने लगूं, तब कहीं अपने को जन्म कर्म से स्वतन्त्र मानकर अभिमान न कर बैठूं।[1]

तृतीय स्कन्ध की स्तुतियां

श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध में विभिन्न भक्तों द्वारा विभिन्न अवसरों पर स्तुतियां की गई हैं। सृष्टि विस्तार की कामना से ब्रह्मा परमब्रह्मपरमेश्वर की (३।९।१-२५), वाराह द्वारा पृथिवी का उद्धार किए जाने पर मरीच्यादि ऋषिगण भगवान् वाराह की (३।१३।३४-४५) स्तुति करते हैं। एकादश श्लोकात्मक इस स्तुति में भगवान् वाराह के भयंकर स्वरूप का निरूपण किया गया है। हिरण्याक्ष का वधकर पृथिवी का उधार किए जाने पर देवगण और ऋषिगण भगवान् की इस प्रकार स्तुति करते हैं—भगवान् अजित ! आपकी जय हो, जय हो। यज्ञपते ! आप अपने वेदत्रयी रूप को फटकार रहे हैं, आपको नमस्कार है। आपके रोम-कूपों में सम्पूर्ण यज्ञ लीन है। पृथिवी का उद्धार करने के लिए सूकर रूप धारण करने वाले आपको नमस्कार है। ईश ! आपकी थूथनी में स्रुक् है, नासिका छिद्रों में स्रुवा है, उदर में ईडा है, कानों में चमस है, मुख में प्राशित्र है और कण्ठछिद्र में सोमपात्र है। भगवन् ! आपका जो चबाना होता है वहीं अग्निहोत्र है।[2] हे प्रभो आप ही इस धरती के उद्धारक हैं—

कः श्रद्धधीतान्यतमस्तव प्रभो रसां गताया भुव उद्विबर्हणम्।
नविस्मयोऽसौ त्वयि विश्वविस्मये यो मायया इदं ससृजेऽतिविस्मयम्॥[3]

१५ वें अध्याय में देवगण ब्रह्मा की स्तुति करते हैं। यह आर्त स्तुति है। दिति अनिष्ट की आशंका से कश्यप जी के वीर्य को अनन्त काल तक गर्भ में धारण किए रही। उस गर्भस्थ तेज से सम्पूर्ण लोकपालादि तेजहीन हो गये। सारा संसार अंधकार में फंस गया तब घबराकर देवगण लोकसर्जक ब्रह्मा के पास जाकर उनकी स्तुति करने लगे।[4] देवाधिदेव ! आप जगत् के

१. श्रीमद्भागवत २।९।२९
२. तत्रैव ३।१३।३६
३. तत्रैव ३।१३।४३
४. तत्रैव ३।१५।३-१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचयिता तथा समस्त लोकपालों के मुकुटमणि हैं। आप छोटे बड़े सभी जीवों के भाव जानते हैं। आप विज्ञानबल सम्पन्न हैं। आप अपनी माया से ही यह चतुर्मुख रूप और रजोगुण स्वीकार किया है। आपकी उत्पत्ति के वास्तविक कारण को कोई नहीं जानता। हम आपको बार-बार नमस्कार करते हैं।[1]

अनन्त प्रभु के प्रत्यक्ष दर्शन कर सनकादि कुमार सफल हो गये। गद्‌गद् स्वर में उस प्रभु की स्तुति करने लगे।[2] हे अनन्त! आप सर्वत्र व्याप्त रहते हैं। दुष्टों के हृदय में निवास करते हैं, परन्तु आंखों से ओझल रहते हैं लेकिन आज आपका हम लोग प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे हैं। और स्तुति के अन्त में ऋषिगण अपने पूज्य के चरणों में निवेदित करते हैं—

प्रादुश्चकर्थ यदिदं पुरहूत रूपं तेनेश निर्वृतिमवापुरलं दृशो नः।
तस्मा इदं भगवते नम इद्विधेम योऽनात्मनां दुरुदयो भगवान् प्रतीत॥[3]

हिरण्याक्ष का वध कर जब भगवान् वाराह अपने अखण्ड आनन्दमय धाम को पधार रहे थे उस समय ब्रह्मादि देवों ने स्तुति की। इस स्तुति में केवल एक ही श्लोक है —

नमो नमस्तेऽखिलयज्ञतन्तवेस्थितौ गृहीतामलसत्त्वमूर्तये।
दिष्ट्या हतोऽयं जगतामरुन्तुदः त्वत्पादभक्त्या वयमीश निर्वृता॥[4]

ब्रह्मा की आज्ञा पाकर सन्तानोत्पत्ति के लिए ऋषिकर्दम ने हजार वर्षों तक सरस्वती के तीर पर शरणागत वत्सल श्रीहरि की उपासना की। उपासना से प्रसन्न विधाता साक्षात् प्रकट हो गये। प्रभु को साक्षात् देखकर ऋषि कर्दम स्तुति करने लगे।[5] यह स्तुति सकाम स्तुति है। सन्तानोत्पत्ति की कामना से की गई है। कर्दम कहते हैं—स्तुति करने योग्य परमेश्वर! आप संपूर्ण सत्त्वगुण के आधार हैं। योगिजन उत्तरोत्तर शुभ योनियों में जन्म लेकर अन्त में योगस्थ होने पर आपके दर्शनों की इच्छा करते हैं, आज आपका वही दर्शन पाकर हमारे नेत्रों को फल मिल गया। आपके चरण कमल भवसागर से पार जाने के लिए जहाज हैं। जिनकी बुद्धि आपकी माया से मारी गई है, वे ही उन तुच्छ क्षणिक विषय सुखों के लिए जो नरक में भी मिल सकते हैं, उन चरणों का आश्रय लेते हैं, किन्तु स्वामिन् आप तो उन्हें विषय भोग दे देते हैं। प्रभो? आप कल्पवृक्ष हैं। आपके चरण समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाले हैं, मेरा हृदय काम कलुषित है। मैं भी अपने अनु-

१. श्रीमद्‌भागवत ३।१५।४-५
२. तत्रैव ३।१५।४६-५०
३. तत्रैव ३।१५।५०
४. तत्रैव ३।१९।३०
५. तत्रैव ३।२१।१३-२१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूप स्वभाव वाली और गृहस्थ धर्म के पालन करने में सहायक शीलवती कन्या से विवाह करने के लिए आपके चरण कमलों की शरण में आया हूं। और अन्त में ऋषिकर्दम भगवान् के सृष्टिकर्तृत्व गुण का प्रतिपादन करते हुए नमस्कार करते हैं—

तं त्वानुपथ्योपरतक्रियार्थं स्वमायया वर्तितलोकतंत्रम्।
नमाम्यभीक्ष्णं नमनीयपादं सरोजमल्पीयसि कामवर्षम्।[1]

माता देवहूति तृतीय स्कन्ध में भगवान् कपिल की दो बार स्तुति करती है। प्रथम बार, सांसारिक भोगों से उबकर तथा मुक्ति की अभिलाषा लेकर भगवान् कपिल के शरणापन्न होती है। हे प्रभो! आप अपने भक्तों के संसार रूप वृक्ष के कुठार के समान हैं। मैं प्रकृति और पुरुष का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से आप शरणागत वत्सल के शरण में आई हूं। आप भागवत धर्म जानने वालों में सर्वश्रेष्ठ हैं, मैं आपको प्रणाम करती हूं।[2]

द्वितीय बार जब भगवान् कपिल सांख्य का उपदेश देकर माता देवहूति का मोह भंग करते हैं तो वह माया से उपरत हो उपकृत होकर प्रभु की स्तुति करती है।[3]

प्रभो! ब्रह्माजी आपहीं के नाभिकमल से प्रकट हुए थे। उन्होंने प्रलयकालीन जल में शयन करने वाले आपके पंचमहाभूत, इन्द्रिय, शब्दादि विषय और मनोमय विग्रह का, जो सत्त्वादि गुणों के प्रवाह से युक्त, सत्स्वरूप और कार्य एवं कारण दोनों का बीज है, ध्यान किया था। आप निष्क्रिय, सत्यसंकल्प, संपूर्ण जीवों के प्रभु तथा सहस्रों अचिन्त्य शक्तियों से सम्पन्न हैं। अपनी शक्ति को गुण प्रवाह रूप में ब्रह्मादि अनंत मूर्तियों में विभक्त करके उनके द्वारा आप स्वयं ही विश्व की रचना आदि कार्य करते हैं। नाथ! यह कैसी विचित्र बात है, जिनके उदर में प्रलयकाल आने पर यह सारा प्रपंच लीन हो जाता है, और जो कल्पांत में मायामय बालक का रूप धारण कर अपने चरण का अंगूठा चुसते हुए अकेले ही वटवृक्ष के पत्ते पर शयन करते हैं, उन्हीं आपको मैंने गर्भ में धारण किया।[4] स्तुति के ७ वें श्लोक में नाम-कीर्तन की महिमा का प्रतिपादन देवहूति करती है हे प्रभो! आपके नाम कीर्तन से चाण्डाल भी पवित्र हो जाता है—

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः, सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥[5]

---

१. श्रीमद्भागवत ३.२१.२१
२. तत्रैव ३।२४।११
३. तत्रैव ३।३३।२
४. तत्रैव ३।३३।२-४
५. तत्रैव ३।३३।७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तधातुमय स्थूल शरीर में बंधा हुआ, माता के गर्भ में स्थित, देहात्मदर्शी जीव भावि सांसारिक कष्ट से अत्यन्त भयभीत होकर निर्गुण निर्विकार परम ब्रह्म परमेश्वर की स्तुति करता है।[1] यह स्तुति आर्त स्तुति है। श्री विष्णु भगवान् के चरणों को अपने हृदय में स्थापित करने से मनुष्य सद्यः भवसागर से मुक्त हो जाता है। घबराया हुआ जीव इस प्रकार प्रभु की उपासना करता है

सोऽहं व्रजामि शरणं ह्यकुतोभयं मे येनेदृशी गतिरदर्श्यसतोऽनुरूपा।[2]

मैं वस्तुतः शरीरादि से रहित होने पर भी देखने में पांच भौतिक शरीर से सम्बद्ध हूं। इसीलिए इन्द्रिय, गुण, शब्दादि विषय और चिदाभास रूप जान पड़ता हूं। अतः शरीरादि के आवरण से जिनकी महिमा कुण्ठित नहीं हुई है, उन प्रकृति और पुरुष के नियंता सर्वज्ञ पुरुष की मैं वंदना करता हूं। माया से अपने स्वरूप की स्मृति नष्ट हो जाने के कारण यह जीव अनेक सत्वादि गुण और कर्म के बंधन से युक्त इस संसार मार्ग में तरह-तरह के कष्ट झेलता हुआ भटकता रहता है, अतः उन परम पुरुष परमात्मा के कृपा के बिना और किस युक्ति से अपने इस स्वरूप का ज्ञान हो सकता है।[3] और अन्त में जीव संपूर्ण बन्धनों के उच्छेदक विष्णु के चरण कमलों को हृदय में स्थापित करना चाहता है—

तस्मादहं विगतविक्लव उद्धरिष्य आत्मानमाशु तमसः सुहृदाऽऽत्मनैव।
भूयो यथा व्यसनमेतदनेकरन्ध्रं मा मे भविष्यदुपसादितविष्णुपादः॥[4]

यह स्तुति सेश्वर सांख्य के धरातल पर अवस्थित है। भक्त जीव स्तुति काल में सर्वज्ञ की अवस्था में है, अनागत संसार बंधन जन्य कष्टों से घबराकर उस प्रभु के चरण-शरण ग्रहण करता है, जिसने उसे इस बंधन में डाला है।

चतुर्थ स्कन्ध की स्तुतियां—

चतुर्थ स्कन्ध में लगभग २५ स्तुतियां समाहित हैं। इनमें सबसे अधिक १९ स्तुतियां दक्ष-यज्ञ की पूर्णता पर उपस्थित भगवान् विष्णु के प्रति विभिन्न भक्तों द्वारा समर्पित की गई हैं। प्रथम अध्याय में अत्रि ऋषि कृत त्रिदेव स्तुति एवं देवगण कृत नर-नारायण स्तुति है।[5] सृष्टि-संवर्द्धन की कामना से ऋषि अत्रि परमेश्वर की उपासना करते हैं। फलस्वरूप तीनों देव

१. श्रीमद्भागवत ३।३१।१२-२१
२. तत्रैव ३।३१।१२
३. तत्रैव ३।३१।१४-१५
४. तत्रैव ३।३१।२१
५. तत्रैव —क्रमशः—४।१।२७-२८ एवं ४।१।५६-६६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

—जो परमेश्वर हैं अत्रि के आश्रम ···ऋक्षनामक कुल पर्वत पर प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। प्रभु का प्रत्यक्ष दर्शन पाकर अत्रि स्तुति करते हैं—

भगवन् प्रत्येक कल्प के आरंभ में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और लय के लिए जो माया के सत्त्वादि तीनों गुणों का विभाग करके भिन्न-भिन्न शरीर धारण करते हैं—वे ब्रह्मा, विष्णु और महादेव आप ही हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूं।[1]

धर्म की पत्नी समस्त गुणों के आगार मूर्त्तिदेवी के गर्भ से जब नर-नारायण ऋषि उत्पन्न हुए तब समस्त देवगण उन ऋषियों की स्तुति करने लगे ···

जिस प्रकार आकाश में तरह-तरह के रूपों की कल्पना की जाती है, उसी प्रकार जिन्होंने अपनी माया के द्वारा अपने ही स्वरूप के अन्दर इस संसार की रचना की है, और अपने उस स्वरूप को प्रकाशित करने के लिए इस ऋषि विग्रह के साथ धर्म के घर आपको प्रकट किया है, उन परम पुरुष को हमारा नमस्कार है।[2]

दक्षयज्ञ शाला में भगवान् विष्णु हविष्यान्नग्रहण करने के लिए प्रकट हुए। सर्वनियंता प्रभु को देखकर उस यज्ञशाला में उपस्थित सभी लोग अपने हृदय के भावनाओं को हृदयेश के प्रति समर्पित किए। दक्ष, ऋत्विज, सदस्य, रुद्र, भृगु, ब्रह्मा, इन्द्र, याज्ञिक-पत्नियां, ऋषिगण, सिद्धगण, यजमान पत्नियां, लोकपाल, योगेश्वर, वेद, अग्नि, देवगण, गन्धर्व, विद्याधर, ब्राह्मण-गणआदि भक्त भगवान् विष्णु की स्तुति करते हैं।[3] हाथ जोड़कर प्रजापति दक्ष सर्वप्रथम भगवान् की स्तुति करते हैं ···भगवान् ! अपने स्वरूप में आप बुद्धि की जाग्रदादि संपूर्ण अवस्थाओं से रहित, शुद्ध चिन्मय, भेदरहित एवं निर्भय हैं। आप माया का तिरस्कार करके स्वतंत्र रूप से विराजमान हैं तथापि जब माया से ही जीव भाव को स्वीकार कर उसी माया में स्थित हो जाते हैं, तब अज्ञानी के समान दिखाई पड़ते हैं।[4]

अन्त में ब्राह्मणदेवता स्तुति करते हैं

त्वं क्रतु स्त्वं हवि स्त्वं हुताशः स्वयं त्वं हि मन्त्र : समिद्दर्भपात्राणि च।
त्वं सदस्यर्त्विजो दम्पती देवता अग्निहोत्रं स्वधा सोम आज्यं पशुः ।।[5]

बालक ध्रुव पिताकुल से तिरस्कृत होकर संसार के पिता की प्राप्ति कामना से श्वासावरोध कर तप करता है। उसके श्वांसावरोधन से पवन

१. श्रीमद्भागवत ४।१।२८
२. तत्रैव ४।१।५६
३. तत्रैव ४।७।२६-४७
४. तत्रैव ४।७।२६
५. तत्रैव ४।७।४५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देव रुक गये, संपूर्ण संसार में त्राहि-त्राहि मच गयी। देवगण भगवान् विष्णु से अपने उद्धार की याचना करने लगे—

नैवं विदामो भगवन् प्राणरोधं, चराचरस्याखिल सत्त्वधाम्नः।
विधेहि तन्नो वृजिनाद्विमोक्षं, प्राप्ता वयं त्वां शरणं शरण्यम् ॥[1]

सांसारिक सम्बन्धिजनों से तिरस्कृत होकर माता द्वारा निर्देश प्राप्त कर बालक ध्रुव विश्वनियन्ता एवं भक्तों के परमहितैषी परम प्रभु का शरणपन्न होता है। उसके कठोर तप से प्रसन्न भगवान् विष्णु शंख चक्र गदाधर रूप में प्रकट होकर ध्रुव को दर्शन देते हैं। योगीजन दुर्लभ दर्शन को प्राप्त कर बालक ध्रुव की शेष वासना भी समाप्त हो गयी। प्रभु प्रसाद से वेदवाणी प्राप्त कर उनकी स्तुति करने लगा[2]—प्रभो आप सर्व-शक्ति सम्पन्न हैं, आप ही मेरे अन्तःकरण में सोयी हुई वाणी को सजीव करते हैं, तथा हाथ, पैर, कान और त्वचा आदि अन्यान्य इन्द्रियों एवं प्राणों की भी चेतनता देते है। मैं आप अन्तर्यामी भगवान् को प्रणाम करता हूं। आप एक होते हुए अनन्त रूपों में भासित होते हैं। हे प्रभो! अनन्त परमात्मन्! मुझे तो आप उन विशुद्ध हृदय महात्मा भक्तों का संग दीजिए जिनका आपमें अविच्छिन्न भक्ति भाव है—

भक्ति मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो, भूयादनन्तमहतामलाशयानाम्।
येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं, नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः[3] **॥**

यह निष्काम स्तुति है। बालक ध्रुव केवल भगवद्दास संगति की कामना करता है।

इस स्कन्ध में सुविख्यात नृपति पृथु की दो स्तुतियां—एक वन्दीजनों द्वारा तथा दूसरी पृथिवी के द्वारा की गई है। पहली प्रशंसा गीत है तो दूसरी आर्त स्तुति। पृथु द्वारा वारित किए जाने पर भी देवों द्वारा उपदिष्ट होकर वन्दीजन महाराज पृथु की स्तुति करते हैं।[4] इस स्तुति में राजा पृथु के अद्भुत पराक्रम का गायन किया गया है। साथ-साथ 'राजा नारायणांश होता है,' इस विख्यात सिद्धांत का भी प्रतिपादन किया गया है—

अयं तु साक्षाद् भगवांस्त्र्यधीशः, कूटस्थ आत्मा कलयावतीर्णः।
यस्मिन्नविद्यारचितं निरर्थकं, पश्यन्ति नानात्वमयि प्रतीतम् ॥[5]

पृथु के राज्य में पूर्णतः अन्नाभाव के कारण आकाल पड़ चुका था।

१. श्रीमद्भागवत ४।८।८१
२. तत्रैव ४।९।६-१७
३. तत्रैव ४।९।११
४. तत्रैव ४।१६।२-२७
५. तत्रैव ४।१६।१९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रजा के दारिद्रय से कारुणार्द्र होकर पृथिवी को दमन करने के लिए पृथु चले। पृथु के क्रोध को देखकर पृथिवी थर-थर कांपती हुई हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगी[1]। इस आठ श्लोकी आर्त्त स्तुति में राजा में नारायणत्व का आरोप किया गया है या राजा को साक्षात् नारायण स्वरूप ही प्रतिपादित किया गया है। पृथिवी कहती है-

नमः परस्मै पुरुषाय मायया, विन्यस्तनानातनवे गुणात्मने।
नमः स्वरूपानुभवेन निर्धुत-द्रव्यक्रियाकारकविभ्रमोर्मये॥[2]

इसी स्कन्ध के बीसवें अध्याय में विश्वविख्यात सम्राट् पृथु द्वारा अपने यज्ञशाला में उपस्थित विष्णु की स्तुति की गई है। यह स्तुति पूर्णतः निष्काम भावना पर आधारित है। भक्त वैसा कुछ भी नहीं चाहता जहां भगवान् के चरण रज की प्राप्ति न हो। वह हजारो कान मांगता है जिससे अहर्निश भगवान् के गुणों का श्रवण कर सके—

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचित्, न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो, विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः॥[3]

इस स्तुति में नव श्लोक हैं जो भक्ति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इसमें भक्त केवल भगवद्पदाम्बुजासवः की ही कामना करता है।[4]

पंचम स्कन्ध की स्तुतियां

पंचम स्कन्ध में अग्नि, सूर्य, चन्द्र एवं भगवान् विष्णु के विभिन्न अवतारों की स्तुतियां उपन्यस्त हैं। लगभग १६ स्तुतियां हैं। १२ वें अध्याय में रहूगण द्वारा जडभरत की ८ श्लोकों में स्तुति की गई है। राजारहूगण कहते हैं —भगवन्! मैं आपको नमस्कार करता हूं। आपने जगत् का उद्धार करने के लिए ही यह देह धारण की है। योगेश्वर! अपने परमानन्दमय स्वरूप का अनुभव करके आप इस स्थूल शरीर से उदासीन हो गये हैं, तथा एक जड ब्राह्मण के वेष से अपने नित्यज्ञानमय स्वरूप को जन साधारण की दृष्टि से ओझल किए हुए हैं।[5]

इलावृत वर्ष में भगवान् शंकर चतुर्व्यूह मूर्तियों में से अपनी कारण रूपा संकर्षण नाम की तमःप्रधान मूर्ति का ध्यानावस्थित मनोमय विग्रह के रूप में चिन्तन करते हुए स्तुति करते हैं।[6]

---

१. श्रीमद्भागवत ४।१७।२९-३६
२. तत्रैव ४।१७।२९
३. तत्रैव ४।२०।२४
४. तत्रैव ४।२०।२३
५. तत्रैव ५।१२।१
६. तत्रैव ५।१७।१७-२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भजे भजन्यारणपादपङ्कजं, भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणम् ।
भक्तेष्वलं भावित भूतभावनं भवापहं त्वा भवभावमीश्वरम् ।।[1]

अठारहवें अध्याय मे विभिन्न भक्तों द्वारा विष्णु के विभिन्न अवतारों की स्तुति की गई है । भद्राश्ववर्ष में भद्रश्रवा हयग्रीव की (२।६) हरिवर्ष में भक्त प्रह्लाद भगवान् नृसिंह की (८।१४) और केतुमाल वर्ष में लक्ष्मीजी सुदर्शन धारी प्रभु की स्तुति (१८-२३) करती हैं । रम्यक वर्ष में महाराज मनु मत्स्यावतार की (२५-२८) हिरण्मय वर्ष में पितृराज अर्यमा भगवान् कच्छप की (३०-३३) उत्तर कुरुवर्ष में वहां के निवासियों सहित पृथिवी वाराहावतार की (३५-२०) स्तुति करती है । यज्ञपुरुष वाराहमूर्ति की स्तुति करती हुई पृथिवी कहती है—आप जगत् के कारणभूत आदि सूकर है, आपने ही राक्षस से मेरी रक्षा की है—

प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे यो मां रसाया जगदादिसूकरः ।
कृत्वाग्रदंष्ट्रे निरगादुदन्वतः क्रीडन्निवेभः प्रणतास्मि तं विभुमिति ।।[2]

उन्नीसवें अध्याय में तीन स्तुतियां है—किम्पुरुष वर्ष में स्थित भक्त राज हनुमान् जी सीताभिराम श्रीराम की एवं भारत वर्ष में महर्षि नारद नर-नारायण की स्तुति करते हैं । देवता लोग भारत की महिमा का गायन करते हैं—

अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः ।
यैर्जन्मलब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ।।[3]

देवगण कहते हैं—यह स्वर्ग तो क्या जहां के निवासियों की एक-एक कल्प की आयु होती है, किन्तु जहां से फिर संसार चक्र में लौटना पड़ता है, उन ब्रह्मलोकादि की अपेक्षा भी भारतभूमि में थोड़ी आयु वाले होकर जन्म लेना अच्छा है, क्योंकि यहां धीर पुरुष एक क्षण में ही अपने इस मर्त्य शरीर से किए हुए सम्पूर्ण कर्म श्री भगवान् को अर्पण करके उनका अभयपद प्राप्त कर सकता है ।[4] ब्रह्मर्षि नारद भगवान् नर नारायण की स्तुति करते हुए कहते हैं- जो विश्व का कर्त्ता होकर भी कर्तृत्व के अभिमान में नहीं बंधते, शरीर में रहते हुए भी उसके धर्म-भूख प्यास के वशीभूत नहीं होते, द्रष्टा होने पर भी जिनकी दृष्टि दृश्य के गुण दोषों से दूषित नहीं होती, अन्य असङ्ग एवं विशुद्ध साक्षि-स्वरूप भगवान् नर-नारायण को नमस्कार है । और अन्त में माया भंजिका भक्ति की कामना करते हैं—

१. श्रीमद्भागवत ५।१७।१८
२. तत्रैव ५।१८।३९
३. तत्रैव ५।१९।२१
४. तत्रैव ५।१९।२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तन्नः प्रभो त्वं कुकलेवरार्पितां त्वन्मायया अहं ममतामधोक्षज ।
भिन्द्याम यैनाशु वयं सुदुर्भिदां विधेहियोगं तव नः स्वभावमिति ।[1]

बीसवें अध्याय में एक श्लोकात्मक पांच स्तुतियां हैं। सूर्य स्तुति, चन्द्रस्तुति, अग्नि स्तुति, वायु स्तुति, ब्रह्ममूर्ति स्तुति आदि स्तुतियां विभिन्न द्विपों के निवासियों द्वारा की गई हैं।

इस स्कन्ध की अन्तिम स्तुति भगवान् संकर्षण को समर्पित की गई है। तुम्बुरु गन्धर्व के साथ महाभागवत नारद जी भगवान् संकर्षण के गुणों का ब्रह्माजी की सभा में गायन करते हैं। इस पांच श्लोकात्मक स्तुति में भगवान् संकर्षण के अद्भुत स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। पृथिवी के धारण कर्त्ता के रूप में उनका प्रतिपादन हुआ है—

एवम्प्रभावो भगवाननन्तो दुरन्तवीर्योरुगुणानुभावः ।
मूले रसायाः स्थित आत्मतन्त्रो यो लीलया क्ष्मां स्थितये बिभर्ति ।।[2]

षष्ठस्कन्ध में समाहित स्तुतियों का वस्तु विश्लेषण

षष्ठ स्कन्ध में ८ स्तुतियां विभिन्न भक्तों द्वारा विभिन्न अवसरों पर अपने स्तव्य के चरणों में समर्पित की गई है। जिनमें "हंसगुह्यस्तोत्र" और नारायणकवच विश्रुत है। जब दक्ष प्रजापति द्वारा की गई सृष्टि में कोई वृद्धि नहीं हो रही थी तब विन्ध्याचल पर्वत पर अवस्थित अघमर्षण तीर्थ में स्नान कर प्रजा वृद्धि की कामना से प्रजापति दक्ष ने हंसगुह्य नामक स्तोत्र से इन्द्रियातीत भगवान् की स्तुति की।[3] दक्ष प्रजापति कहते हैं—भगवन्! आपकी अनुभूति, आपकी चितशक्ति अमोघ है। आप जीव और प्रकृति से परे, उनके नियन्ता और उन्हें सत्ता-स्फूर्ति देने वाले हैं। जिन जीवों ने त्रिगुणमयी सृष्टि को ही वास्तविक समझ रखा है वे आपके स्वरूप का साक्षात्कार नहीं कर सके हैं, क्योंकि आप तक किसी भी प्रमाण की पहुंच नहीं है—आपकी कोई अवधि, कोई सीमा नहीं। आप स्वयं प्रकाश और परात्पर हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूं। प्रलय काल में भी आप अपने सच्चिदानन्दमयी स्वरूप स्थिति के द्वारा प्रकाशित होते रहते हैं।—

यदोपारमो मनसो नामरूप, रूपस्य दृष्टस्मृतिसम्प्रमोषात् ।
य ईयते केवलया स्वसंस्थया, हंसाय तस्मैशुचिसद्मने नमः ।।[4]

श्रीमद्भागवत के षष्ठ स्कन्ध के आठवें अध्याय में सभी प्रकार के

---

१. श्रीमद्भागवत ५।१९।१५
२. तत्रैव ५।२५।१३
३. तत्रैव ६।४।२३-३४
४. तत्रैव ६।४।२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकटों से रक्षा के लिए नारायण-वर्म का उपदेश दिया गया है।[1] इसी कवच से रक्षित होकर देव इन्द्र ने अजेय राक्षसों की चतुरंगिणी सेना को अनायास ही जीतकर त्रिलोकी की राज्य लक्ष्मी का उपभोग किया। देव पुरोहित विश्वरूप ने विजय के लिए देवराज को इस अमोघ कवच का उपदेश किया। इस कवच में ३१ श्लोक हैं जिसमें सब ओर से शरीर की रक्षा की कामना की गई है। भगवान् के विभिन्न अवतारों का ध्यान किया गया है। भगवान् श्रीहरि गरुड़जी की पीठ पर अपने चर कमल रखे हुए हैं। अणिमादि आठों सिद्धियां उनकी सेवा कर रही हैं। आठ हाथों में शंख, चक्र, ढाल, तलवार, गदा, बाण, धनुष और पाश धारण किए हुए हैं। वे ही ऊंकार स्वरूप प्रभु सब प्रकार से सब ओर से मेरी रक्षा करें।[2]

वृत्रासुर से पराजित दीन-हीन भावना से युक्त देवगण अपने हृदय में विद्यमान सर्वशरण्य भगवान् नारायण की स्तुति करते हैं।[3] स्तुति से प्रसन्न नारायण देवों को प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। प्रभु का प्रत्यक्ष दर्शन पाकर सभी देवता धन्य-धन्य हो पुनः स्तुति करने लगे।[4] इस नवे अध्याय में देवों ने श्रीनारायण की दो बार स्तुति की है। प्रथम आर्त स्तुति है तो द्वितीय भगवद्दर्शन से उपकृत होकर की गई है। वृत्रासुर से पराजित देवगण हृदय-स्थ सच्चिदानन्द से निवेदन करते हैं—वायु, आकाश, अग्नि, जल और पृथिवी—ये पांचों भूत, इससे बने हुए तीनों लोक, उनके अधिपति ब्रह्मादि तथा हम सब देवता जिस काल से डरकर उसे पूजा-सामग्री की भेंट दिया करते हैं, वही काल भगवान् से भयभीत रहता है, इसलिए भगवान् ही हमारे रक्षक हैं।[5]

भगवान् का दर्शन पाकर देवलोग अत्यन्त भाव विह्वल हो गये। साष्टांग प्रणाम कर धीरे-धीरे स्तुति करने लगे—

नमस्ते यज्ञवीर्याय वयसे उत ते नमः।
नमस्ते ह्यस्तचक्राय नमः सुपुरुहूतये॥
यत् ते गतीनां तिसृणामीशितुः परमं पदम्।
नार्वाचीनो विसर्गस्य धातर्वेदितुमर्हति॥[6]

महाप्रास्थानिक वेला में राक्षसराज वृत्रासुर भगवान् गदाधर को

---

१. श्रीमद्भागवत ६।८।४।३४
२. तत्रैव ६।८।१२
३. तत्रैव ६।९।२१-२७
४. तत्रैव ६।९।३१-४५
५. तत्रैव ६।९।१२
६. तत्रैव ६।९।३१-३२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए स्तुति करता है।[1] मात्र चार श्लोक की इस स्तुति में वृत्रासुर ने सारे भक्तिशास्त्र में प्रतिपादित भक्ति तत्त्व को एकत्र उपस्थित कर दिया है। वृत्रासुर की इस स्तुति के अवलोकन से लगता है कि वह महान् भक्त था। वह सम्पूर्ण वैभव-विलास को त्यागकर केवल भगवान् के दासों के दास बनना चाहता है—

अहं हरे तव पादैकमूल दासानुदासो भवितास्मि भूयः।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः॥[2]

वृत्रासुर प्रभु के चरणरज को छोड़कर स्वर्ग, ब्रह्मलोक, भूमण्डल का साम्राज्य, रसातल का एक क्षत्र राज्य, योग की सिद्धियां—यहां तक की मोक्ष भी नहीं चाहता। हे नाथ! जैसे पंखहीन पक्षियों के बच्चे अपनी मां की बाट देखते हैं, भूखे बछड़े अपने मां का दूध पीने के लिए आतुर रहते हैं और जैसे वियोगिनी पत्नी अपने प्रवासी प्रियतम से मिलने के लिए उत्कण्ठित रहती है वैसे ही कमलनयन मेरा मन आपके दर्शन के लिए छटपटा रहा है—

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥[3]

षष्ठ स्कन्ध के सोलहवें अध्याय में संकर्षण देव की दो स्तुतियां हैं। प्रथम जितेन्द्रिय भगवद्भक्त एवं शरणागत चित्रकेतु को भगवान् नारद संकर्षण विद्या का उपदेश देते हैं। उस विद्या के प्रभाव से राजा चित्रकेतु अमल मानस होकर मन द्वारा भगवान् शेष का दर्शन प्राप्त करने में समर्थ होता है। भगवान् नारद संकर्षण विद्या का इस प्रकार प्रारंभ करते हैं—

ॐ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च॥
नमो विज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये।
आत्मारामाय शान्ताय निवृतद्वैतदृष्टये॥[4]

विद्या के प्रभाव से राजा चित्रकेतु भगवान् शेष का दर्शन प्राप्त कर मन, बुद्धि और इन्द्रिय को उन्हीं में समाहित कर उनकी स्तुति करने लगते हैं।[5] चित्रकेतु कहते हैं—अजित! जितेन्द्रिय एवं समदर्शी साधुओं ने आपको जीत लिया है। आपने भी सौन्दर्य, माधुर्य और कारुण्य आदि गुणों से

---

१. श्रीमद्भागवत ६।११।२४-२७
२. तत्रैव ६।११।२४
३. तत्रैव ६।११।२८
४. तत्रैव ६।१६।१९-१८
५. तत्रैव ६।१६।३३-४८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनको अपने वश में कर लिया है। अहो ! आप धन्य है जो निष्काम भाव से आपका भजन करते हैं उन्हें आप अपना स्वरूप भी दे डालते हैं।[1]

"पुंसवनव्रत" के वर्णन प्रसंग में सौभाग्यवती स्त्रियों द्वारा लक्ष्मी नारायण की स्तुति का विधान किया गया है[2]। शुकदेव जी कहते हैं—व्रतावसर में सौभाग्यवती स्त्रियों द्वारा इस प्रकार स्तुति करनी चाहिए--प्रभो ! आप पूर्णकाम है अतएव आपको किसी से लेना नहीं है। आप समस्त विभूतियों के स्वामी एवं सकलसिद्धि स्वरूप है। मैं आपको बार-बार नमस्कार करती हूं।[3]

सप्तमस्कन्ध की स्तुतियां

सप्तम स्कन्ध में केवल भगवान् नृसिंह की स्तुतियां हैं। सप्तम स्कन्ध के आठवें अध्याय में जब भक्त प्रह्लाद की रक्षा के लिए और हिरण्यकशिपु के उद्धार के लिए भगवान् नृसिंह अवतरित होते है तब ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, ऋषिगण, पितर, सिद्ध, विद्याधर, नाग, मनु, प्रजापति, गंधर्व, चारण, यक्ष, किम्पुरुष, वैतालिक, किन्नर और विष्णुपार्षद उनकी स्तुति करते हैं। सबों की स्तुतियां एक श्लोकात्मक ही हैं। प्रारम्भ में ब्रह्मा इस प्रकार स्तुति करते हैं—

नतोऽस्म्यनन्ताय दुरन्तशक्तये, विचित्रवीर्याय पवित्रकर्मणे ॥
विश्वस्य सर्गस्थिति-संयमान् गुणैः, स्वलीलया संदधतेऽव्ययात्मने।[4]

भगवान् नृसिंह को शांत करने का देवों का समस्त प्रयास जब विफल हो गया तब उन लोगों ने अनन्य भगवद्भक्त प्रह्लाद को नृसिंह के चरणों में सम्प्रेषित किया। भावसमाधि से स्वयं एकाग्र हुए मन के द्वारा भगवद्भक्त प्रह्लाद भगवान् के गुणों का चिंतन करते हुए स्तुति करने लगे।[5] प्रह्लाद कृत यह भगवत्स्तुति अत्यन्त विशाल तथा निष्कामता से पूर्ण है। प्रह्लाद कहते हैं—ब्रह्मादि देवता, ऋषि-मुनि और सिद्ध पुरुषों की बुद्धि निरंतर सत्त्व गुण में ही स्थित रहती है। फिर भी वे अपनी धारा-प्रवाह स्तुति के द्वारा एवं विविध गुणों से आपको संतुष्ट कर नहीं सके। फिर मैं घोर असुर जाति में उत्पन्न हुआ हूं, क्या आप मुझसे संतुष्ट हो सकते हैं ? मैं समझता हूं कि धन, कुलीनता रूप, तप, विद्या, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पौरुष, बुद्धि और योग ये सभी गुण परम पुरुष भगवान् को संतुष्ट करने में समर्थ नहीं हैं,

१. श्रीमद्भागवत ६।१६।३४
२. तत्रैव ६।१९।४-७,११-१४
३. तत्रैव ६।१९।४
४. तत्रैव ७।८।४०
५. तत्रैव ७।९।८-५०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परन्तु भक्ति से भगवान् गजेन्द्र पर भी संतुष्ट हो गये थे।[1] इस स्तुति में भक्ति को ही सर्वश्रेष्ठ बताया गया है। भक्ति को ही भगवत्प्राप्ति का एक मात्र साधन बताया गया है।

तत् तेऽर्हत्तम नमः स्तुतिकर्मपूजाः कर्मस्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायाम्।
संसेवया त्वयि विनेति षडङ्गयाकि भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत॥[2]

अष्टम स्कन्ध में समाहित स्तुतियां

अष्टम स्कन्ध में ८ स्तुतियां समाहित हैं। तृतीय अध्यायान्तर्गत "गजेन्द्रमोक्ष" नामक स्तुति महत्त्वपूर्ण है।[3] गजेन्द्र की स्तुति में भक्ति और ज्ञान के सारे तत्त्व एकत्र समन्वित हैं। जब तक जीव मात्र में अपनी शक्ति का अहंकार रहता है तब तक उसे प्रभु की याद नहीं आती। अपने शक्ति पर अहं स्थापित कर उसी को सर्वस्व मान बैठता है। जब वह अचानक किसी विपत्ति में फंस जाता है, पहले तो अपनी भरपूर शक्ति का प्रयोग करता है, परन्तु जब पूर्णतः थक जाता है, उसकी शक्ति कोई काम नहीं आती, मृत्यु मुख का ग्रास बनना निश्चित-सा लगने लगता है, तब किसी प्राक्तन संस्कार वश उसे सर्वसमर्थ एवं सर्वेश्वर प्रभु की याद आ जाती है। सब कुछ उसी को समर्पित कर देता है—आप ही सब कुछ हैं, मेरे शरण्य हैं। तब याचना करता है—आर्त्त याचना—हे स्वामी! मेरी रक्षा करो—उस स्वामी से जो स्वयंप्रकाश, स्वयंसिद्ध, सर्वसमर्थ एवं विश्वप्रपंच का मूल कारण है एवं संपूर्ण संसार का साक्षी है। वही प्रभु अब रक्षा कर सकता है।[4]

महाभागवत गजेन्द्र उस परमेश्वर का शरण ग्रहण करता है जो "अस्मात्परस्माच्चपरः" हैं। संसार उन्हीं में स्थित है, वे ही इसमें व्याप्त हो रहे हैं। उनकी लीलाओं का रहस्य जानना बड़ा कठिन है। वे नट की भांति अनेक वेष धारण करते हैं। उनके वास्तविक स्वरूप को न देवता जानते हैं, न ऋषि ही फिर दूसरा ऐसा कौन प्राणी है जो वहां तक जा सके और उसका वर्णन कर सके। वे प्रभु मेरी रक्षा करें।[5]

यह गजेन्द्र मोक्ष कामधुग् है। किसी भी समय किसी भी कामना से इस स्तोत्र का पाठ करने पर सद्यः फल मिलता है। राष्ट्रपिता विश्ववन्द्य महापुरुष महात्मा गांधी अपने महाप्रास्थानिक वेला के दो घंटे पहले अपने शिष्यों से कहे थे— न जाने आज मेरा मन क्यों अत्यधिक चंचल है। सुनो!

---

१. श्रीमद्भागवत ७।८।८-९
२. तत्रैव ७।९।५०
३. तत्रैव ८।३।२-२९
४. तत्रैव ८।३।४
५. तत्रैव ८।३।६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गजेन्द्र मोक्ष का सस्वर पाठ करो। **यह भक्ति का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है।** सचमुच यह स्तोत्र भक्ति शास्त्र के सारे तत्त्वों को अपने में समाहित किए हुए है।

इस स्तोत्र से प्रसन्न होकर निर्विशेष प्रभु आकाश मार्ग से आ रहे हैं —अपने अनन्य भक्त गजेन्द्र के उद्धारार्थ। आज गज की जन्म जन्मांतरीय साधना सफल हो रही है। सब कुछ समर्पित कर चुका है—अपने उपास्य के चरणों में—कुछ है ही नहीं—उस आगत के आतिथ्य के लिए। कुछ कर भी नहीं सकता क्योंकि ग्राह से जुझ रहा है। बेचारा किसी तरह एक कमल पुष्प खींचकर अपने प्रभु को समर्पित कर देता है—

सोऽन्तःसरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो
दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम्।
उत्क्षिप्यसाम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रात्
नारायणाखिल गुरो भगवन् नमस्ते॥[1]

यह स्तुति ज्ञान एवं भक्ति दोनों की दृष्टि से महनीय है। प्रभु को संपूर्ण जगत् का आश्रय के रूप में बताया गया है—

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय निष्कारणायाद्भुतकारणाय।
सर्वागमाम्नायमहार्णवाय नमोऽपवर्गाय परायणाय॥[2]

पितामह ब्रह्मा इस स्कन्ध में तीन बार भगवत्स्तुति करते हैं। प्रथम बार पांचवे अध्याय में—जब समुद्र मंथन से उत्पन्न अमृतपान के लिए देवासुर संग्राम हुआ, उसमें सभी देव श्रीहीन हो गये। देवों के कल्याणार्थ पितामह ब्रह्मा उन लोगों के साथ सच्चिदानन्द परम प्रभु के धाम पधारते है और अपनी वेद वाणी से स्तुति करते हैं।[3] यद्यपि अनन्त का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हो पाता फिर भी ब्रह्मा जी ध्यानस्थ हो एकाग्र मन से इस प्रकार स्तुति करने लगे —भगवान् आप निर्विकार सत्य, अनन्त, आदि पुरुष, सर्वव्यापी, अखण्ड एवं अतर्क्य हैं। प्रभो! हम शरणागत हैं कृपा करके आप अपना दर्शन कराइए

स त्वं नो दर्शयात्मानमस्मत्करणगोचरम्।
प्रपन्नानां दिदृक्षूणां सस्मितं ते मुखाम्बुजम्॥[4]

ब्रह्मा की स्तुति से प्रसन्न गदाधर देवों के बीच में प्रत्यक्ष प्रकट हो गये। उस समय भगवान् के निज अस्त्र सुदर्शन चक्र मूर्तिमान् होकर सेवा कर

---

१. श्रीमद्भागवत ८।३।३२
२. तत्रैव ८।३।१५
३. तत्रैव ८।५।२६-५०
४. तत्रैव ८।५।४५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहा था, तब पुनः ब्रह्मा जी भगवान् की स्तुति करने लगे।[1] जो जन्म, स्थिति और प्रलय से कोई सम्बन्ध नहीं रखते, जो प्राकृत गुणों से रहित एवं मोक्ष स्वरूप परमानन्द के महान् समुद्र हैं—जो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं और जिनका स्वरूप अनन्त है—उन परमऐश्वर्य शाली पुरुष को हम लोग बार-बार नमस्कार करते हैं। हे प्रभो आप इस समय, जैसा करणीय हो वैसा यथा-शीघ्र संपादित करें—

अहं गिरित्रश्च सुरादयो ये दक्षादयोऽग्नेरिव केतवस्ते।
किं वा विदामेश पृथग्विमाता विधत्स्व शं नो द्विज देवमन्त्रम् ॥[2]

तीसरी बार ब्रह्मा जी १८ वें अध्याय में स्तुति करते हैं, जब अदिति के गर्भ में भगवान् पधारते हैं। ब्रह्मा जी गर्भस्थ प्रभु भगवान् नारायण की स्तुति करते हैं[3]। समग्र कीर्त्ति के आश्रय भगवन्! आपकी जय हो। अनन्त शक्तियों के अधिष्ठान! आपके चरणों में नमस्कार है। ब्रह्मण्यदेव त्रिगुणों के नियामक आपके चरणों में बार-बार प्रणाम है। आप समस्त चराचर के स्वामी एवं संपूर्ण जीवों के आश्रय हैं—

त्वं वै प्रजानां स्थिरजङ्गमानां प्रजापतीनामसि सम्भविष्णुः।
दिवौकसां देव दिवश्च्युतानां परायणं नौरिव मज्जतोऽप्सु ॥[4]

समुद्र मंथन से उत्पन्न हलाहल से लगता था कि संपूर्ण संसार ही भस्मीभूत हो जायेगा। त्रैलोक्य में त्राहि-त्राहि मच गयी। कोई नहीं था जो उस भयंकर विष से जीव जगत् का त्राण कर सके। तब प्रजापतिगण कैलाशस्थ भगवान् त्रिलोकीनाथ महादेव की शरण में जाते हैं तथा अपने और प्रजा के उद्धार के लिए त्रिलोकीनाथ की स्तुति करते हैं।[5] देवों के आराध्य महादेव! आप समस्त प्राणियों के आत्मा और उनके जीवनदाता हैं। हम लोग आपकी शरण में आये हैं। त्रिलोकी को भस्म करने वाले इस उग्र विष से हमारी रक्षा कीजिए। प्रभो! आपही ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों रूपों को धारण करते हैं—

गुणमय्या स्वशक्त्यास्य सर्गस्थित्यप्ययान् विभो।
धत्से यदा स्वदृग्भूमन् ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम् ॥[6]

जब भगवान् विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण कर असुरों को मोहित

---

१. श्रीमद्भागवत ८।६।८-१५
२. तत्रैव ८।६।१५
३. तत्रैव ८।१७।२५-२८
४. तत्रैव ८।१७।२८
५. तत्रैव ८।७।२१-३५
६. तत्रैव ८।७।२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किया और देवों को अमृत पिला दिया तब भगवान् शंकर वृषभारूढ़ होकर सती के साथ मधुसूदन के निज धाम गये और स्तुति करने लगे।[1] समस्त देवों के आराध्यदेव ! आप विश्वव्यापी, जगदीश्वर एवं जगत्स्वरूप हैं। समस्त चराचर पदार्थों के मूल कारण ईश्वर और आत्मा भी आप ही हैं। इस जगत् के आदि, अन्त और मध्य आप से ही होते हैं, परन्तु आप आदि, मध्य, अन्त से रहित हैं। आपके अविनाशी स्वरूप में द्रष्टा—दृश्य एवं भोक्ता-भोग्य का भेदभाव नहीं है। वास्तव में आप सत्यचिन्मात्र ब्रह्म ही हैं।[2]

अदिति गर्भधारण करने के लिए उद्यत हुई। पहले महर्षि कश्यप स्नान कर भगवत्स्तुति करने का उपदेश करते हैं। "पयोव्रत" का अनुष्ठान करने से अनुष्ठाता की सारी इच्छाएं शीघ्र ही पूर्ण हो जाती हैं। "पयोव्रत" के अवसर पर सौभाग्यवती स्त्रियों द्वारा कश्यपोदिष्ट स्तोत्र से भगवान् की स्तुति करने का विधान है।[3] सत्तरहवें अध्याय में दो स्तुतियां हैं- अदिति कृत एवं ब्रह्मा-कृत। ब्रह्माकृत स्तुति के विषय में पहले लिखा जा चुका है। जब अदिति कश्यपोदिष्ट स्तुति के द्वारा भगवान् की उपासना करती है तब भगवान् साक्षात् प्रकट हो जाते हैं। उस लोकनाथ को देखकर माता अदिति स्तुति करने लगती है[4] आप यज्ञ के स्वामी हैं और यज्ञ भी स्वयं आप ही हैं। अच्युत ! आपके चरणकमलों का आश्रय लेकर लोग भवसागर से तर जाते हैं। आपके यशकीर्तन का श्रवण भी संसार से तारने वाला है। आपके नामों के श्रवणमात्र से ही जगत् का कल्याण हो जाता है। आदिपुरुष ! जो आपकी शरण में आता है उसके सारे कष्टों को आप सद्यः दूर कर देते हैं। आप विश्व के कारण तथा हृदयस्थ अन्धकार के विनाशक हैं।

विश्वाय विश्वभवनस्थितिसंयमाय स्वैरं गृहीतपुरशक्तिगुणाय भूम्ने।
स्वस्थाय शश्वदुबृंहितपूर्णबोधव्यापादितात्मतमसे हरये नमस्ते॥[5]

एक अन्य अवसर पर जब अनन्त प्रलयजल में धरती डुबी जा रही थी और राजा सत्यव्रत का कोई अन्य शरण्य नहीं रहा तब वैसी स्थिति में अथाह जल में डूबने से पृथिवी को कौन बचायेगा, ऐसा विचार कर राजा ने समस्त इन्द्रिय, मन और बुद्धि को उस सर्जनहार के चरणों में स्थापित कर दिया और भगवान् प्रकट हो गये मत्स्य के रूप में, जगत् का उद्धार करने

१. श्रीमद्भागवत ८।१२।४-१३
२. तत्रैव ८।१२।४-५
३. तत्रैव ८।१६।२९-३७
४. तत्रैव ८।१७।८-११
५. तत्रैव ८।१७।९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हेतु। राजा सत्यव्रत प्रभु की स्तुति करने लगे[1]- प्रभो, संसार के जीवों का आत्मज्ञान अनादि अविद्या से ढक गया है। इसी कारण वे संसार के अनेकों कष्टों से पीड़ित रहते हैं। जब अनायास ही आपके अनुग्रह से वे आपकी शरण में पहुंच जाते हैं, तब आपको प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए हमें बन्धन से छुड़ाकर वास्तविक मुक्ति देने वाले परम गुरु आप ही हैं। और अन्त में राजा सत्यव्रत सर्वतोभावेन अपने आपको प्रभु के चरणों में समर्पित कर हृदय ग्रन्थि छेदन भेदन की याचना करते हैं—

तं त्वामहं देववरं वरेण्यं प्रपद्य ईशं प्रतिबोधनाय।
छिन्ध्यर्थदीपैर्भगवन् वचोभिः ग्रन्थीन् हृदय्यान् विवृणु स्वमोकः॥[2]

नवम स्कंध की स्तुतियां

नवम स्कन्ध में दो स्तुतियां हैं—अम्बरीषकृत सुर्शन चक्र स्तुति और अंशुमान् कृत कपिलस्तुति।[3] जब सुदर्शन के कोप से दुर्वासा ऋषि को त्रिलोकीनाथ भी नहीं बचा पाये तब ऋषि भक्तअम्बरीष की ही शरण में गये। शरणागत की रक्षा के लिए भक्तराज ने सुदर्शन चक्र की स्तुति की।[4]

अम्बरीष की स्तुति से सुदर्शन चक्र शान्त हो जाता है और ऋषि दुर्वासा बच जाते हैं।

सगर के पुत्र कपिल की क्रोधाग्नि में भस्म हो चुके थे। सगर की द्वितीय पत्नी केशिनी के पुत्र असमंजस के आत्मज अंशुमान् ऋषि आश्रम में जाकर महर्षि कपिल की स्तुति करने लगे :—

भगवन्! आप अजन्मा ब्रह्मा जी से भी परे हैं, इसीलिए आपको वे प्रत्यक्ष नहीं देख पाते। हम लोग तो उनकी सृष्टि के अज्ञानी जीव हैं, भला आप को कैसे जान सकते हैं। स्तुति के अन्त में अंशुमान् कहते हैं—हे प्रभो, आपके दर्शन से मोह का दृढ़ पाश कट गया—

अद्यः न सर्वभूतात्मन् कामकर्मेन्द्रियाशयः।
मोहपाशो दृढ़श्छिन्नो भगवंस्तव दर्शनात्॥[5]

यह स्तुति निष्काम स्तुति है और अंशुमान् की भक्ति भंजात्मिका सिद्ध होती है। इस भक्ति से अंशुमान् का ससार बन्धन खत्म हो गया।

---

१. श्रीमद्भागवत ८।२४।४६-५३
२. तत्रैव ८।२४।५३
३. तत्रैव—क्रमशः ९।५।३-११ एवं ९।८।२२-२७
४. तत्रैव ९।५।३
५. तत्रैव ९।८।२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दशम स्कंध में समाहित स्तुतियां

श्रीमद्भागवत में सबसे ज्यादा स्तुतियां दशम स्कन्ध में ही ग्रथित हैं। इसके द्वितीय अध्याय में गर्भ स्तुति है। भगवान् लोकनाथ कंशादि दुष्टों से जीव-जगत् के उद्धार के लिए कंश-कारागार में माता देवकी के गर्भ में अवतरित होते हैं। सभी देवता, ऋषि आदि उसी वेला में कंश के कारागार में आकर प्रभु की स्तुति करते हैं।[1]

प्रभो, आप सत्यसंकल्प हैं। सत्य ही आपकी प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन है। सृष्टि के पूर्व, प्रलय के पश्चात् और संसार की स्थिति के समय इन असत्य अवस्थाओं में भी आप सत्य हैं। हे सत्यस्वरूप! हम आपके शरण-प्रपन्न हैं, हम लोगों की रक्षा करो। जो आपके नामादि का गायन करता है, वह संसार से सद्यः मुक्त हो जाता है—

शृण्वन् गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन् नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते।
क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते॥[2]

जगदीश्वर धरती के उद्धार के लिए कंश-कारागार में प्रकट हो गये। उस समय सम्पूर्ण सूतिकागृह भगवान् की अंगकांति से जगमगा रहा था। भगवान् का प्रभाव समझकर भगवच्चरणों में अपने को स्थित करके वसुदेव और देवकी स्तुति करने लगे।[3] इन दोनों की स्तुति वात्सल्य से भावित निष्काम स्तुति है। वसुदेव जी कहते हैं—मैं समझ गया कि आप प्रकृति से अतीत साक्षात् पुरुषोत्तम हैं। आपका स्वरूप है केवल आनन्द। आप समस्त बुद्धियों के एक मात्र साक्षी हैं। हे प्रभो, आप समस्त राक्षसों के संहारकर्त्ता हैं—

त्वमस्य लोकस्य विभो रिरक्षिषुर्गृहेऽवतीर्णोऽसि ममाखिलेश्वर।
राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपैर्निव्यूह्यमाना निहनिष्यसे चमूः॥[4]

माता देवकी प्रभु से कहती है—विश्वात्मन्, आपका यह रूप अलौकिक है। आप शंखचक्र गदा और कमल की शोभा से युक्त अपना यह चतुर्भुज रूप छिपा लीजिए। प्रलय के समय आप सम्पूर्ण विश्व को अपने शरीर में वैसे ही स्वाभाविक रूप से धारण करते हैं, जैसे कोई मनुष्य अपने शरीर में रहने वाले छिद्ररूप आकाश को। वही परमपुरुष परमात्मा आप मेरे गर्भवासी हुए, यह आपकी अद्भुत मनुष्यलीला नहीं तो और क्या है।[5]

---

१. श्रीमद्भागवत १०।२।२६-४१
२. तत्रैव १०।२।३७
३. तत्रैव—क्रमशः १०।३।१३-२२ एवं २४-३१
४. तत्रैव १०।३।२१
५. तत्रैव १०।३।३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नल कुबर मणिग्रीव भगवान् द्वारा उद्धार किए जाने पर उपकृत होकर प्रभु श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं। वे श्रीकृष्ण के नामकीर्तन, स्मरण, सेवन की ही कामना करते हैं।[1]

गोप-सखा के रूप में प्रभु को पाकर ब्रह्मा जी स्तुति करते हैं।[2] इस दीर्घकाय स्तुति में भगवान् श्रीकृष्ण की सार्वभौमता का प्रतिपादन किया गया है। ब्रह्मा जी कहते हैं—प्रभो एक मात्र आप ही स्तुति करने योग्य हैं। मैं आपके चरणों में नमस्कार करता हूं। आपका यह शरीर वर्षाकालिन मेघ के समान श्यामल है, इस पर स्थित बिजली के समान झिलमिल-झिलमिल करता हुआ पितांम्बर शोभा पाता है। आपके गले में घुंघची की माला, कानों में मकराकृति कुण्डल तथा सिर पर मोर-पंखों का मुकुट है। इन सबकी कान्ति से आपके मुख पर अनोखी छटा छिटक रही है। वक्षस्थल पर लटकती हुई बनमाला और नन्हीं सी हथेली पर दही भात का कौर, बगल में बेंत और सींग तथा कमर की पेट में आपकी पहचान बताने वाली बांसुरी शोभा पा रही है। आपके कमल से सुकोमल परम सुकुमार चरण और सुमधुर वेष पर ही मैं न्योछावर हूं।[3] भगवान् श्रीकृष्ण १५ वें अध्याय में अपने बड़े भ्राता की स्तुति करते हैं[4] - देव शिरोमणि ! यों तो बड़े-बड़े देवता आपके चरणकमलों की पूजा करते हैं, परन्तु देखिए तो ये वृक्ष अपने डालियों से सुन्दर पुष्प एवं फलों की सामग्री लेकर आपके चरणों में झुक रहे हैं, नमस्कार कर रहे हैं। इनका जीवन धन्य हो गया। भगवान् बलराम के दर्शन पाकर मोर नाच रहे हैं, हरिणियां तिरछी नयनों से प्रभु के उपर प्रेम प्रकट कर रही है—

नृत्यन्त्यमी शिखिन ईड्य मुदा हरिण्यः
कुर्वन्ति गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन।
सूक्तैश्च कोकिलगणा गृहमागताय
धन्या वनौकस इयान् हि सतांनिसर्गः॥[5]

यमुना जल को स्वच्छ करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण कालियनाग का दमन कर रहे थे। नागपत्नियां अपनी सुहाग की याचना करती हुई भगवान् श्रीकृष्ण चरण-शरण प्रसन्न हुयी। नागपत्नियों की स्तुति आर्त

---

१. श्रीमद्भागवत १०।१०।३८
२. तत्रैव १०।१४।१-४०
३. तत्रैव १०।१४।१
४. तत्रैव १०।१५।५-८
५. तत्रैव १०।१५।७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्तुति है।[1] भगवत्कृपा प्राप्त्यर्थ ये भक्तिमति नारियां स्तुति करती हैं। प्रभो! आपका यह अवतार दुष्टों को दण्ड देने के लिए हुआ है। इसलिए इस अपराधी को दण्ड देना सर्वथा उचित है। आपकी दृष्टि में शत्रु और मित्र एक समान है, इसलिए आप किसी को दण्ड देते हैं तो वह उसके पापों का प्रायश्चित करने और उसका परम कल्याण के लिए ही होता है। आपने हम लोगों पर बड़ा अनुग्रह किया। यह तो आपकी महती कृपा ही है क्योंकि आप जो दुष्टों को दण्ड देते हैं, उससे उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। इस सर्प के अपराधी होने में तो कोई संदेह नहीं, यदि अपराधी ही नहीं होता तो इसे सर्प योनि ही क्यों मिलती। इसलिए हम सच्चे हृदय से आपके इस क्रोध को भी आपका अनुग्रह ही समझती हैं।[2]

मैं ही इन तीनों लोकों का स्वामी हूं यह मानकर इन्द्र महाभिमानी बन बैठे थे। यज्ञ विध्वंस के बाद कुपित होकर वे ब्रज में मूसलाधार वर्षा करने लगे। भगवान् कृष्ण ने गोवर्धन धारण कर खेल-खेल में संपूर्ण ब्रज वासियों को बचा लिया। इन्द्र का मद भंग हो गया। एकांत में भगवान् के शरणागत हो इन्द्र स्तुति करने लगे[3]—भगवन्! आपका स्वरूप परम शांत, ज्ञानमय, रजोगुण तथा तमोगुण से रहित एवं विशुद्ध सत्त्वमय है। यह गुणों के प्रवाह से प्रतीत होने वाला प्रपंच केवल मायामय है, क्योंकि आपका स्वरूप न जानने के कारण ही आपमें इसकी प्रतीति होती है।[4]

इन्द्रस्तुति से प्रसन्न हो भगवान् जब हंसकर इन्द्र को अभय प्रदान कर रहे थे तभी मनस्विनी कामधेनु हाथ जोड़कर आई और भगवान् की स्तुति करने लगी।[5]

कामधेनु कहती है—

कृष्ण-कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वसंभव।
भवता लोकनाथेन सनाथा वयमच्युत॥[6]

जब नन्द बाबा ने यमुना जल में रात्रि में स्नानार्थ प्रवेश किया तब वरुण के सेवक उन्हें बांधकर वरुण लोक में ले गये। भगवान् श्रीकृष्ण नन्द बाबा को खोजते खोजते लोकपाल वरुण के यहां पधारे। भगवान् का प्रत्यक्ष दर्शन पाकर वरुण का रोम-रोम खिल उठा। तदनंतर वे भगवत्स्तुति करने

---

१. श्रीमद्भागवत १०।१६।३३-५३
२. तत्रैव १०।१६।३३-३४
३. तत्रैव १०।२७।४-१२
४. तत्रैव १०।२७।४
५. तत्रैव १०।२७।१९-२१
६. तत्रैव १०।२७।१९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लगे—प्रभो, मेरा शरीर धारण करना आज सफल हो गया। आज मुझे संपूर्ण पुरुषार्थ प्राप्त हो गया, क्योंकि आज आपकी चरणों की सेवा का सुअवसर प्राप्त हुआ है। भगवन्! जिन्हें भी आपके चरण-कमलों की सेवा का सुअवसर मिला है, वे सद्यः भवसागर से पार हो गये। आप भक्तों के भगवान्, वेदान्तियों के ब्रह्म तथा योगियों के परमात्मा हैं। आपको नमस्कार है। हम मूढ़ दास पर कृपा कीजिए।[1]

वेणुरव सुनकर गोपियां यथापूर्व स्थिति में ही निशीथ में भगवान् कृष्ण के पास उपस्थित हो गयी। भगवान् कृष्ण अपने पूर्वगृह में लौटने के लिए गोपियों को समझाने लगे। गोपियां कब मानने वाली थीं? आंसुओं की सरिता गोपियों की आंखों से प्रवाहित होने लगी। वे आर्त भाव से पुकार उठी—भगवन्! आपको छोड़कर हम कहां जाएं?

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं संत्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम्।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मात्यजास्मान् देवो यथाऽऽदिपुरुषो भजते मुमुक्षुन्॥[2]

आर्त भाव से गोपियां ११ श्लोकों में प्रभु की स्तुति करती हैं।[3]

भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। गोपियां अपने प्राण बल्लभ की गवेषणा करती चलती हैं। अन्त में यमुनाजी के पावन पुलिन—रमणरेती में लौटकर बड़ी उत्कण्ठापूर्वक प्रभु की प्रतीक्षा करती हुई आपस में उनका गुण-गान करने लगी।[4] यही स्तुति आज भक्ति संसार में "गोपीगीत" के नाम से प्रसिद्ध है। कुन्ती की तरह ही गोपियां भी प्रभु के उपकारों को याद करती हैं—हे प्रभो, आपने बार-बार रक्षा की है। हे नाथ! प्रत्यक्ष होवो। तुम हम लोगों का उद्धार करो। पुरुषशिरोमणे! कहां तक गिनाएं, आप हमेशा हम लोगों की रक्षा करते आये हैं—

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद् वर्षमारुताद् वैद्युतानलात्।
वृषमयात्मजाद् विश्वतोभयादृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः॥[5]

अन्त में गोपियां अपना शरीर, मन तथा इन्द्रियों को भगवान् में समर्पित कर उन्हीं की हो जाती है।[6]

श्रीकृष्ण के चरण-स्पर्श से अजगर योनि से मुक्त होने पर सुदर्शन

---

१. श्रीमद्भागवत १०।२८।५-८
२. तत्रैव १०।२९।३१
३. तत्रैव १०।२९।३१-४१
४. तत्रैव १०।११।१-१९
५. तत्रैव १०।३१।३
६. तत्रैव १०।३१।१९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपकृत होकर उनकी स्तुति करता है[1]—भक्तवत्सल। महायोगेश्वर, पुरुषोत्तम! मैं आपकी शरण में हूं। इन्द्रादि समस्त लोकेश्वरों के परमेश्वर! स्वयं प्रकाशमान् परमात्मन्, मुझे जाने के लिए आज्ञा दीजिए।[2]

केशी और व्योमासुर से मुक्त देवलोग जब श्रीकृष्ण की अर्चना कर रहे थे तब परमभागवत नारदजी आकर एकांत में श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे। नारद ऋषि भगवान् के लोकमंगलकारी स्वरूप का प्रतिपादन करते हैं।[3]

जल के अन्तर्गत भगवान् का अपूर्व रूप निरखकर अक्रूरजी का हृदय परमानंद से आप्यायित हो गया। वे साहस बटोरकर भगवान् की स्तुति करने लगे।[4] हे प्रभो! आप समस्त कारणों के परम कारण हैं। आप ही अविनाशी पुरुषोत्तम नारायण हैं तथा आपके ही नाभि-कमल से ब्रह्माजी का आविर्भाव हुआ है, जिन्होंने इस चराचर जगत् की सृष्टि की है। मैं आपके चरण कमलों में नमस्कार करता हूं।[5] कुब्जा के उद्धार के बाद कृष्ण-बलराम अक्रूर के यहां पधारते हैं। मनुष्यलोकशिरोमणि को अपने घर पधारने पर अक्रूर धन्य हो गये। गद्गद् कण्ठ से श्रीकृष्ण और बलराम की स्तुति करने लगे।[6]

दिष्ट्या जनार्दन भवानिह नः प्रतीतो योगेश्वरैरपि दुरापगतिः सुरेशः।
छिन्ध्याशु नः सुतकलत्रधनाप्तगेह देहादिमोहरशनां भवदीयमायाम्॥[7]

भगवान् जब सुदामा मालाकार के यहां पहुंचे तो वह माली समस्त पुष्पमालाओं को जिन्हें उसने कंश के लिए बनाया था, प्रभु को समर्पित कर देता है और तदुपरांत उनकी स्तुति करता है।[8] भक्त सुदामा प्रभु से वरदान के रूप में अचला भक्ति की याचना करता है— प्रभो! आप ही समस्त प्राणियों के आत्मा हैं। सर्वस्वरूप! आपके चरणों में मेरी अविचल भक्ति हो। आपके भक्तों से मेरा सौहार्द-मैत्री का सम्बन्ध हो और समस्त प्राणियों के प्रति अहैतुक दया का भाव बना रहे।[9] जब कालयवन मुचुकुन्द की दृष्टि

---

१. श्रीमद्भागवत १०।३४।१५-१७
२. तत्रैव १०।३४।१६
३. तत्रैव १०।३७।११-२४
४. तत्रैव १०।४०।१-३०
५. तत्रैव १०।४०।१
६. तत्रैव १०।४८।१८-२७
७. तत्रैव १०।४८।२७
८. तत्रैव १०।४१।४५-५१
९. तत्रैव १०।४१।५१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पड़ते ही भस्म हो गया तब भगवान् श्रीकृष्ण ने उस निद्रा रहित परम भक्त मुचुकुन्द को अपना दर्शन दिया। उन्हें त्रिलोकपति जानकर मुचुकुन्द विविध प्रकार से श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे।[1] भक्तराज मुचुकुन्द सत्त्वगुण रजोगुण और तमोगुण से सम्बन्ध रखने वाली समस्त कामनाओं को छोड़कर चिस्स्वरूप भगवान का चरण-शरण ग्रहण करता है। हे प्रभो! आप शरणापन्न की रक्षा कीजिए—

शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्मन्नभयमृतमशोकं पाहि माऽऽपन्नमीश।[2]

पूर्व विश्लेषित स्तुतियों के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में अनेक स्तुतियां हैं यथा—कौरवगणकृत बलराम स्तुति (१०।६८) जाम्बवान् कृत कृष्ण स्तुति (१०।५६) नारदकृत श्रीकृष्ण स्तुति (१०।६९ एवं ७०) पांडवगणकृत स्तुति (१०।८३) पृथिवीकृत स्तुति (१०।५९) महेश्वरकृत स्तुति (१०।६३) मुनिगणकृत स्तुति (१०।८४) यमुनाकृत बलराम स्तुति (१०।६५) राजागणकृत कृष्णस्तुति (१०।७० एवं ७३) राजनृग कृत स्तुति (१०।६४) राजा बहुलाश्व कृत स्तुति (१०।८६) वेदकृत कृष्णस्तुति(१०।८७) श्रुतदेवकृत स्तुति (१०।८६) आदि।

एकादश स्कंध में समाहित स्तुतियां

श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में चार स्तुतियां हैं। प्रथम स्तुति चतुर्थ अध्याय में निहित है। जब नर-नारायण ऋषि बदरिकाश्रम में तपस्या कर रहे थे तो इन्द्र ने पदच्युति के भय से उनके तप-भंग के लिए कामादिकों को भेजा। भगवान् नर-नारायण थोड़ा भी विचलित नहीं हुए। कामादिक भगवान् से अत्यधिक डर गए थे लेकिन प्रभु ने उन सबों को अभयदान दिया। इस प्रकार अभय प्राप्त कर कामादि देव भगवान् नर-नारायण की स्तुति करने लगे।[3] प्रभो! आप निर्विकार हैं। बड़े-बड़े आत्माराम एवं धीर पुरुष आपके चरण कमलों को प्रणाम करते हैं। आपके भक्त आपकी भक्ति के प्रभाव से अमरावती का भी उल्लंघन कर आपके परमपद को प्राप्त होते हैं।[4] नवें योगीश्वर करभाजन राजा निमि के प्रश्नों के समाधान के क्रम में द्वापर युग में लोगों द्वारा कृत भगवान् कृष्ण एवं संकर्षण स्तुति का उल्लेख करते हैं। द्वापर युगीन मनुष्य इस प्रकार प्रभु की स्तुति करते हैं— हे ज्ञान स्वरूप भगवान् वासुदेव एवं क्रियाशक्ति रूप संकर्षण! हम आपको बार-बार नमस्कार करते हैं। भगवान् प्रद्युम्न और अनिरुद्ध रूप में आपको नमस्कार करते हैं।

---

१. श्रीमद्भागवत १०।५१।४६-५८
२. तत्रैव १०।५१।५८
३. तत्रैव ११।४।९-११
४. तत्रैव ११।४।१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋषि नारायण, महात्मा नर, विश्वेश्वर, विश्व रूप और सर्वभूतात्मा भगवान् को हम नमस्कार करते हैं।[1]

भगवान् स्वधाम गमन की तैयारी कर रहे थे। उस समय सभी देवगण भगवान् की स्तुति करते हैं—स्वामी![2] कर्मों के फंदों से छूटने की इच्छा वाले मुमुक्षुजन भक्ति भाव से अपने हृदय में जिसका चिन्तन करते हैं, आपके उसी चरण कमलों को हमलोगों ने अपने बुद्धि, इन्द्रिय, मन और वाणी से नमस्कार किया है। अजित! आप मायिक रज आदि गुणों में स्थित होकर इस अचिन्त्य नामरूपात्मक प्रपंच की त्रिगुणमयी माया के द्वारा अपने आप में ही रचना करते हैं, पालन एवं संहार करते हैं।[3]

सोलहवें अध्याय में उद्धव श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं।[4] भगवत्विभूतियों को जानने की कामना से उद्धव भगवान् की स्तुति करते हैं—भगवान् आप स्वयं परब्रह्म हैं, न आपका आदि है और न अन्त। आप आवरणरहित अद्वितीय तत्त्व हैं। समस्त प्राणियों एवं पदार्थों की उत्पत्ति, स्थिति, रक्षा और प्रलय के कारणभूत आप ही हैं। परन्तु जिन लोगों ने अपने मन और इन्द्रियों को वश में नहीं किया है, वे आपको नहीं जान सकते। आपकी यथोचित उपासना तो ब्रह्मवेत्ता ऋषि लोग ही करते हैं।[5]

द्वादश स्कंधगत स्तुति-सम्पदा

प्रथम स्तुति इस स्कन्ध के छठवें अध्याय में ऋषि याज्ञवल्क्य द्वारा भगवान् भुवन भास्कर को समर्पित है।[6] गुरु की अपेक्षा अत्यधिक विद्या अर्जित करने के लिए याज्ञवल्क्य इस मन्त्र द्वारा सूर्य नारायण की उपासना करते हैं—ॐ नमो भगवते आदित्यायाखिलजगतामात्मस्वरूपेण कालस्वरूपेण चतुर्विधभूतनिकायानां ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तानामन्तर्हृदयेषु····लोकयात्रामनुवहति।[7]

मार्कण्डेय ऋषि जब तपस्या कर रहे थे तब उन पर कृपावर्षा करने के लिए भगवान् नर-नारायण प्रकट हुए। उचित आतिथ्य सत्कार के बाद चरणों में शिरसा प्रणाम कर ऋषि मार्कण्डेय नर-नारायण की स्तुति करते

---

१. श्रीमद्भागवत ११।५।२९-३०
२. तत्रैव ११।६।७-१९
३. तत्रैव ११।६।७
४. तत्रैव ११।६।१-५
५. तत्रैव ११।१६।१-२
६. तत्रैव १२।६।६७-७२
७. तत्रैव १२।६।६७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं।[1] मार्कण्डेय की भक्ति मर्यादा भक्ति है और स्तुति निष्काम भावना से प्रेरित है। ऋषि भगवान् के गुणों का इस प्रकार वर्णन करते हैं—भगवन्! मैं अल्पज्ञ जीव भला आपकी अनन्त महिमा का वर्णन कैसे करूं? आपकी प्रेरणा से ही सम्पूर्ण प्राणियों में यहां तक कि हमलोगों में भी प्राण का संचार होता है और फिर उसी के कारण वाणी, मन तथा इंद्रियों में बोलने, सोचने, विचारने एवं करने-जानने की शक्ति आती है। इस प्रकार सबके प्रेरक और परम स्वतंत्र होने पर भी आप अपना भजन करने वाले भक्त के प्रेम बन्धन में बंधे हुए हैं।[2]

ऋषि भगवान् नर-नारायण की शरणागति होकर अनन्य भाव से तप कर रहे थे तभी नन्दीश्वरारूढ़ भगवान् शंकर एवं पार्वती आकाश मार्ग में विचरण करते हुए उधर आ पहुंचे। उनके साथ बहुत से गण भी थे। भगवान् शंकर और पार्वती को अपने पास आया देख ऋषि प्रवर स्तुति करने लगे।[3] उस स्तुति के क्रम में ऋषि भगवान् शंकर से अच्युता भक्ति की कामना करते हैं—

वरमेकं वृणेऽथापि पूर्णात् कामाभिवर्षणात्।
भगवत्यच्युतां भक्तिं तत्परेषु तथा त्वयि॥[4]

इस स्कन्ध में श्रीसूत जी दो बार भगवान् की स्तुति करते हैं।[5] प्रथम बार ग्यारहवें अध्याय में सूत जी कहते हैं—सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण! आप अर्जुन के सखा हैं। आपने यदुवंश शिरोमणि के रूप में अवतार ग्रहण करके पृथिवी के द्रोही भूपालों को भस्म कर दिया है। आपका पराक्रम सदा एक रस रहता है। व्रज की गोपबालाएं एवं नारदादि प्रेमी भक्त आपके निर्मल यश का हमेशा गायन करते रहते हैं। गोविन्द! आपके नाम, गुण और लीलादि का श्रवण करने से जीव का मंगल होता है। हम सब आपके सेवक हैं। कृपा करके हमारी रक्षा कीजिए।[6] इसी प्रकार एक स्तुति में सूत जी भगवत्भक्ति की सर्वश्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हैं। भक्ति-भावित मन से "हरयेनमः" इस नारायणीय मन्त्रोच्चारण मात्र से ही भक्त सारे पापों से मुक्त हो जाते हैं।[7] जैसे सूर्य अन्धकार को एवं आंधी बादलों

---

१. श्रीमद्भागवत १२।८।४०-४९
२. तत्रैव १२।८।४०
३. तत्रैव १२।१०।२८-३४
४. तत्रैव १२।१०।३४
५. तत्रैव १२।११।४-२६ एवं १२।१२
६. तत्रैव १२।११।२५
७. तत्रैव १२।१२।४६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को तितर-बितर कर देती है उसी प्रकार भगवान् के नामगुणकीर्तन एवं श्रवण से सारे पाप विनष्ट हो जाते हैं

संकीर्त्यमानो भगवाननन्तः श्रुतानुभावो व्यसनं हि पुंसाम् ।
प्रविश्य चित्तं विधुनोत्यशेषं यथा तमोऽर्कोऽभ्रमिवातिवातः ॥[1]

१. श्रीमद्भागवत १२।१२।४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. दार्शनिक एवं धार्मिक दृष्टियां

इस महापुराण में अनेक विषयों—दर्शन, भक्ति, कर्म, ज्ञान आदि का विवेचन उपलब्ध होता है। प्रस्तुत सन्दर्भ में भागवतीय स्तुतियों में विद्यमान दार्शनिक विचारों पर प्रकाश डाला जायेगा।

श्रीमद्भागवत का प्रथम मांगलिक श्लोक ही उसके दार्शनिक स्वरूप को स्पष्ट कर देता है—

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्।
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः॥
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा।
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥[1]

इस प्रथम श्लोक में ही परमसत्य के चिन्तन का निर्देश है। जिससे इस जगत् की सृष्टि स्थिति और प्रलय होते हैं, वह सभी सद्रूप पदार्थों में अनुगत है और असत् पदार्थों से पृथक् है, जड़ नहीं चेतन है, परतंत्र नहीं स्वतंत्र है, स्वयं प्रकाश है, जो ब्रह्मा अथवा हिरण्यगर्भ नहीं प्रत्युत उन्हें संकल्प से ही वेद ज्ञान का दान किया है। जिसके सम्बन्ध में बड़े-बड़े विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं, जैसे तेजोमयी सूर्यरश्मियों में जल का, जल में स्थल का और स्थल में जल का भ्रम होता है वैसे ही जिसमें यह त्रिगुणमयी जाग्रत् स्वप्नसुषुप्तिरूपा सृष्टि मिथ्या होने पर भी अधिष्ठान सत्ता से सत्यवत् प्रतीत हो रही है, उस अपनी स्वयं प्रकाश ज्योति से सर्वदा और सर्वथा अपने मायाकार्य से मुक्त रहने वाले परमसत्य रूप परमात्मा का हम ध्यान करते हैं।

इस एक ही श्लोक में परमसत्य परमात्मा, ईश्वर, माया, जीव, और जगत् के स्वरूप को उद्घाटित कर दिया गया है। वह परब्रह्मपरमेश्वर ही श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य है जो जगत् का उपादान और निमित्त कारण दोनों है। वह सृष्टि स्थिति और लय तीनों का आधार है। वह स्वयंप्रकाश, सर्वव्यापक, चेतन, तथा अवाङ्मनसगोचर है। ब्रह्मा, हिरण्यगर्भादि नामाख्यात ईश्वर उसी के शक्ति के आधार पर अपनी सत्ता धारण करते हैं। माया उसकी अपनी शक्ति है जो जगत् को विमोहित कर देती है।

जगत् की सत्ता भ्रमात्मक है वह सत्यस्वरूप नहीं बल्कि जैसे सूर्य की

१. श्रीमद्भागवतमहापुराण १.१.१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रश्मियों में जल का भ्रम हो जाता है उसी प्रकार सत्यस्वरूप परमात्मा में माया के कारण जगत् का भ्रम हो जाता है। यह जगत् (सृष्टि) त्रिगुणात्मक किंवा जाग्रत स्वप्नसुषुप्ति रूप है। मिथ्या होने पर भी अपनी अधिष्ठान सत्ता से सत्यवत् प्रतीत होता है।

माया विश्वविमोहिनी है। बड़े-बड़े महात्माओं को भी अपने जाल में फंसा लेती है। यह प्रभु परमेश्वर की शक्ति है, लेकिन स्वयं परमेश्वर इससे सर्वथा असंपृक्त हैं।

ईश्वर तत्त्व पर भी प्रकाश पड़ता है। ब्रह्मा, हिरण्यगर्भ आदि ईश्वरपदवाच्य हैं। इसे हम विराट् भी कह सकते हैं। ईश्वर की उत्पत्ति स्वराट् से होती है। ईश्वर शासन करता है, सृष्टि स्थिति और प्रलय को धारण करता है।

जीव, तत्त्व वस्तुतः परमेश्वर का ही अंश है लेकिन माया के कारण वह अपने को नश्वर, मरणधर्मा, और अल्पसत्त्व समझता है। वस्तुतः यह उसका स्वरूप नहीं है, केवल भ्रमाभास मात्र है। संसारबन्धन के छूटते ही वह ब्रह्मस्वरूप हो जाता है—किंवा अपने वास्तविक रूप में स्थिर हो जाता है—

अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम्।
एवं समीक्षन्नात्मानमात्मन्याधाय निष्कले॥[1]

श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में ब्रह्म, ईश्वर, जगत्, जीव, त्रिगुण कारण, प्रकृति, माया आदि का विस्तृत विवेचन उपलब्ध होता है।

ब्रह्म (परमेश्वर)—

श्रीमद्भागवत की सभी स्तुतियों में परमब्रह्मपरमेश्वर के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। सभी का एक मात्र प्रतिपाद्य वही निर्विकार, अनन्त, सच्चिदानन्दस्वरूप है। श्रीमद्भागवत का प्रारम्भ और अंत उसी के स्वरूप वर्णन के साथ होता है। वह जगत् का उपादान और निमित्त कारण दोनों है, सृष्टि, स्थिति तथा लय तीनों का आधार है, वह स्वयंप्रकाश, सर्वव्यापक तथा अवाङ्मनसगोचर है। हिरण्यगर्भ ब्रह्मा आदि देवता उसी पर आधारित रहते हैं। वह विमल, विशोक, अमृतस्वरूप एवं सत्यरूप है।[2] वह अव्यक्त, सबका कारण, ब्रह्म, ज्योतिस्वरूप समस्त गुणों से रहित, विकारहीन, विशेषणरहित, अनिवर्चनीय, निष्क्रिय और केवल विशुद्ध सत्ता के रूप में है।[3] सृष्टि के अन्त में सबको अपने में समाहित करके केवल शेष स्वरूप बचा

१. श्रीमद्भागवत १२.५.११
२. तत्रैव १.१.१ तथा १२.१३.१४
३. तत्रैव १०.३.२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहता है।[1]

श्रीमद्भागवत में वर्णित आश्रय तत्त्व ही ब्रह्म है। इसमें श्रीकृष्ण और केवलानन्दानुभवमात्रसंवेद्य ब्रह्म में एकता स्थापित की गई है। ब्रह्मसूत्र के ब्रह्म, गीता के पुरुषोत्तम और श्रीमद्भागवत के श्रीकृष्ण एक ही वस्तु है। श्रीमद्भागवत का कथन है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥[2]

अर्थात् तत्त्ववेत्तालोग ज्ञात और ज्ञेय से रहित अद्वितीय सच्चिदानंद ज्ञान को ही तत्त्व कहते हैं। उसे कोई ब्रह्म, कोई परमात्मा नाम से पुकारते हैं। वही नारायण, वासुदेव सात्वतपति, कृष्ण, आत्माराम, शांत एवं कैवल्यपति आदि नामों से अभिहित किया जाता है।[3] चतुश्लोकी भागवत में स्वयं भगवान् द्वारा अपना स्वरूप प्रतिपादित किया गया है। सृष्टि के पूर्व केवल मैं ही था, मेरे अतिरिक्त स्थूल सूक्ष्म पदार्थ और उसका कारण अज्ञानादि कुछ नहीं था। जो कुछ भी है, वह सब मैं ही हूं। सब पदार्थ में विद्यमान होने पर भी माया के कारण मेरी प्रतीति नहीं होती है। मैं संपूर्ण प्राणियों में प्रविष्ट हूं लेकिन मेरे अतिरिक्त कुछ नहीं है। यह ब्रह्म नहीं, यह ब्रह्म नहीं—इस निषेध पद्धति से यह ब्रह्म है यह ब्रह्म है इस अन्वय की पद्धति से यही सिद्ध होता है कि वह सर्वातीत भगवान् सर्वत्रावस्थित है और वही एक वास्तविक तत्त्व है।[4]

इस चतुश्लोकी में यह स्पष्ट होता है कि ब्रह्म ही एक सत्य पदार्थ है, वह सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त है और सबका अधिष्ठान है। वह निरपेक्ष है।

व्यक्त और अव्यक्त जगत् सम्पूर्ण आपका ही रूप है। आप सर्वशक्तिमानकाल, सर्वव्यापक, अविनाशी सबके साक्षी हैं।[5] जैसे एक ही अग्नि सभी लकड़ियों में व्याप्त रहती है वैसे ही आप सभी प्राणियों के आत्मा हैं। आप सबके अधिष्ठान हैं पर स्वयं अधिष्ठान रहित हैं। आप सर्वशक्तिमान् एवं सत्यसंकल्प हैं। आप विशुद्ध विज्ञानघन परमानन्द स्वरूप, अखण्ड, एकरस, निरतिशय, और सच्चिदानन्द स्वरूप हैं।[6] आप आद्येश्वर, प्रकृति से परे,

---

१. श्रीमद्भागवत १०.३.२५
२. तत्रैव १.२.११
३. तत्रैव १.८.२१,२२,२७
४. तत्रैव २.९.३२-३५
५. तत्रैव १०.१०.३०,३१
६. तत्रैव १०.३७.१२,१३,२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सभी भूतों के अन्तर्बहि अवस्थित, विश्वेश, और विश्वरूप हैं।[1] आप अकिंचनधन, विश्वात्मा, मायाप्रपंच से अस्पृष्ट, स्वयं स्थित, परमशांत, अनादि और अनन्त हैं।[2]

बुद्धि की जाग्रतादि सम्पूर्ण अवस्थाओं से रहित, शुद्ध, चिन्मय, भेद-रहित हैं। नित्यमुक्त, सर्वज्ञ, परमात्म स्वरूप, निर्विकार, आदिपुरुष, जगत् के कारण, अखण्ड, अनादि, अनन्त, आनन्दमय, निर्विकार हैं।[3] प्रकृति आदि से परे एवं अनन्त विभूतियों से पूर्ण हैं।[4] संसार और उसके कारण से परे स्वयंप्रकाश, स्वयंसिद्ध, सतात्मक, आत्मभूत, नाम-जन्म-कर्म-रूप आदि से रहित सबके साक्षी एवं मनवाणी चित्त से अत्यन्त दूर हैं, अविनाशी सर्व-शक्तिमान्, अव्यक्त इन्दियातीत एवं अत्यन्त सूक्ष्म हैं।[5]

आप अनन्त एवं अचिन्त्य ऐश्वर्य के निधि ज्ञान-अनुभव एवं अनन्त महिमाशक्ति सम्पन्न, काल, सूक्ष्म, कूटस्थ, प्रमाणमूल, कवि, सर्वाध्यक्ष, गुण-प्रदीप, गुणों और वृत्तियों के साक्षी, गुणों से रहित होने पर भी गुणों के द्वारा विश्व की उत्पत्ति, स्थिति, और प्रलय की लीला करते हैं।[6] आप सत्य संकल्प, सत्य के द्वारा प्राप्तव्य, त्रिकाल में सत्य, पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश के सत्यकारण, अन्तर्यामी, शरणागतों के रक्षक एवं परमार्थस्वरूप हैं।[7] तथा जगत् हितार्थ सगुणरूप में अवतरित होते हैं।

अद्वैत की प्रतिष्ठा

श्रीमद्भागवत में अद्वैत तत्त्व (ब्रह्म) की प्रतिष्ठा की गई है। वह एक है लेकिन बहुत रूपों में परिलक्षित होता है। "एकंसद्विप्रावहुधावदन्ति" इस वेद वचन की स्तुतियों में विस्तृत व्याख्या की गई है। जैसे एक ही सूर्य अनेक आंखों से अनेक रूपों में दिखते हैं वैसे ही भगवान् अपने द्वारा सृष्ट शरीरधारियों के हृदय में अनेक रूप में जान पड़ते हैं। वस्तुतः वे एक और सबके हृदय में विराजमान हैं।[8] आप एक ही हैं परन्तु अपनी अनन्त गुणमयी मायाशक्ति से इस महदादि सम्पूर्ण प्रपंच को रचकर अन्तर्यामी रूप से उसमें प्रवेश कर जाते हैं। अनेक देवों के रूप में स्थित होकर भासते हैं जैसे तरह-

१. श्रीमद्भागवत १.८.२७
२. तत्रैव ४.२०.३१
३. तत्रैव ४.९.१६
४. तत्रैव ४.३०.३१
५. तत्रैव ८.३.३,२१
६. तत्रैव १०.१६.४८
७. तत्रैव १०.२.१
८. तत्रैव १.९.४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तरह की लकड़ियों में प्रकट हुई अग्नि अपनी उपाधियों के रूप में भिन्न-भिन्न रूप में भासती है, वस्तुतः वह एक ही है।[१]

सभी उपासनाओं के मूल

साधु-योगी अपने अन्तःकरण में स्थित अन्तर्यामी के रूप में, समस्त भूत-भौतिक पदार्थों में व्याप्त परमात्मा के रूप में और सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि देवमण्डलों में स्थित इष्टदेवता के रूप में तथा उनके साक्षी, महापुरुष एवं नियन्ता के रूप में परब्रह्म परमेश्वर की ही उपासना करते हैं।[२] भक्त भिन्न-भिन्न देवता के रूप में आप ही की उपासना करते हैं क्योंकि आप ही समस्त देवताओं के रूप में हैं और सर्वेश्वर भी हैं।[३] जैसे चारों दिशाओं से प्रवाहित होकर नदियां समुद्र में प्रवेश करती है वैसे ही सभी प्रकार की उपासनाएं आप ही को समर्पित होती हैं।[४]

समस्त कारणों के परम कारण

आप ही जगत् के आदि कारण हैं। यह सृष्टि आपसे ही उत्पन्न होती है। आप ही अपनी शक्ति से इसकी रचना करते हैं और अपनी काल, माया आदि शक्तियों से इसमें प्रविष्ट होकर जितनी भी वस्तुएं देखी और सुनी जाती है उनके रूप में प्रतीत हो रहे हैं।[५] जैसे पृथिवी आदि कारण तत्त्वों से ही उनके कार्य स्थावर जंगम शरीर बनते है, वे उनमें अनुप्रविष्ट से होकर अनेक रूपों में प्रतीत होते हैं, परन्तु वे वास्तव में कारण रूप ही हैं। इसी प्रकार केवल आप ही हैं लेकिन अपने कार्य रूप जगत् में विभिन्न रूपों में उद्भासित होते हैं।[६] आप रजोगुणी, सत्त्व गुणी एवं तमोगुणी शक्तियों से सृष्टि की रचना, पालन और संहार करते हैं।

आप प्रकृति आदि समस्त कारणों के परम कारण हैं, सारा संसार पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार, महत्तत्त्व, प्रकृति-पुरुष, मन, इन्द्रिय, सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषय ये सबके सब आप से ही उत्पन्न होते हैं।[७] आप समस्त इन्द्रियों और उनके विषयों के द्रष्टा हैं, समस्त प्रतीतियों के आधार हैं, समस्त वस्तुओं के सत्ता रूप में केवल आप हैं। आप सबके

---

१. श्रीमद्भागवत ४.९.७
२. तत्रैव १०.४०.३
३. तत्रैव १०.४०.९
४. तत्रैव १०.४०.१०
५. तत्रैव १०.४८.१९
६. तत्रैव १०.४८.२०
७. तत्रैव १०.४८.२१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वामी, समस्त क्षेत्रों के एक मात्र ज्ञात एवं सर्वसाक्षी हैं। आप स्वयं ही अपने कारण हैं।[१] आप सबके मूल कारण हैं, आपका कोई कारण नहीं। कारण होने पर भी आप में विकार नहीं होता इसलिए आप अद्भुत कारण हैं। जैसे समस्त नदी-झरणों आदि का परम आश्रय समुद्र है वैसे ही आप समस्त वेद और शास्त्रों के परम तात्पर्य हैं।[२] आप जगत् के मूल कारण हैं और समस्त भूत समुदाय के हृदय पुरुष रूप में विद्यमान हैं, सम्पूर्ण जगत् के एक मात्र स्वामी हैं, आपही के कारण इस संसार में चेतना का विस्तार होता है।[३] आप स्थूल, सूक्ष्म, समस्त गतियों के जानने वाले तथा सबके साक्षी हैं। आप नामरूपात्मक विश्व प्रपंच का निषध तथा उसके अधिष्ठान होने के कारण विश्व रूप भी हैं। आप कर्त्तापन से रहित निष्क्रिय हैं—तथापि अनादि काल से शक्ति को स्वीकार करके प्रकृति गुणों के द्वारा आप इस विश्व की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय की लीला करते हैं क्योंकि आपकी लीलाएं अमोघ हैं। आप सृष्टिकर्त्ता, सर्वयोनियों के स्रष्टा, सबके उत्पत्ति एवं लय स्थान हैं।[४] आप समस्त प्राणियों और पदार्थों के अधिष्ठान हैं, सबके आधार है—

तव परि ये चरन्त्यखिलसत्त्वनिकेततया।[५]

सृष्टि के कर्त्ता : पालक और संहारक

आप स्वयं समस्त क्रियाओं, विकारों एवं गुणों से रहित हैं फिर जगत की सृष्टि, स्थिति और संहार के लिए आप तीनों गुणों—रज, सत्त्व और तम को धारण करते हैं अथवा आप गुणों के आश्रय स्थान हैं।[६] आप लोक रक्षणार्थ अपनी माया से सत्त्वमयरूप, उत्पत्ति के लिए रजःप्रधान रक्तवर्णमय-रूप और प्रलय के लिए तमःवर्ण प्रधान रूप धारण करते हैं।[७] इन्द्रियातीत, समस्त भाव विकारों से रहित होकर भी आप इस चित्र-विचित्र जगत् का निर्माण करते हैं और स्वयं इसमें आत्मारूप में प्रवेश भी करते हैं। आप क्रियाशक्ति (प्राण) और ज्ञानशक्ति (जीव) के रूप में जगत् का पालन-पोषण करते हैं।[८] चन्द्रमा की कांति, अग्नि का तेज, सूर्य की प्रभा, नक्षत्र और विद्युत्

१. श्रीमद्भागवत १०.४०.२
२. तत्रैव ८.३.१५
३. तत्रैव ८.३.२
४. तत्रैव १०.८७.२४
५. तत्रैव १०.८७.२७
६. तत्रैव १०.३.१९
७. तत्रैव १०.३.२०
८. तत्रैव १०.८५.५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि की स्फुरण रूप से सत्ता, पर्वतों की स्थिरता, पृथिवी की साधारण शक्ति रूप वृत्ति और गंध रूप गुण आदि को आपही धारण करते हैं।[1] सृष्टि के प्रारम्भ में अपनी माया से ही गुणों की सृष्टि की और उन गुणों को स्वीकार करके जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय करते रहते हैं।[2] इस प्रकार स्तुतियों में अनेक स्थलों पर ब्रह्म को सृष्टिकर्त्ता, पालनकर्त्ता एवं संहारकर्त्ता कहा गया है।

सम्पूर्ण संसार के एक-एक पदार्थ में

श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में ब्रह्म की सर्वव्यापकता का प्रतिपादन किया गया है। वह सृष्टि के प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान है। वह सबका नियामक है।

आप समस्त शरीरधारियों के हृदय में साक्षी एवं अंतर्यामी के रूप में विद्यमान हैं।[3] जैसे एक ही अग्नि सभी लड़कियों में विद्यमान रहती है वैसे आप समस्त प्राणियों के आत्मा हैं।[4] आप घट-घट में अपने अचिन्त्य शक्ति से विद्यमान रहते हैं एवं आपकी कीर्त्ति समस्त दिशाओं में व्याप्त है।[5] आप स्वयं आदि अन्त से रहित सभी प्राणियों में स्थित रहते हैं।[6] जैसे एक ही सूर्य अनेक आंखों से अनेक रूपों में दीखते हैं वैसे ही आप अपने ही द्वारा रचित अनेक शरीरधारियों के हृदय में रहते हैं। वास्तव में आप एक हैं और सबके हृदय में विद्यमान हैं।[7] जल में जो जीवन देने, तृप्त करने तथा शुद्ध करने की शक्ति है वह आपही हैं। अन्तःकरण की शक्ति, इन्द्रिय शक्ति, शरीरशक्ति, वायु की शक्ति आदि सब आप ही के हैं।[8]

तात्पर्यतः यह प्रतीत होता है कि ब्रह्म संसार के कण-कण में व्याप्त है।

कैवल्य रूप

परमेश्वर (कृष्ण) कैवल्यस्वरूप हैं। परमेश्वर और कैवल्य एक तत्त्व के नामांतर मात्र है। अद्वय ज्ञान तत्त्व ही जिसे महानुभूति सत् चित

१. श्रीमद्भागवत १०.८५.७
२. तत्रैव १०.३७.१३, १०.६९.४५
३. तत्रैव १०.३१.४
४. तत्रैव १०.३७.१२
५. तत्रैव १०.७०.३७, ४४
६. तत्रैव ११.१६.१
७. तत्रैव १.९.४२
८. तत्रैव १०.८५.७, ८
९. तत्रैव ११.२८.३५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और आनन्द[1] कहा गया है उसी (कृष्ण) को ही कैवल्य,[2] अपवर्ग,[3] परमपद,[4] परमतत्त्व,[5] आत्मतत्त्व,[6] अमृत,[7] अभय,[8] परम,[9] निर्वाण,[10] शांति[11] गति,[12] संसिद्धि[13] आदि पदों से समानाधिकरय में अभिहित किया गया है। परम तत्त्व को केवलानुभवानन्दस्वरूपः[14] केवलानन्दानुभः,[15] निर्वाण-सुखानुभूतिः[16] कैवल्यनिर्वाण सुखानुभूतिः[17] केवलानुभवानन्द संदोहो निरूपाधिकः[18] और परमकेवलचित्यामा,[19] कहा गया है। इसी प्रकार परमेश्वर को अनेकशः "केवलः, अद्वयम्", "एकअद्वितीयः" "एक एवाद्वितीयो सो" "एक एवाद्वितीयोऽभूत्" 'एकमभयम्", ब्रह्माणि अद्वितीय केवले परमात्मनि" भी कहा गया है। स्पष्ट है कि परमेश्वर आत्मावबोधानन्दाद्वयस्वरूप है।

अवतार के कारण

परमेश्वर ज्ञानस्वरूप परमविशुद्ध सर्वतंत्रस्वतंत्र, अद्वयानन्द, निरपेक्ष, निर्विकार, साक्षी, सर्वव्यापक, सर्वनियामक हैं। समय-समय पर लोकसंग्रहार्थ, लीलार्थ भक्तों की रक्षा के लिए, असुरों का विनाश कर पृथिवी को भार से मुक्त करने के लिए नाम, गुण, उपाधिरहित आप अपनी माया से नाम, गुण, उपाधि वाले हो जाते हैं—

---

१. श्रीमद्भागवत १०.३.३४, १०.८८.१०, १०.१४.२३, १०.५८.३८
२. तत्रैव १०.९.१८
३. तत्रैव ८.३.१५
४. तत्रैव ११.२९.२२
५. तत्रैव १०.४३.१७
६. तत्रैव १२.१२.३६
७. तत्रैव ११.२९.२२
८. तत्रैव २.१.३
९. तत्रैव ४.९.१६
१०. तत्रैव ४.११.१४
११. तत्रैव ४.२०.१०
१२. तत्रैव ११.१६.१०
१३. तत्रैव ११.१९.१
१४. तत्रैव ७.६.३
१५. तत्रैव ५.४.१४
१६. तत्रैव ६.४.२८
१७. तत्रैव ७.१०.४९
१८. तत्रैव ११.८.१८
१९. तत्रैव ३०.१४.२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा न नामरूपे गुण-दोष एव वा।
तथापि लोकाप्ययसंभवाय यः स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ॥[1]

आप क्रीडा करने के लिए एवं जीवों के शोक मोहादि के निवारणार्थ पृथिवी पर विभिन्न रूप धारण करते हैं। क्षित्युद्धार और म्लेच्छ विनाश के लिए आप विभिन्न रूपों में अवतरित होते हैं।[2] दैत्य, प्रमथ एवं राक्षस रूप विभिन्न राजाओं के विनाश एवं धर्म मर्यादा की रक्षा एवं यदुवंश की कीर्त्ति विस्तार के लिए आप कृष्ण के रूप में अवतरित हुए।[3] आप अज्ञान एवं लोभमोहादि से सर्वथा रहित हैं, लेकिन धर्म गोपन एवं खलनिग्रहार्थ सगुण हो जाते हैं।[4] असुर सेनापतियों को मारकर उन्हें मोक्ष एवं भक्त जनों के अभ्युदय किंवा रक्षा के लिए स्वयंप्रकाश इन्द्रिया तीत निर्गुण आप अवतार ग्रहण करते हैं।[5]

गो, ब्राह्मण एवं समस्त पृथिवी के मंगल के लिए आप अवतरित होते हैं—

अवतीर्णोऽसि विश्वात्मन् भूमेर्भारापनुत्तये ॥[6]

और गोपियों के शब्दों में—

न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ॥[7]

निर्गुण निराकार परमात्मा, आनन्दस्वरूप निष्कलब्रह्म अनेक कारणों से सगुण रूप धारण करते हैं।

भक्तों के परमलक्ष्य

भागवत भक्त दिन-रात प्रभु चरण की प्राप्ति के लिये प्रयतित रहते हैं।[8] वे चतुर्विधमोक्षादि को भी त्यागकर केवल चरण कमलों के मकरन्द की याचना करते हैं। भागवत भक्त वैसा कुछ भी नहीं चाहता जहां भगवच्चरणांबुजासव की प्राप्ति न हो।[9] परम प्रभु को छोड़कर स्वर्ग, ब्रह्मलोक,

१. श्रीमद्भागवत ८.३.८
२. तत्रैव १०.४०.१६
३. तत्रैव ३०.४०.१८, २२
४. तत्रैव १०.३७.१४, १०.४८.२४
५. तत्रैव १०.२७.५
६. तत्रैव १०.२७.९
७. तत्रैव १०.२७.२१
८. तत्रैव १०.३१.४
९. तत्रैव ४.९.१७
१०. तत्रैव ४.२०.२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भूमण्डल का साम्राज्य रसातल का एकक्षत्रराज्य योग सिद्धियां—यहां तक कि वह मोक्ष की भी कामना नहीं करता। केवल चरणधूलि की ही शरण लेता है।[1] सम्पूर्ण व्याकुलता को छोड़कर प्रभु चरणों में ही अपने को स्थापित कर देना चाहता है।[2]

इस प्रकार परमप्रभु "सर्वतंत्रस्वतंत्र",[3] "मायापति",[4] जीवों के आश्रय,[5] "प्राणदाता",[6] "इन्द्रियागोचर"[7] "जगत् के परम कारण",[8] "मोक्षपति",[9] "अनन्त",[10] "अज्ञानापास्तक",[11] "क्लेशहन्ता",[12] "सर्व-व्यापक",[13] "योऽस्मात्परस्माच्चपर",[14] "साक्षी",[15] सर्वशक्तिमान्",[16] "स्वयंप्रकाश"[17], "ज्ञानस्वरूप",[18] "शेष",[19] "योगीजनग्राह्य",[20] "माया-विनाशक",[21]"निर्गुण से सगुण",[22]सभी देवों में विद्यमान-अद्वैतरूप,[23] कारण-

---

१. श्रीमद्भागवत ६.११.२५, १०.१६.३७
२. तत्रैव ३.३१.२१
३. तत्रैव ४.७.२६, ४.३.२४
४. तत्रैव ४.७.२६, ३०, ३७, ४.२०.३१, ४.३०.२३
५. तत्रैव ४.७.२८, ४.९.८, १७, ४.३०.२६
६. तत्रैव ४.९.६, ८.३.२
७. तत्रैव ४.९.१३, ४.३०.२२
८. तत्रैव ४.९.१६, ४.३०.२५, ८.१७.९
९. तत्रैव ४.२०.२३, ४.३०.३०, ८.३.११
१०. तत्रैव ४.३०.३१
११. तत्रैव ८.१७.९
१२. तत्रैव ४.३०.२२, २७, २८, ३८, ८.१७.८
१३. तत्रैव ८.१७.२६, २७, ८.३.९, १०, १४
१४. तत्रैव ८.३.३
१५. तत्रैव ८.३.४, २.९.२४
१६. तत्रैव ८.३.९, १०
१७. तत्रैव ८.३.१६
१८. तत्रैव ८.३.१८
१९. तत्रैव ८.३.२२-२४
२०. तत्रैव ८.३.२७
२१. तत्रैव १०.८७.१४
२२. तत्रैव १०.८७.१४
२३. तत्रैव १०.८७.१५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कार्य एवं मन की सीमा से परे,[१] "सर्वभूतस्रष्टा,[२] "भक्तों के एकमात्र लक्ष्य"[३] "परमशासक"[४] शरणागतों के आत्मा[५] तथा माया से सर्प केचुलवत् सर्वथा पृथक्[६] हैं।

माया

श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में माया के अनिवर्वचनीय स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। माया के कार्य को देखकर ही उसके स्वरूप का निर्धारण किया जा सकता है। यह आदिपुरुष की शक्तिभूता है, जिसके द्वारा वे जीवों की सृष्टि तथा पंचभूतों के द्वारा जीव शरीर की रचना करते हैं। यह त्रिगुणात्मिका-सर्ग, स्थिति और संहारकारिणी है—

एषा माया भगवतः सर्गस्थित्यन्तकारिणी।
त्रिवर्णा वर्णिताऽस्माभिः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥[७]

भागवतीय सर्जनेच्छा ही माया है। सर्वाश्चर्यमय अज भगवान् अपनी निज शक्ति माया के द्वारा विश्व का सृजन करते हैं।[८] इसी के प्रभाव से विद्याऽविद्या की सृष्टि होती है। स्वयं मायापति के शब्दों में—शरीरी जीवों के लिए मोक्षकरी विद्या एवं बन्धकरी अविद्या मेरी माया के द्वारा विनिर्मित की जाती है।[९] भक्तजन इसी माया से मुक्ति चाहते हैं।

इसी के प्रभाव से जीव अपने स्वरूप को भूलकर संसारान्धकुप में गिरते हैं। यह नित्यपातकी, दुःखदा, आवरणात्मिका है। अनादिरात्मा, निर्गुण, स्वयंज्योति पुरुष भी इसका आश्रय लेकर ही अपने आत्मस्वरूप को छोड़कर भिन्न रूप में अपने को कर्त्ता और भोक्ता मानते हैं।[१०] इसके संसर्ग मात्र से ही जीव विषयों का ध्यान करते-करते संसृति चक्र में फंस जाता है।[११]

माया विमोहन स्वभाव से युक्त है। जिससे मोहित होकर जीव

---

१. श्रीमद्भागवत १०.८७.१७, २८, ४०
२. तत्रैव १०.८७.१९
३. तत्रैव १०.८७.२३, ६.११.२४, २५
४. तत्रैव १०.८७.२७, २९
५. तत्रैव १०, ८७, ३४, ४.७.३०
६. तत्रैव १०.८७.३८, ४.७.३१, ४.९.७, ८.३.८
७. तत्रैव ११.३.१६
८. तत्रैव १.२.३०
९. तत्रैव ११.११.३
१०. तत्रैव ३.२६.६
११. तत्रैव ३.२७.४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपना शुद्ध बुद्ध स्वरूप से भ्रष्ट होकर अपने से अलग पांच भौतिक शरीर में आत्मबुद्धि कर बैठता है।[1] यह दैन्य एवं बन्धकरी है। जो आत्मा सबका स्वामी और सर्वथा मुक्त स्वरूप है, वह माया के द्वारा दीनता और बन्धन को प्राप्त हो जाता है। जिस प्रकार स्वप्न देखने वाले पुरुष को अपना सिर कटना आदि व्यापार न होने पर भी अज्ञान के कारण सत्यवत् प्रतीत होता है उसी प्रकार इस जीव को बन्धनादि अपना न होने पर भी अज्ञानवशात् भास रहे हैं।[2]

माया अहं बुद्धिकारिणी है। जीव इसी के द्वारा संसृतिचक्र में फंसकर अनन्त कष्ट को प्राप्त करता है।[3]

माया से ही जगत्प्रभु सृष्टि कार्य सम्पादित करते हैं। सृष्टि के आरम्भ में माया से गुणों की सृष्टि[4] कर एवं उन्हें स्वीकार कर जगत् की रचना, पालन तथा संहार करते हैं।[5]

मायाविविधाभिधानयुक्ता—श्रीमद्भागवत में माया के विभिन्न पर्यायों का प्रयोग किया गया है। मोहिनी, "योगमाया"[6] "आत्मशक्ति",[7] "इच्छा",[8] "मायादेवी",[9] द्रष्टा की शक्ति,[10] अजा[11] विष्णु की माया, त्रिगुण, अव्यक्त,[12] नित्य,[13] अविशेषप्रधान, अविद्या आदि पर्यायों से उसे अभिहित किया गया है।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में माया बन्धनभूता, सर्जनेच्छा एवं दुःखदा है। न सत् है न असत् है अर्थात् सदसत् से अनिर्वचनीय है। कार्य को देखकर ही उसके स्वरूप का अंदाज लगाया जा सकता है। इसी से संपूर्ण जगत् उत्पन्न होता है।

---

१. श्रीमद्भागवत ५.१९.१५
२. तत्रैव ३.७.९
३. तत्रैव ३.७.९, १०
४. तत्रैव ३.३१.२०
५. तत्रैव १०.३७.१३, ४.७.२६, ८.३.४
६. तत्रैव ८.५.४३
७. तत्रैव २.५.५
८. तत्रैव ७.२.३९
९. तत्रैव २.३.३
१०. तत्रैव ३.५.२५
११. तत्रैव ३.५.४९
१२. तत्रैव १०.८.४३
१३. तत्रैव ३.२६.१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीव

श्रीमद्भागवत की वेदस्तुति में स्पष्ट रूप से जीव के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। जीव अल्पसत्व, सीमित, नाशवान्, मोहित और अल्पज्ञ होता है। भगवान् असीम, अनंत, अज नित्य और ज्ञानस्वरूप हैं। उन्हीं से यह जीव उत्पन्न होता है। भगवान् शास्ता और जीव शासित है।[1] दोनों में नियामकनियम्य भाव सम्बन्ध है। इससे अनुमित होता है कि जीव की उत्पत्ति प्रभु से हुई है। परन्तु वह प्रभु से किंचित् न्यून होता है।

जीव की उत्पत्ति जल बुद्बुदवत् होती है।[2] जिस प्रकार जल बुद्-बुदोत्पत्ति में जल उपादान कारण है वायु निमित्त कारण है। उपादान और निमित्त कारण के संयोग से बुद्बुद् नामक पदार्थ निर्मित होता है। यहां ध्यातव्य है कि यह जल बुदबुदा जल से अलग कोई पदार्थ नहीं है। इस प्रकार प्रकृति और पुरुष के संयोग से विभिन्न प्रकार के नाम रूप गुण से सम्पन्न जीवों की उत्पत्ति होती है। और अन्त में जैसे बुद्बुद् जल में, जल सरिता में और सरिता सागर में विलीन हो जाती है उसी प्रकार जीव भी निरुपाधिक होकर भगवान् में विलीन हो जाते हैं।[3] प्रलय के समय संपूर्ण जीव प्रभु में ही समाहित हो जाते हैं।[4] जिस प्रकार जल में होने वाली कम्पादि क्रिया, जल में दीखने वाले चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब में न होने पर भी भासती है, आकाशस्थ चन्द्रमा में नहीं उसी प्रकार देहाभिमानी जीव में ही देह के मिथ्याधर्मों की प्रतीति होती है परमात्मा में नहीं।[5]

जीवों की संख्या असंख्य एवं अपरिमित है परन्तु ये नित्य नहीं होते हैं। ये स्वतंत्र सत्ता को धारण नहीं कर सकते। यदि जीव भगवान् की तरह नित्य और सर्वव्यापक हो जाये तो भगवान् और जीव में शास्ता शासित भाव उत्पन्न नहीं हो सकता है। भगवान् सभी जीवों में समान भाव से रहते हैं परन्तु दृष्टिगम्य या बुद्धिगम्य नहीं होते। बुद्धि और इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य नहीं है।[6]

भागवतीय वेदस्तुति एवं अन्य स्तुतियों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि परमार्थ दृष्टि में जीव और भगवान् दोनों एक ही है—

---

१. श्रीमद्भागवत १०.८७.३०
२. तत्रैव १०.८७.३१
३. तत्रैव ४.९.१४
४. तत्रैव १०.३.३१
५. तत्रैव ३.७.११
६. तत्रैव १०.३.१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम् ।[1]

परन्तु व्यवहार दृष्टि में भेद स्पष्ट परिलक्षित होता है । जीव माया-पाश बद्ध है[2] भगवान् मायामुक्त । जीव भगरहित है भगवान् भगसम्पन्न । माया वशात् अविद्योपाधि युक्त होकर जीव देहेन्द्रियादि से निष्पन्न कर्मों का भोग करता है और उसी को अपना यथार्थ स्वरूप मानकर आनन्दादि गुण से रहित होकर संसारदशा को प्राप्त हो जाता है। भगवान् माया को वैसे ही त्याग देते हैं जैसे सर्प केचुली को—

त्वमुत जहासि तामहिरिव त्वचमात्तभगो
महसि महीयसेऽष्टगुणितेऽपरिमेयभगः ॥[3]

संसार [जगत्]

श्रीमद्भागवतीय वेदस्तुति के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि यह परिदृश्यमान त्रिगुणात्मक जगत् केवल मनोजृम्भण मात्र है। यह जल बुद्-बुद् की तरह है विनाशवान् है । संसार की सभी वस्तुएं सारहीन है—

इति सदजानतां मियुनतो रतयं चरतां
सुखयति कोन्विह स्वविहते स्वनिरस्तभगे ॥[4]

जैसे रज्जु में अविद्या के कारण सर्प का भ्रम मिथ्या है उसी प्रकार सब वस्तु में अविद्या के संयोग से प्रतीत होने वाला नाम रूपात्मक जगत् भी मिथ्या है । यह परमार्थिक सत्य न होकर व्यावहारिक सत्य है ।[5]

यह संसार उत्पत्ति के पहले न था और न प्रलय के बाद रहेगा, इससे यह सिद्ध होता है कि यह एकरस परमात्मा में मिथ्या ही प्रतीत होता रहा है । जैसे मिट्टी में घड़ा, लोहे में शस्त्र, सोने में कुण्डल आदि केवल नाम मात्र हैं, वास्तव में मिट्टी, लोहा, सोना ही है । इसे अविद्याग्रस्त जीव ही सत्य मानते हैं ।

वितथमनोविलासमृतमित्यवयन्त्यबुधाः ।[6]

इस प्रकार जगत् मिथ्या है, आभास मात्र है अविद्या जनित है, त्रिगुणात्मक है, बंधनस्वरूप है ।

स्तुतियों में भक्ति

व्युत्पत्ति

भक्ति की सिद्धि दो प्रकार से की जा सकती है । भवादिगणीय भज-

---

१. श्रीमद्भागवत १२.५.११
२. तत्रैव ३.३.१
३. तत्रैव १०.८७.३८
४. तत्रैव १०.८७.३४
५. तत्रैव १०.८७.३६
६. तत्रैव १०.८७.३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेवायाम् और अदादिगणीय भंजोआमर्दने धातुओं से क्तिन् प्रयत्न करने पर भक्ति पद की निष्पत्ति होती है।

(१) भजसेवायाम् धातु से "स्त्रियांक्तिन्"[1] से भाव में क्तिन् प्रत्यय करने पर सेवा, उपासना, गुणकथन आदि अर्थों में भक्ति की सिद्धि होती है—

भज इत्येष वै धातु सेवायां परिकीर्तितः।
तस्मात्सेवा बुधैः प्रोक्ता भक्ति साधन भूयसी॥[2]

(२) "भञ्जो आमर्दनने" धातु से बाहुलकात् करण में क्तिन् प्रत्यय करने पर "अनिदिता हल उपधायाक्ङितिच" से उपधास्थित नकार का लोप "चो कुः" से चकार का गकार, तथा "खरिचेति" से गकार का ककार करने पर भक्ति की सिद्धि होती है, जिसका अर्थ होता है प्रणाशिका-शक्ति, भववन्धनविनाशिका, मायाविच्छेदिका आदि। इस अर्थ में श्रीमद्भागवत में भक्ति पद का बहुशः प्रयोग उपलब्ध होता है—"भक्तिः आत्मरजस्तमोपहा"[3] शोकमोहभयापहा[4] "कामकर्मविमुक्तिदा"[5] मायामोहादिरूपकषायभंजिका[6] 'विशयविदूषितायविनाशिका"[7] 'संसृतिदुःखोच्छेदिका[8], देहाध्यासप्रणाशिका[9], अशेषसंक्लेशशमदा[10], मृत्युपाशविशातनी[11] भवरोगहन्त्री[12] इत्यादि अर्थों में किंवा विशेषणों से विशिष्ट भक्ति का प्रयोग भागवतकार ने किया है।

स्वरूप

"सा तु परानुरक्तिरीश्वरे"[13] 'तदर्पिताऽखिलाचारिता तद्विस्मरणे परमव्याकुलेति, सात्वस्मिन् परमप्रेमरूपा अमृतस्वरूपा च'[14] अर्थात् पर-

१. सिद्धांतकौमुदी सूत्र संख्या ३२७२ (३.३.९४)
२. गरुड़पुराण अध्याय २३१
३. श्रीमद्भागवत १.५.२८
४. तत्रैव १.७.७
५. तत्रैव १.९.२३
६. तत्रैव १.१५.२९
७. तत्रैव २.२.३७
८. तत्रैव ३.५.३८
९. तत्रैव ३.७.१२
१०. तत्रैव ८.७.१४
११. तत्रैव ३.१४.४
१२. भागवतमहात्म्य ३।७१
१३. शाण्डिल्य भक्तिसूत्र १
१४. नारद भक्तिसूत्र १९,२,३ क्रमशः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेश्वर में परानुरक्ति भक्ति है। वह परम प्रेम स्वरूपा है। समुद्रोन्मुखी गंगा प्रवाह की तरह सर्वात्मा अखिलेश्वर में अविच्छिन्न गति ही भक्ति है।[1] मन वाणी, शरीर एवं इन्द्रियों से सम्पादित कर्मों को नारायण में समर्पित कर देना भक्ति है।[2] आनुकुल्येन कृष्णानुशीलन ही भक्ति है[3] जैसे व्रजगोपरमणियां अनन्य भाव से कृष्णानुशीलन करती है।[4] सभी विषयों का परित्याग कर भगवच्चरणशरणागति की प्रधानता वहां होती है।

कपिलाचार्य के मत में अहैतुकी भागवती भक्ति सिद्धि से भी श्रेष्ठ है। जिस प्रकार जठराग्नि निगीर्ण भोजन को अतिशीघ्र समाप्त कर देती है उसी प्रकार अनिमित्ता भागवती भक्ति कर्मसंस्कारजन्यकोशरूप लिङ्गशरीर का अतिशीघ्र विनाश कर देती है। वह मन की स्वाभाविक वृत्ति है।[5]

ईश्वर में परम प्रेम ही भक्ति है। वह प्रेम अमृत स्वरूप, ज्ञानस्वरूप, गुणरहित, कामनारहित, प्रतिक्षणवर्धमान होता है।[6] इसमें सब कुछ नारायण-पादपङ्कज में समर्पित होता है। भक्त उसी के सुख में सुखी होता है।[7]

भक्तप्रवर प्रह्लाद भक्ति के नवधा स्वरूप का वर्णन करते हैं---

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥[8]

भगवत्गुणकथाश्रवण, लीलाकीर्तन, विष्णु का स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन रूप नवधा भक्ति श्रीमद्भागवत में बहुशः स्थलों पर व्याख्यात है।

भक्ति के साधन

अखिल ब्रह्माण्डनायक परमेश्वर भगवान् वासुदेव में अनपायिनी भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है। प्रह्लाद द्वारा वर्णित और नारद द्वारा प्रचारित किंवा अनुमोदित नवधा भक्ति ही भक्ति का साधन है। भगवान् गोकुलनाथ के नाम रूप गुण प्रभावादि का श्रवण, कीर्तन, स्मरण, भगवान् वासुदेव की चरण सेवा

१. श्रीमद्भागवत ३.२९.११
२. तत्रैव ११.२.३६
३. भक्तिरसामृत सिन्धु पूर्वविभाव
४. श्रीमद्भागवत १०.३१.१
५. तत्रैव ३.२५.३२
६. नारदभक्ति सूत्र ५४
७. तत्रैव २४
८. श्रीमद्भागवत ७.५.२३,२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवद्विग्रह की अर्चना, उनकी वन्दना, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन रूप नवधा भक्ति भेद ही भक्ति के साधन हैं।

भगवद्गुणाख्यान-लीलाचरितादि के श्रवण से भक्त भगवान् में भक्ति प्राप्त कर सिद्धि लाभ करता है।[1]

भगवत्गुणकथा श्रवण से उत्पन्न पुष्टि भक्ति से भक्त अविद्या का विनाश कर भगवान् वासुदेव में अनन्यारति को प्राप्त करता है।[2]

भक्ति और ज्ञान वैराग्य

भक्ति और ज्ञान वैराग्य का जनक जन्यभाव सम्बन्ध है। भक्ति ज्ञान वैराग्य की जनयित्री शक्ति है। भागवत महात्म्य में भक्ति को ज्ञान वैराग्य की माता कहा गया है।[3] भक्ति हृदयस्थ अविद्या ग्रन्थि का छेदन कर भक्त हृदय में आत्मज्ञान और संसार के प्रति वैराग्य उत्पन्न करती है। ज्ञान वैराग्ययुक्त जीव ब्रह्मदर्शन को प्राप्त करता है।[4]

भक्ति के द्वारा तदाकार रूप ज्ञान की प्राप्ति होती है।[5] एकाग्र मन से भगवान् में भक्ति करने पर द्वागेव ज्ञान और वैराग्य की उत्पत्ति होती है।[6] भक्तिजन्यज्ञान वैराग्य संयुक्त भक्त हेयोपादेय बुद्धि का परित्याग कर समदर्शन हो जाता है।[7]

ज्ञान, कर्म और भक्ति को छोड़कर जीव मात्र के लिए और कोई श्रेयस्कर मार्ग नहीं है।[8] भक्ति के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण में चरणरति, विरक्ति तथा भगवत्स्वरूप की प्राप्ति होती है।[9]

भक्ति और मुक्ति

मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन भक्ति ही है, जिसके द्वारा जीव दुस्तर माया का संतरण कर मुक्ति प्राप्त करता है। भक्ति के अतिरिक्त[10] मुक्तिप्रापणार्थ अन्य कोई सुलभ मार्ग नहीं है। जो भगवान् अखिलानंद में दृढ़ाभक्ति करते हैं

---

१. श्रीमद्भागवत ३.५.४५
२. तत्रैव ३.२७.२१
३. भागवतमाहात्म्य ४४५
४. श्रीमद्भागवत ३.३२.२३
५. तत्रैव ४.१७.२५
६. " ४.२९.३७
७. " ६.१७.३१
८. " ११.२०.६
९. " ११.२.४२
१०. " ३.२५.१९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वे संगदोष रहित हो जाते हैं।[1] सांख्याचार्य कपिल अपनी माता देवहूति के प्रति उपदेश देते हैं—"जिसका मन भगवान् वासुदेव में एकाग्र रूप से रमण करता है तो उसे भगवान् की अनिमित्ता भक्ति की प्राप्ति होती है जो सिद्धि से भी श्रेष्ठ है।[2]

भक्ति का लक्ष्य

भगवान् सच्चिदानंद श्रीकृष्ण ही भक्ति के परम लक्ष्य हैं। एकांत भक्ति के द्वारा भक्त भगवान् को प्राप्त कर लेते हैं। रुद्र स्तुत्यावसर पर प्रभु से निवेदित करते हैं—

भवान् भक्तिमत्ता लभ्यः दुर्लभसर्वदेहिनाम्।[3]

भक्ति आत्मविद्गतिदात्री है। भागवत भक्तों का यदि क्षणार्ध मात्र भी संगति हो जाती है तो वह संगति स्वर्ग, अपुनर्भव से भी श्रेष्ठ है, मर्त्य-लोक के भोगों का तो कहना ही क्या। सभी कामनाओं को छोड़कर भागवत भक्त भगवान् वासुदेव का ही चरणरज प्राप्त करना चाहते हैं। भक्त जन वैसा कुछ भी नहीं चाहते जहां पर भगवच्चरणाम्बुजासव की प्राप्ति न हो।[4] जैसे अजातपक्ष पक्षीशावक पक्षी को, सद्यः प्रसूत क्षुधार्त वत्स अपने माता (गाय) को तथा प्रिय अपने प्रियतम को पाने के लिए लालायित रहता है उसी प्रकार भक्त भी अरविंदाक्ष को ही प्राप्त करना चाहता है।[5]

भक्ति द्वारा भक्त देहादि की उपाधि से निवृत्त होकर प्रत्यगात्मा में स्थिर हो जाता है।[6] भक्त विधूत भेदमोह होकर भगवान् स्वरूप ही हो जाता है।[7] भगवान् के निर्मल यश के संकीर्तन से उत्पन्न भक्ति द्वारा चित्तस्थित तमोगुण एवं रजोगुण का विनाश हो जाता है और तब सत्वोद्रेक से भक्त परमानंद को प्राप्त करता है।

सांसारिक कामनाओं, भोग विलास ऐश्वर्य-विभूति, मोक्ष इत्यादि के स्थान पर विपत्ति की ही कामना करता है, क्योंकि विपत्तियों में प्रभु बार-बार दर्शन देते हैं।[8]

---

१. श्रीमद्भागवत ३.२५.२२,२३
२. तत्रैव ३.२५.३३
३. तत्रैव ४.२४.३४
४. तत्रैव ४.२०.२४
५. तत्रैव ६.११.२६
६. तत्रैव ५.१.२७
७. तत्रैव १.९.४२
८. तत्रैव १.८.२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार भक्ति के परम लक्ष्य भगवान् ही होते हैं जिन्हें भक्तजन अपना सांसारिक पारमार्थिक सब कुछ त्याग कर सर्वात्मना प्राप्त करना चाहते हैं।

भक्ति का वैशिष्ट्य

श्रीमद्भागवतीय स्तुतियों में भक्ति का विस्तृत विवेचन हुआ है। भक्तिशास्त्रों में भक्ति के विविध वैशिष्ट्य प्रतिपादित किए हैं। भक्तिरसामृत सिन्धुकार के अनुसार—

क्लेशघ्नी शुभदा मोक्षलघुताकृत सुदुर्लभा।
सान्द्रानन्दविशेषात्मा श्रीकृष्णाकर्षिणी च सा॥[1]

अर्थात् भक्ति क्लेशविनाशिका, मंगलदा मोक्षतिरस्कारिणी सान्द्रानंदस्वरूपा और श्रीकृष्णाकर्षिणी है। श्रीमद्भागवतीय स्तुतियों के अवलोकन से निम्नलिखित विशेषताएं स्पष्ट होती है—

१. आनन्दरूपता	८. आवरण भंजिका
२. भवबन्धनविनाशका	९. सांसारिक भोगायतन से उपरतता।
३. निष्कामता	१०. विश्वव्यापी प्रेम
४. आत्मस्थता किंवा आत्मोपरता	११. भक्त की स्थिति
५. सर्वस्व समर्पण	१२. श्रीकृष्णाकर्षिणी
६. अस्तित्व का विलय	१३. साधन एवं साध्यरूपा
७. कल्याणकारिणी	१४. अनन्यता

कुछ प्रमुख वैशिष्ट्यों का विवेचन किया जा रहा है।

१. भक्ति केवलानंद स्वरूपा है—जब भक्त हृदय में भक्ति उपचित होती है, उसके उपास्य के गुण, लीला के प्रति अखंडात्मिक रति उत्पन्न होती है, तब भक्त अतिशयानन्द के सागर में निमज्जित हो जाता है। उस अवस्था में आनन्द को छोड़कर और कोई पदार्थ नहीं रहता। वह प्रेमी भक्त उस महान् वस्तु को पा लेता है, जिसके पाने पर सारी इच्छाएं नष्ट हो जाती है, वह अमृत के समुद्र में क्रीड़ा करता है—

यस्य भक्तिर्भगवति हरौ निःश्रेयसेश्वरे।
विक्रीडतोऽमृताम्भोधौ किं क्षुद्रैः खातकोदकैः॥[2]

भगवान् चक्रपाणि के विविध लीला गुणों को सुनकर भक्त कभी हंसता है, कभी रोता है तो कभी नाचने लगता है। बाह्य व्यवहार से रहित कभी

---

१. भक्तिरसामृत सिन्धु पूर्वविभाग
२. श्रीमद्भागवत महापुराण ६।१२।२२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आनंद से परिपूर्ण होकर चुप हो जाता है।[1]

२. भवबंधन विनाशिका

भक्ति में भवबन्धन विनाश का अतुल सामर्थ्य निहित है। भञ्जो-आमर्दने से निष्पन्न भक्ति का अर्थ भी भवबन्धन विनाशिका है। भक्ति से जन्म मृत्यु रूप सांसारिक प्रवाह की समाप्ति हो जाती है।[2] भक्ति द्वारा भक्त रोगों से छुटकारा पा जाता है—

यच्छ्रद्धयानुतिष्ठन् वै मुच्यते सर्वतोभयात्।[3]

भगवत्कथा, लीला गुण कीर्त्तनरूपा भक्ति अमृतस्वरूप है। विरहतप्त लोगों के लिए जीवनस्वरूप है। सारे पाप ताप को मिटाने वाली है, मंगलकारिणी एवं कल्याणदात्री है। गोपियों के शब्द, भञ्जात्मिकाभक्ति का स्वरूप—

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुविगृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥[4]

निष्कामता

कुछ भक्तों की भक्ति में निष्काम भावना की प्रधानता रहती है तथा कुछ में केवल प्रभु चरणों की संगति एवं प्रभु में ही अपना स्वरूप विलय की मुख्यता होती है। भक्तराज अम्बरीष, नलकुबर मणिग्रीव, पृथु आदि की भक्ति प्रथम कोटि की है और पितामह भीष्म और वेद-स्तुति द्वितीय कोटि के उदाहरण हैं। भक्ति में भक्त की मानसिक वृत्तियां बाह्यविषयों से उपरत होकर आत्मस्थ हो जाती हैं।[5] वह हृदयस्थित अपने उपास्य के चरणों में, एकांत भाव से मन वाणी और नेत्रों के द्वारा आराधना का पुष्प समर्पित करता रहता है।

समर्पण

भक्ति में समर्पण भावना पराकाष्ठा पर पहुंची होती है। भक्त अपना सब कुछ यहां तक पाप-पुण्य को प्रभु चरणों में समर्पित कर प्रभु का ही हो जाता है।[6] वह अपना घर-द्वार, धन-दौलत, पति-पुत्र का परित्याग कर प्रभु चरणों में ही प्रपन्न हो जाता है—

---

१. श्रीमद्भागवत ११।२।३९-४०
२. तत्रैव १.८.३६,१०.१६.३८,१०.२.३७
३. तत्रैव १०.१६.५३
४. तत्रैव १०.३१.९
५. तत्रैव ८.३.१
६. तत्रैव ५.१९.२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तन्नः प्रसीद वृजिनार्दन तेऽङ्घ्रिमूलं
प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्ववुपासनाशाः ।
त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकामतप्तात्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यम् ॥[1]

अस्तित्व का विलय

भक्ति में अपना कुछ नहीं होता । भक्त केवल उसी के सुख में सुखी और उसी के दुःख में दुःखी होता है । भक्त की चित्तवृत्तियां तदाकार होकर अनंत स्वरूप हो जाती है—वहां पर उसका सब कुछ उसके उपास्य के लिए हो जाता है । अपना सांसारिक अस्तित्व भी उसी में विलीन कर वह परम धन्य हो जाता है । अखण्ड रूप में वह उसी में रमण करने लगता है ।

सांसारिक भोगों से उपरतता

भक्त भक्ति की परिपूर्णता होने पर सांसारिक भोगायतन से उपरत हो जाता है । संसार में रहते हुए भी पंकजवत् निर्लिप्त रहता है । वह किसी प्रकार का भोगविलास, धन-ऐश्वर्य की कामना नहीं करता । वह वैसा भी नहीं चाहता जहां प्रभु चरणाम्बुजासव की प्राप्ति न हो सके—

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन् न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः ।[2]

मोक्ष तिरष्करिणी

भक्ति मोक्ष से भी श्रेष्ठ है । भक्त जन हस्तगत अष्टसिद्धियों, मोक्ष आदि का भी तृणवत् परित्याग कर देते हैं—

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा वाञ्छन्ति यत्पादरजः प्रपन्नाः ॥[3]

श्रीकृष्णाकर्षिणी

भक्ति से भगवान् भक्त के वश हो जाते हैं । हरक्षण उन्हें भक्त का ख्याल रखना पड़ता है । हर अवसर पर, हरविपत्तियों में प्रभु को भक्त के साथ रहना पड़ता है ।

इस प्रकार भक्ति अनेक विशिष्टताओं से संवलित परमप्रेमरूपा रूप है ।

देवस्वरूप

श्रीमद्भागवत में अनेक भक्त अपने-अपने उपास्यों की विभिन्न स्थलों

---

१. श्रीमद्भागवत १०.२९.३८
२. तत्रैव ४.२०.२४
३. तत्रैव १०.१६.३७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर स्तुति करते हैं। उन स्तुतियों में उनके उपास्य का स्पष्ट चरित - स्वरूप उभर कर सामने आता है।

लगभग २२ देवों एवं भगवान् के अवतारों की स्तुतियों की गई हैं यथा—परात्पर ब्रह्म, विष्णु, कृष्ण, शिव, राम, कूर्म, नृसिंह, कपिल, वाराह, नर-नारायण, सुदर्शन, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, जलदेवता, त्रिदेव, पृथु, हयग्रीव मत्स्य, बलराम (संकर्षण) जडभरत आदि।

प्रस्तुत संदर्भ में सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्ण के विभिन्न स्वरूपों पर विचार किया जायेगा। भागवतकार परात्परब्रह्म और श्रीकृष्ण में एकरूपता स्थापित करते हैं और भगवान् श्रीकृष्ण ही श्रीमद्भागवत के प्रतिपाद्य हैं। वास्तव में भागवत श्रीकृष्ण ही है। अतः भागवत में श्रीकृष्ण के चरित के विभिन्न पक्षों का सुविस्तृत वर्णन मिलता है।

श्रीकृष्ण

'कृषति निजसमीपमाकर्षति वेणुरवेणेति कृष्णो यशोदानन्दनः'[1] अर्थात् वेणुनिनादन के द्वारा भक्तजनों को अपने समीपाकर्षण करने वाले यशोदानन्दन कृष्ण हैं। वे अपने जनों का भवोच्छेदक सदानन्द रूप एवं भक्तौघविनाशक हैं।[2] कृष्ण में कृष शब्द भू-सत्ता वाचक है और "ण" निवृत्ति वाचक है। इन दोनों का मिला हुआ अर्थ कि सर्वव्यापक आनन्दमय विष्णु ही सात्वत कृष्ण हैं—

कृषिर्भूवाचकशब्दो णश्च निवृति वाचकः।
तयोरैक्य परंब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते॥[3]

कोटिजन्मकृत पाप को कृष् कहते हैं। उसके विनाशक देवता कृष्ण हैं।

कोटिजन्मकृतं पापं कृषिरित्युच्यते बुधैः।
तन्नाशकरो देवः कृष्ण इत्यभिधीयते॥[4]

स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के शब्दों में—

कृषामि मेदिनीं पार्थ भूत्वा कार्ष्णायसो महान्।
कृष्णो वर्णश्च मे यस्मात् तस्मात् कृष्णोऽहमर्जुन॥[5]

इस प्रकार पापौघविनाशक आनन्दस्वरूप; केवलानन्द कृष्ण पद का वाच्यार्थ हुआ। श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में श्रीकृष्ण के सभी रूपों

१. श्रीमद्भागवत, वंशीधरी टीका, पृ० सं० ८
२. तत्रैव, पृ० ८
३. गोपालपूर्वतापनीयोपनिषद् १-१
४. श्रीमद्भागवत, वंशीधरी टीका, पृ० ८
५. श्रीमद्भागवत १.८.९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का वर्णन मिलता है। परब्रह्मपरमेश्वर, लोकरंजक श्रीकृष्ण, भक्तरक्षक, बालकश्रीकृष्ण, गोपीपति, दुष्टों का संहारक, दलितों का उद्धारक आदि रूप चित्रित किए गये हैं।

१. अवतार

भगवान् श्रीकृष्ण भागवत के पद-पद में व्याप्त हैं। श्रीमद्भागत-क्षीर-सागर है और भगवान् श्रीकृष्ण उसके अक्षर-अक्षर में विराजमान हैं—तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवम्।[1] श्रीमद्भागवत में भगवान् के विस्तृत स्वरूप का वर्णन किया गया है। सभी कलाओं के साथ कृष्णावतार होता है—

अन्ये चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।[2]

जब धरती पर अधर्म का प्रसार हो जाता है। खल, राक्षस, सर्वत्र सर्वगामी होकर जीव जगत् को संकट में डाल देते हैं तब भूमिभारापहरणार्थं धर्मरक्षणार्थं, खल निग्रहार्थं भक्तोद्धारार्थं भगवान् का अवतार होता है।[3] जब संसार कंसादिराक्षसों से त्रस्त था, भूत मात्र का कोई शरण्य नहीं था, धर्म, पुण्य, तप, स्वाध्याय, ध्यानादि विलुप्तप्राय हो गये थे, पापाचारियों के भार से पृथिवी संत्रस्त थी। तभी ऐसे संक्रमण काल में भगवान् का प्रादुर्भाव होता है—

दिष्ट्या हरेऽस्या भवतः पदो भुवो भारोऽपनीतस्तव जन्मनेशितुः।[4]
त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाधुनेश
भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते॥[5]
दिष्ट्याम्ब ते कुक्षिगतः परः पुमानंशेन साक्षाद् भगवान् भवाय नः।
मा भूद् भयं भोजपतेर्मुमूर्षोर्गोप्ता यदूनां भविता तवात्मजः॥[6]

इस प्रकार भगवान् विष्णु के पूर्णांश के रूप में भक्तों के उद्धार के लिए श्रीकृष्ण का अवतार होता है।

बालस्वरूप

बालक श्रीकृष्ण अत्यन्त सुन्दर, कमनीय एवं मनोहर स्वभाव वाले हैं। उनके नेत्र कमल कोमल और विशाल हैं। शंख, चक्र, गदा और कमल

---

१. श्रीमद्भागवत महापुराण
२. तत्रैव १.३.२८
३. तत्रैव १०.४०.१८
४. तत्रैव १०.२.३८
५. तत्रैव १०.२.४०
६. तत्रैव १०.२.४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनके हाथों में सुशोभित हो रहे हैं। वक्षस्थल श्रीवत्स के चिह्न से तथा गला कौस्तुभमणि से सुशोभित हो रहा है। वर्षाकालीन मेघ के समान परम सुन्दर श्यामल शरीर पर पीतांबर फहरा रहा है। कङ्कणादि आभूषणों से सुशोभित बालक के अंग-अंग से अनोखी छटा छिटक रही है।

श्रीकृष्ण की बाललीला अत्यन्त आनन्ददायक है। कभी घुटुरनी चलते हैं तो कभी यशोदा मैया की मटकी फोड़ देते हैं। जब मैया बांधने आती है तो आप रोने लगते हैं। वाह जिससे भय भी भय मानता है उसकी यह दशा---

सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति। (श्रीमद्भागवत १.८.३१)

शारीरिक सौंदर्य

श्रीकृष्ण का अतिशय कमनीय कांति सर्वजनहृदयाह्लादक है। चाहे योगी हो या रोगी, भक्त हो या कामी सभी भगवान् के त्रिभुवनकमनीय सौन्दर्य पर मोहित हो जाते हैं। पितामह भीष्म के शब्दों में श्रीकृष्ण का सौन्दर्य अवलोकनीय है---

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवाम्बरं दधाने।
वपुरलक कुलावृताननाब्जं विजय सखे रतिरस्तु मेऽनवद्या॥[1]

उनका मुख कमल के समान सुन्दर है, जिस पर घुंघराली अलकें लटक रही हैं। कमनीय कपोलों पर सुन्दर-सुन्दर कुण्डल अनन्त सौन्दर्य बिखेर रहे हैं। मधुर-अधर जिनकी सुधा (स्वादुता) सुधा को भी लजाने वाली है, उनकी मनोहारी चितवन मन्द-मन्द मुसकान से उल्लसित होरही है, दोनों भुजाएं शरणागतों को अभयदान देने में समर्थ हैं। वक्षस्थल सौन्दर्य की देवी लक्ष्मी का नित्य क्रीड़ास्थल है।[2] उनके नेत्र शरद्कालीन सरसिज के समान अत्यन्त मनोहर हैं।[3]

३. असुरों के हंता

भगवान् श्रीकृष्ण का अवतार ही खलनिग्रहार्थ हुआ है।[4] खेल-खेल में आपने हयासुर, बकासुर, शंख, कालयवन, मुर, नरकासुर आदि राक्षसों[5] एवं शिशुपाल, दन्तवक्त्र आदि दुष्ट राजाओं का बध किया।[6] पृथ्वी के भार

१. श्रीमद्भागवत १.९.३३
२. तत्रैव १०.२९.३९
३. तत्रैव १०.३१.२
४. तत्रैव १०।२७।५
५. तत्रैव १०।३७।१६,१७
६. तत्रैव १०।२७।२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वरूप राक्षसों का विनाश कर उन्हें अलभ्य मुक्ति प्रदान की।[1] दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध और जो आपसे सर्वदा दृढ़ वैर भाव रखते हैं, उनका भी आप उद्धार करते हैं।[2] जगत् के नियन्त्रण करने के लिए दण्डधारण करते हैं तथा अभिमानियों के मद को मर्दित करते हैं।[3] जो ऐश्वर्यमद, धन सम्पत्ति से अन्धा होकर अपने श्रेयस् मार्ग को भूल जाता है उनका भी आप उद्धार करते हैं।[4]

४. शरणागत वत्सल

सम्पूर्ण संसार का सर्वात्मना परित्याग कर आये शरणागतों का आप शरण्य हैं, समस्त जीवों के आश्रय हैं।[5] शरणापन्न जीवों के अभयदाता हैं। आपके स्पर्श मात्र से ही भव-बन्धन खण्डित हो जाता है।[6]

आप उन्हीं को दर्शन देते हैं जो अकिंचन हैं।[7] आप प्रेमी भक्तों के परम-प्रियतम, अकारण हितैषी एवं कृतज्ञ हैं —

भक्तप्रियादृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात्।[8]

आप शरीरधारियों के परम सुहृद्, परम मित्र एवं परम प्रियतम हैं।[9] भक्तों की इच्छा पूर्ण करने के लिए उसी के इच्छानुसार आप अपने को प्रकट करते हैं।[10] आप दीनजनों के हितैषी एवं शरणागतों के संसारभय को मिटाने वाले हैं।[11] अनेक संकटों से अपने भक्त जनों की रक्षा करते हैं।[12]

संसार चक्र से डरकर भक्तजन आपके शरण में आते हैं।[13] मृत्युरूप कराल व्याल से भयभीत जीव आपके पादपंकज में आकर परमशांति का का अनुभव करते हैं क्योंकि मृत्यु भी आपसे भयभीत होकर भाग जाती है।[14]

---

१. श्रीमद्भागवत १०।२७।९
२. तत्रैव १०।६०।४१
३. तत्रैव १०।२७।६
४. तत्रैव १०।२७।१६
५. तत्रैव १०।४०।३०
६. तत्रैव १०।५९।३१
७. तत्रैव १।८।२६
८. तत्रैव १०।४८।२६
९. तत्रैव १०।२९।३२
१०. तत्रैव १०.५९।२५
११. तत्रैव १०।८५।१९
१२. तत्रैव १।८।२४,१०.३१.३
१३. तत्रैव १०।३१।५
१४. तत्रैव १०।३।२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैसे नारायण देवों की रक्षा करते हैं वैसे ही आप समस्त व्रजमण्डल (जीव-समूह) की रक्षा करते हैं।[1]

५. कारणों के परम कारण

आप प्रकृति आदि समस्त कारणों के परम कारण हैं। आप ही अविनाशी नारायण हैं। सम्पूर्ण चराचर सृष्टि के कर्त्ता ब्रह्माजी आपही के नाभि कमल से उत्पन्न हुए हैं।[2] आप सब कुछ हैं, सबके कारण हैं तथा सबकी आत्मा हैं।[3] आप स्वयं जन्मरहित होते हुए भी सबके आश्रय हैं। जगत् में जो भी कारण-कार्य स्वरूप है वह सब आपका ही स्वभाव है।[4] समस्त प्राणियों और पदार्थों की उत्पत्ति, स्थिति, रक्षा और प्रलय के कारण भी आप ही हैं।[5]

आप समस्त विकारों से रहित हैं फिर भी जगत् की सृष्टि स्थिति और प्रलय आपसे ही होते हैं।[6] आप तीनों गुणों के आश्रय हैं इसलिए उन गुणों का कार्य आदि का भी आपही में आरोप किया जाता है।[7] आप संपूर्ण जगत् के लयस्थान हैं।[8]

६. सर्वव्यापक एवं सर्वेश्वर

आप सर्वव्यापक तथा सर्वपूज्य हैं। साधुयोगी स्वयं में स्थित अंतर्यामी रूप, समस्तभूत— भौतिक पदार्थों में व्याप्त परमात्मा के रूप में इष्टदेवता, साक्षी पुरुष, ईश्वर के रूप में साक्षात् आपही की उपासना करते हैं।[9] आप केवल यशोदा मइया के लाड़ला ही नहीं, समस्त शरीर धारियों के हृदय में रहने वाले साक्षी एवं अंतर्यामी हैं।[10] आप ही समस्त प्राणियों के शरीर, प्राण, अन्तःकरण और इन्द्रियों के स्वामी हैं तथा आपही सर्वशक्तिमान् काल, सर्वव्यापक एवं अविनाशी ईश्वर हैं।[11] जैसे एक ही अग्नि सभी लकड़ियों में व्याप्त रहती है वैसे आप समस्त प्राणियों के एक

१. श्रीमद्भागवत १०।२९।४०
२. तत्रैव १०।४०।१
३. तत्रैव १०।२७।११,१०।५९।२७
४. तत्रैव १०।५९।२८
५. तत्रैव ११।१६।१
६. तत्रैव १०।३।१९,१०।८५।५,१०।३७।१३,१०।६९।४५,१०।५९।२९
७. तत्रैव १०।३।१९
८. तत्रैव १०।४०।१०,१०।३।३१
९. तत्रैव १०.४०.४
१०. तत्रैव, १०.३१.४
११. तत्रैव, १०.१०.३०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा हैं।[1] आप अग्निवत् अपनी अचिन्त्यशक्ति से घट-घट में व्याप्त हैं।[2] भक्तजन आपही के विभिन्न स्वरूपों की उपासना करते हैं क्योंकि आपही समस्त देवताओं के रूप में और सर्वेश्वर भी हैं।

७. महारथी के रूप में

श्रीमद्भागवतीय स्तुतियों में भगवान् श्रीकृष्ण के युद्धनेतृस्वभाव पर भी प्रकाश पड़ता है। आप एक कुशल योद्धा तथा महाभारत युद्ध में अर्जुन सेना के सूत्रधार थे। भीष्म स्तुति में भगवान् के भयंकर स्वरूप का दर्शन होता है। घोड़ों की टाप से उत्पन्न रज द्वारा मुखमण्डल पर लटकने वाली अलके मलिन हो गयी हैं। आप सुन्दर कवच से मण्डित हैं तथा कौरवों के आयुहर्त्ता हैं।

८. सर्वश्रेष्ठ काल

भगवान् काल के भी काल हैं। निमेष से लेकर वर्ष पर्यन्त तक सम्पूर्ण आपकी लीला मात्र है। आपही सर्वशक्तिमान् हैं।[3]

९. निर्लिप्त

इन्द्रियगोचर एवं आनन्दस्वरूप हैं।[4] आप निर्विकार हैं। आप गुणों का आश्रय होकर भी निर्लिप्त एवं साक्षी हैं।[5] आप रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण रूप शक्तियों से सृष्टि की रचना, पालन एवं संहार करते हैं फिर भी उनसे असंपृक्त रहते हैं।[6] जीवों पर अनुग्रह करने के लिए आप अवतार लेते हैं परन्तु जीव-जगत् से आप सर्वथा परे हैं।[7]

१०. मायापति

स्तुतियों में भगवान् मायापति के रूप में भी चित्रित किए गये हैं। माया उनकी निज शक्ति है जिसके आधार पर वे विभिन्न प्रकार की लीलाओं का सम्पादन करते हैं। माया के कारण ही जगत् विमोहित होता है। आप सर्वत्र विद्यमान होते हुए भी माया के द्वारा अपने स्वरूप को छिपाये रहते हैं।[8] अनादिरात्मा निर्गुण प्रकृति से परे आप सिसृक्षा से वैष्णवी माया को स्वीकृत करते हैं।[9] विश्व के निर्माता, सर्वव्यापक, अनन्त श्रीकृष्ण

१. श्रीमद्भागवत १०.३७.१२
२. तत्रैव १०.७०.३७
३. तत्रैव १०.१०.३०
४. तत्रैव १०.३.१७, १०.३.१३
५. तत्रैव १०.४०.१२
६. तत्रैव १० ४८.२१
७. तत्रैव १०.२७.५
८. तत्रैव १.८.१९
९. तत्रैव ३.२६.४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रेष्ठ मायावी हैं। इनकी माया का कोई पार नहीं पा सकता।[1]

११. विष्णु से एकात्मकता

अव्यक्त, स्वयंज्योति, गुण-विकार रहित, विशेषण रहित अनिवर्चनीय निष्क्रिय, विशुद्ध सत्ता मात्र भगवान् विष्णु ही श्रीकृष्ण हैं।[2] आप ही अविनाशी पुरुषोत्तम नारायण हैं जिनके नाभिकमल से ब्रह्माजी का आविर्भाव हुआ था।[3] आप प्रकृति पुरुष के नियामक साक्षात् परमेश्वर हैं। आप गुणों के आश्रय, इन्द्रियगोचर एवं "शेष" संज्ञक हैं।

१२. भक्तों के परम साध्य

श्रीमद्भागवत में यद्यपि अनेक विषयों का विस्तृत विवेचन उपलब्ध है परन्तु सबका आश्रय (लक्ष्य) भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं।[4] स्वर्गराज्य, महेन्द्र का आधिपत्य, अमरत्व, चतुर्विधमोक्ष का परित्याग कर भगवान् के चरण की ही कामना करते हैं।[5]

सब कुछ त्याग कर प्रेमी भक्त अपने परम आश्रय में चला जाता है।[6] भक्त बार-बार विपत्तियों की ही याचना करते हैं जिससे कि भगवान् का दर्शन हो सके, क्योंकि विपत्तियों में प्रभु अवश्य आते हैं।[7]

१३. परमज्ञानी

भागवतकार की दृष्टि में श्रीकृष्ण परम ज्ञानी हैं। विविध प्रकार के ज्ञान-विज्ञान उन्हीं में अनायास रूपेण रमण करते हैं। सारे ज्ञानस्रोतों का उद्गम स्थल प्रभु ही हैं।

इस प्रकार स्तुतियों में भगवान् के सम्पूर्ण रूप का उद्घाटन हुआ है। आप सर्वव्यापक निरंजन, अकिंचन, सर्वेश्वर, सर्वभूताधिवास, जगत्पति, मायापति, शरणागत वत्सल, दुष्टनिहन्ता, यज्ञरक्षक, वीरयोद्धा, गो-विप्र-ऋषि-सेवक, धर्म प्रतिष्ठापक, अधर्मविनाशिक, आदि हैं।

विष्णु

'विष्लृ व्याप्तौ' एवं 'विश् प्रवेशने' धातु से विष्णु शब्द की निष्पत्ति होती है, जिसका अर्थ है व्यापक होना। 'वेवेष्टि व्याप्नोति इति विष्णु'

१. श्रीमद्भागवत १०.७०.३७
२. तत्रैव १०.३.२४
३. तत्रैव १०.४०.१
४. तत्रैव १०.८५.३
५. तत्रैव १०.१६.३७
६. तत्रैव १०.२९.३१
७. तत्रैव १.८.२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो सबमें व्यापक है वह विष्णु है। परात्पर सत्ता सर्वव्यापक होने के कारण विष्णु कही जाती है। आप परमपिता परमेश्वर सर्वव्यापक होने के कारण सभी प्राणियों में निवास करते हैं। वृहत् होने के कारण विष्णु कहलाते हैं।

श्रीमद्भागवतीय स्तुतियों में अनेक स्थलों पर विष्णु के स्वरूप पर प्रकाश पड़ता है। अनेकों स्तुतियां विभिन्न भक्तों द्वारा भगवान् विष्णु के प्रति समर्पित की गई हैं। यहां पर विष्णु और श्रीकृष्ण में एकता का प्रतिपादन किया गया है। जो विष्णु हैं वही श्रीकृष्ण और जो श्रीकृष्ण हैं वही विष्णु हैं। अव्यक्त, कारणस्वरूप, ब्रह्म, ज्योतिस्वरूप, गुण-विकार विशेषणादि से रहित स्वयं विष्णु ही श्रीकृष्ण हैं।[1]

विष्णु का यज्ञ से सम्बन्ध प्रतिपादित किया गया है। ये स्वयं यज्ञ स्वरूप हैं। "यज्ञो वै विष्णुः"[2], "विष्णुर्वैयज्ञः"[3], "यो वै विष्णुः स यज्ञः"[4], "वासुदेवपरामखाः"[5], "नारायणपरामखाः"[6], "नारायणपरा यज्ञाः"[7] आदि श्रुतिवचन भगवान् विष्णु के यज्ञरूपता को प्रतिपादित करते हैं। धर्म प्रवृत्ति के प्रयोजक एवं वेदत्रयी से प्रतिपादित यज्ञ ही भगवान् का स्वरूप है।[8] आप साक्षात् यज्ञ पुरुष एवं यज्ञ रक्षक हैं। अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, चातुर्मास्य और पशुसोम ये पांच प्रकार के यज्ञ आपके ही स्वरूप हैं तथा मन्त्रों द्वारा आपका ही पूजन होता है।[9]

भगवान् विष्णु जीवों के परमाश्रय हैं। संसारानल से संतप्त जीवों के शरण्य हैं। निष्काम भाव से जो भजन करते हैं उनके आप रक्षक हैं। जैसे गाय बछड़े को व्याघ्रादि के भय से बचाती है वैसे ही संसारभय से आप जीवों का त्राण करते हैं।[10] आप अपने शरणागत भक्तों के सुहृद आत्मा

---

१. ऐतरेय ब्राह्मण १.१५
२. कृष्ण यजुर्वेद ३.५.२, शतपथ १.१.२.१३, तैत्तिरीय ब्राह्मण १.२.५.४०
३. ऐतरेय ब्राह्मण १.१५
४. शतपथ ब्राह्मण ५.२ ३.६
५. श्रीमद्भागवत १.२.२८
६. तत्रैव २.५.१५
७. पद्मपुराण उत्तर खण्ड ८०.९२, ब्रह्मपुराण ६०.२६, मत्स्यपुराण २४६.३६
८. श्रीमद्भागवत ४.७.२७
९. तत्रैव ४.७.४१
१०. तत्रैव ४.९.१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और रक्षक हैं।[1] शरण में आये हुए जीवों के दुःखहर्त्ता हैं—

विधेहि तन्नो वृजिनाद्विमोक्षं प्राप्तावयं त्वां शरणं शरण्यम् ॥[2]

आप प्राणदाता एवं कामदाता हैं। आप अन्तःकरण में प्रविष्ट होकर वाणी को शक्ति देते हैं एवं हस्तपादादि इन्द्रिय एवं प्राणों को चेतनता प्रदान करते हैं।[3] आपके उत्तम चरण सकाम पुरुषों को सम्पूर्ण पुरुषार्थों को प्राप्ति कराने वाले हैं।[4]

माया आपकी निज सहचरी है। यद्यपि आप निर्विकार, चैतन्य, परम आनन्द स्वरूप हैं परन्तु माया के आश्रय से जगत् को स्वीकार करते हैं। माया के द्वारा अपने स्वरूप को छिपाये रखते हैं जिस कारण सामान्य जन के लिए दुख ग्राह्य है। आप मायापति होते हुए भी उससे अलग साक्षी मात्र हैं। प्रकृति का कार्य आपका नहीं होता हुआ भी माया के कारण आप ही में भासित होता है। वस्तुतः आप माया से सर्वथा असंपृक्त, विकाररहित[5] एवं सर्वतन्त्रस्वतन्त्र[6] हैं। आप इन्द्रिय के विषयों से परे[7], सर्वव्यापक एवं सर्वसमर्थ हैं।[8] आप अज्ञानापास्तक[9] संसार के नियामक, साक्षी, स्वयंप्रकाश, ज्ञानस्वरूप एवं योगीजनग्राह्य हैं। आपका भक्तों के क्लेश हारक स्वरूप प्रसिद्ध है।

आप सम्पूर्ण जगत् के कारण तथा आश्रय स्थान हैं। सारा प्रपंच आप ही से उत्पन्न होता है और आपही में विलीन हो जाता है। प्रलयकाल के घनान्धकार में केवल आपही शेष रह जाते हैं।

आप भक्तों के परमलक्ष्य हैं। भक्तजन सब कुछ परित्यागकर आपकी चरणरज की ही कामना करते हैं—वह वैसा कुछ भी नहीं चाहता जहां पर प्रभु चरणरज की प्राप्ति न हो।[10]

वृत्रासुर त्रैलोक्य के ऐश्वर्य का परित्याग कर केवल भगवच्छरणागति की ही याचना करता है—

---

१. श्रीमद्भागवत ४.७.३०,४२
२. तत्रैव ४.८.८१
३. तत्रैव ४.९.६
४. तत्रैव ४.७.२९
५. तत्रैव ४.७.३४,३९, ४.२०.२९
६. तत्रैव ४.७.२६, ४.३.२४
७. तत्रैव ४.९.१३, ४.३०.२२
८. तत्रैव ८.१७.२६
९. तत्रैव ८.३.२२,२४
१०. तत्रैव ४.२०.२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धिरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे ।।[1]

शिव

शिव लोकमंगलकारक देव हैं। वैदिक काल से ही इनकी प्रसिद्धि प्राप्त है। वैदिक युग में मुख्यतः ये संहारकर्त्ता के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनका शिव स्वरूप पुराण साहित्य में अधिक विस्तृत हुआ है। इन्हें मंगलस्वरूप होने के कारण शिव कहा जाता है। समस्त प्रपंच से उपरत होकर अपने स्वरूप में स्थित रहते हैं अतएव शिव नामाख्यात हैं। जो स्वयं ज्योतिस्वरूप परमार्थ तत्त्व हैं—

यत् तच्छिवाख्यं परमार्थतत्त्वं देव स्वयंज्योतिरवस्थितिस्ते ।।[2]

श्रीमद्भागवतकार उनके मंगलस्वरूप का ही प्रतिपादन करते हैं।

आप स्वयं प्रकाश तथा चराचर प्राणी के रक्षक हैं। आप सम्पूर्ण जीवों के आत्मा तथा प्राणदाता, जगत् के आदि कारण हैं। आप काल हैं। धर्म भी आपका ही स्वरूप है। आपही प्रणव और त्रिगुणात्मिका प्रकृति हैं।[3] सर्वदेवस्वरूप अग्नि आपका मुख है, पृथिवी चरण कमल है, कालगति है, दिशाएं कान हैं तथा वरुण रसनेन्द्रिय हैं। आकाश नाभि है, चन्द्रमा मन और स्वर्ग सिर है।[4] इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् आपका ही स्वरूप है अर्थात् आप सर्वव्यापक, सर्वसमर्थ तथा माया आदि के बन्धन से रहित स्वीय आत्मा में रमण करने वाले हैं।

आप भक्तों के, शरणगतों के रक्षक एवं जीवनदाता हैं। समस्त जगत् का एकमात्र आश्रय आपही हैं। आप शरणागत की पीड़ा नष्ट करने वाले एवं जगद्गुरु हैं।[5] आप समस्त प्राणियों के आत्मा और जीवनदाता हैं।[6] भक्तों पर महान् अनुग्रह करते हैं। जैसे लाठी लेकर चरवाहा अपने पशुओं की रक्षा करता है वैसे ही आप सम्पूर्ण प्राणियों के रक्षक हैं।[7] आप अनन्त असुरों का विनाशकर जगत् का कल्याण करते हैं।

आप योगियों के परम आश्रय तथा भक्तों के परमलक्ष्य हैं। निर्वाण को त्यागकर भी भक्त आपकी भक्ति की ही याचना करता है।[8] आपही अपनी

१. श्रीमद्भागवत ६.११.२५
२. तत्रैव ८.७.२९
३. तत्रैव ८.७.२५
४. तत्रैव ८.७.२७
५. तत्रैव ८.७.२२
६. तत्रैव ८.७.२१
७. तत्रैव ४.७.१४
८. तत्रैव १२.१०.३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शक्ति से ब्रह्मा विष्णु और महेश रूप में प्रकट होते हैं तथा सृष्टि का सृजन, पालन और संहार करते हैं।

आप ज्ञान स्वरूप हैं। आपही से वेद प्रकट हुए, इसलिए आप समस्त ज्ञान के मूल स्रोत स्वतःसिद्ध ज्ञान हैं।[1] आप सांख्यादि समस्त शास्त्रों में स्थित हैं और उनके कर्त्ता भी हैं।[2]

आप परम ज्योतिर्मय स्वरूप परम ब्रह्म हैं। रजोगुणादि के भेद भाव से रहित और इन्द्रादि देवों के लिए भी अविज्ञात हैं।[3]

इस प्रकार भगवान् शिव सर्वसमर्थ सर्वव्यापक, सर्वोच्च ईश्वर, निर्विकार, चैतन्य, शरणागतवत्सल, दुष्टों का संहारक, दलितों का उद्धारक, मार्कण्डेय प्रभृति भक्तों के जीवनदाता आदि रूप में भागवतीय स्तुतियों में आए हैं।

राम

"रमन्ते योगिनो ध्यानेन क्रीडन्त्यत्रेति राम"[4] अर्थात् जिसमें योगिराज रमण करते हैं वे राम हैं। रमु क्रीडायाम् और रा दीप्त्यादानयोः धातुओं से राम शब्द की निष्पत्ति होती है—जिसका अर्थ रमण करने वाला, सर्वव्यापक, सर्वप्रकाश तथा ईश्वर है। राम पद परब्रह्म का द्योतक है।[5]

इनका स्वरूप वाल्मीकि रामायण और विविध पुराणों में विस्तृत रूप से विवेचित है। श्रीमद्भागवतपुराण में इनका अतिसंक्षिप्त चरित्र है। सिर्फ एक ही स्थल पर भक्तराज हनुमान द्वारा इनकी स्तुति की गई है।

आप सत्पुरुषों के लक्षण, शील और चरित से युक्त हैं। लोकाराधक और ब्राह्मण भक्त हैं। आप विशुद्ध स्वरूप, अद्वितीय, अनन्त, ज्ञानस्वरूप, नाम रूप से रहित और अहंकारशून्य हैं।[6] आप धर्म प्रतिष्ठापक और लोकशिक्षक हैं।[7]

आप सर्वाङ्गसुन्दर एवं मनोज्ञ हैं। लोकरक्षा के लिए ही आप मर्त्यावतार ग्रहण करते हैं।

---

१. श्रीमद्भागवत ८.७.२५
२. तत्रैव ८.७.३०
३. तत्रैव ८.७.३१
४. तत्रैव वंशीधरी टीका, पृ० ८
५. तत्रैव ८
६. श्रीमद्भागवत ५.१९.४
७. तत्रैव ५.१९.७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकर्षण (बलराम)

अनन्तनामाख्यात पाताल में विद्यमान भगवान् की तामसी नित्य कला द्रष्टा और दृश्य को खींचकर एक कर देती है इसलिए उसे संकर्षण कहा जाता है।[1] योग माया ने इसी अनन्तकला को देवकी के गर्भ से खींचकर रोहिणी के गर्भ में प्रतिष्ठापित किया था अतएव उसे संकर्षण कहते हैं, लोकरंजन करने के कारण राम और बलवानों में श्रेष्ठ होने के कारण बलभद्र हैं।[2] आप अनन्तशक्तिमान्, अनन्तऐश्वर्यशाली और शरणागतवत्सल हैं।[3] आप सारे लोकों के आधार शेषजी हैं।[4]

आप संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के एक मात्र कारण हैं। सम्पूर्ण जगत् आपका खेलस्वरूप है।[5] आप अविनाशी, जगन्नियन्ता एवं योद्धाओं में अग्रणी हैं। आप अनन्त, सर्वव्यापी एवं जगदाधार हैं।

आप भक्तों के परमशरण्य हैं। कामनाओं के दाता एवं उनके रक्षक हैं। आपके दर्शन से ही मनुष्यों के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और नीच चांडाल भी संसार से मुक्त हो जाता है।[6]

इस प्रकार भगवान् संकर्षण का चरित्र संक्षिप्त होते हुए भी लोकमंगलकारी है। सम्पूर्ण धरती का भार अपने ऊपर धारण कर अचल भाव से स्थित रहते हैं। समस्त प्रपंच का कारण होते हुए भी स्वयं प्रपंच रहित हैं।

नृसिंह

देव, मनुष्यादि जीवों के भय निवृत्यर्थ भगवान् विष्णु ही नृसिंह के रूप में अवतरित होते हैं।[7] सेवक प्रह्लाद की रक्षा के लिए, ब्रह्मा की वाणी को सत्य करने के लिए तथा सभी पदार्थों में अपनी व्यापकता दिखाने के लिए भगवान् खम्भे में प्रकट होते हैं। उनका आधा शरीर मनुष्य का एवं आधा सिंह का था इसलिए वे नृसिंह कहलाते हैं।[8]

उनका स्वरूप अत्यधिक भयावह है। तपाये हुए सोने के समान भयानक पीली-पीली आंखें हैं। जंभाई लेने से गर्दन के बाल इधर-उधर

१. श्रीमद्भागवत ५.२५.१
२. तत्रैव १०.२.१३
३. तत्रैव १०.६५.२७
४. तत्रैव १०.६८.४४
५. तत्रैव १०.६८.४५
६. तत्रैव ६.१६.४४
७. तत्रैव २.७.१४
८. तत्रैव ७.८.१८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लहरा रहे हैं। तलवार के समान लपलपाती एवं छूरे की धार के समान तीखी जिह्वा एवं टेढ़ी भौहों से युक्त उनका मुख अत्यन्त भयंकर है। बृहद्-नासिका, विशालशरीर, चौड़ी छाती, सैकड़ों आयुद्धों से युक्त भुजायें, सुदर्शन-चक्र आदि से युक्त भगवान् अत्यन्त भयंकर हैं।

लोक मंगल के लिए, भक्तों के कल्याणार्थ ही आप नृसिंह रूप में अवतरित होते हैं। शरण में आये भक्तों की रक्षा करते हैं।[1] आपके भक्त मुक्ति का भी अनादर करके आपके शरणागत होते हैं और आप उसके बाल भी बांका नहीं होने देते हैं।[2]

इस प्रकार श्रीमद्भागवत में भगवान् नृसिंह का चरित अति संक्षिप्त रूप में आया है। भक्त भयनिवृत्यर्थ ये अवतार ग्रहण करते हैं।

देव नामों का विवेचन

विविध प्रपंचात्मिका सृष्टि में स्वभाव, गुण क्रिया आदि का वैलक्षण्य होने से नाम, अभिधान, संज्ञा आदि भी भिन्न-भिन्न तरह के होते हैं। अपनी हृदयस्थ भावनाओं के आधार पर या अभिधेय के गुणादि को सामने रखकर विविध नाम संज्ञादि से उसे अभिहित करते हैं। वार्त्तालाप, व्यवहार कार्य में प्रत्येक वस्तु को किसी न किसी रूप में अभिहित किया जाता है।

स्तुतियों में देवों के लिए विभिन्न नामों का प्रयोग किया गया है। उनमें अर्थ की दृष्टि में कोई भेद नहीं है बल्कि केवल प्रवृत्ति निमित्त का भेद रहता है।

भक्त अपने उपास्य को उनके अपने ही गुणों के अनुसार विविध नाम संज्ञा अभिधानों से विभूषित करता है। जब आर्त, दैन्य, प्रपत्ति, सख्य, उपकृत भाव, प्रेमभाव आदि से भक्तपूर्ण हो जाता है तब उनका चित्त विगलित होने लगता है, मनोवृत्तियां एकत्रावस्थित हो जाती हैं। तभी वह अपने प्रभु के प्रति विविधात्मक अतिसुन्दर नामांजलि प्रस्तुत करता है, वह नामांजलि अपने पारिवारिक सम्बन्धों पर या प्रभु के नाम गुणों के आधार पर भी हो सकती है–

पारिवारिक संबंध के आधार पर

कृष्णाय वासुदेवाय देवकी नन्दनाय च।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमोनमः॥[3]

---

१. श्रीमद्भागवत ७.८.४१
२. तत्रैव ७.८.४२
३. तत्रैव १.८.२१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रभु के गुणों के आधार पर

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ।
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥[1]

उपर्युक्त प्रथम श्लोक में कुन्ती अपने निजी सम्बन्धों के आधार पर भगवान् कृष्ण को विविधाभिधानों—कृष्ण, वासुदेव, देवकीनन्दन, नन्दगोप-कुमार, गोविन्द आदि तथा द्वितीय श्लोक में भगवान् कृष्ण के रूप सौन्दर्य के आधार पर पङ्कजनाभ, पङ्कजमालिन, पङ्कजनेत्र आदि नामों से उन्हें विभूषित करती है।

देव नामावलियों का मूल उत्स वेद है। विविध अवसरों पर साक्षात्कर्मा ऋषि अपने प्रभु को विविध नामों से पुकारते हैं। वेद की स्पष्टोक्ति है कि "अनिष्ट को दबाने के लिए उस शतक्रतु, अनन्तपराक्रम, यज्ञस्वरूप, परमपावन प्रभु के नामों का जप करना चाहिए।"

वैदिक ऋषियों ने इन्द्र वरुण, मित्र, अग्नि, यम आदि नामों से प्रभु को विभूषित किया है। अग्नि के लिए लगभग ४०० विभिन्न नाम आये हैं। ऋग्वेद का प्रारम्भ ही अग्नि के विशेष नामाभिधानों से होता है—

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवं ऋत्विजं होतारं रत्नधातमम् ।[2]

विविध धर्माचार्यों ने अपने-अपने उपास्य के लिए विविध नामों का प्रयोग किया है—दुर्गा, काली, शंकर, कृष्ण, जिन, अर्हत्, तथागत, खुदा, अल्ला, हजरत, गौड, लौर्ड आदि अनेक नामों द्वारा अपने उपास्य का स्मरण किया जाता है।

श्रीमद्भागवत के प्रत्येक स्तुति में प्रभु के विभिन्न नामों का प्रयोग पाया जाता है। कृष्ण, विष्णु, राम, नृसिंह, बाराह आदि परमात्मा विषयक एवं तदावतारों से सम्बन्धित नामों का प्रयोग प्राप्त होता है। विभिन्न देव सम्बन्धी अभिधानों का उपयोग उनके भक्तों द्वारा विभिन्न अवसरों पर किया गया है।

नाम-अभिधान-संज्ञा आदि शब्द समानार्थक हैं।

विभिन्न अभिधानों में निहित अर्थों के आधार पर उनका वर्गीकरण किया जा रहा है, जो निम्नलिखित हैं

(१) निर्गुण स्वरूप के प्रतिपादक
(२) कृष्ण के मानवीय रूप (लीला) से सम्बन्धित
(३) सर्वव्यापकत्व के प्रतिपादक

१. श्रीमद्भागवत १.८.२२
२. ऋग्वेद ३.३७.३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(४) स्वरूप बोधक
(५) जगत् विषयक
(६) ईश्वर से सम्बन्धित
(७) भक्त से सम्बद्ध
(८) काल
(९) अवतार से सम्बद्ध

१. निर्गुण स्वरूप के प्रतिपादक

इस वर्ग में वैसे नामावलियों को रखा गया है जो भक्तों के उपास्य के निर्गुणस्वरूप को उद्घाटित करते हों। कुछ प्रमुख नामों को उद्धृत किया जा रहा है --

अव्यक्त, अव्यय (१.८.१९), अलक्ष्य (१.८.१८), आत्माराम (१.८.२७), अकिंचन (१.८.२६), अगोचर (१.८.२६), अनादि (१.८.२८), अज (१.८.२३), अनन्त (१०.३७.२३), अप्रमेयात्मन् (१०.३७.११), अव्यक्त शक्ति (१०.१६), अद्वय (१०.५९), अखण्ड (४.९.१४), आत्माराम (१.८.२७), आविरात्मा (१.९), आनन्दस्वरूप (१०.३.३१), कूटस्थ (१०.१६), निर्गुण (१०.३.२४), निर्विकार (१०.३.२४), निरीह (१०.३.२४), निरंजन (१०.५), परमात्मन् (१०.१६), पुरुष (१०.१०.२९, १.१.१८), विशुद्धसत्त्व (१०.२७.४), ब्रह्मज्योति (१०.३.२४), विशुद्ध विज्ञानघन (१०.३७.२३), विशुद्धज्ञानमूर्ति (१०.३७), शान्त (१.८.२९), सत्यव्रत (१०.२.२६)।

कृष्ण से सम्बद्ध नाम

अखिल गुरु १.८, कृष्ण १.८, गोविन्द १.८, गोपिकानन्दन १०.३१, जगद्गुरु १.८, नन्दगोपकुमार १.८, नारायण १०.३१, वासुदेव १.८, साक्षात्पुरुष १०.३.३१।

स्वरूप बोधक

महायोगिन् १.८.९, पङ्कजनाभ १.८, पङ्कजमालिन १.८, पङ्कजनेत्र १.८, पङ्कजाङ्घ्रि, वेदगर्भ ३.३३.८ (कपिल का नाम) शंखचक्रगदाधार।

जगत् से संबंधित नाम

अखिलवास १०.३७, अखिल गुरु १.८, भूतवास १०.१६, विश्वात्मा १०.१६, विश्वमूर्ति १०.१६, विश्वेश १०.१६, लोकनाथ १०.२७, विश्वगोप्ता १०.३१, सर्वबीज १०.२७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भक्त से संबंधित

नाथ १.८.१०, दीननाथ ३.३.१८, कामद १०.३१, विश्वगोप्ता १०.३१ ।

ईश्वरत्व के प्रतिपादक नाम

जगत्पति १.८.९, हृषिकेश १.८.९, इन्द्रियेश्वर १०.१०.२९, श्रीपति, भूपति, प्रजापति, धियांपति, धरापति २.४.१२ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. श्रीमद्भागवत की स्तुतियों का काव्यमूल्य एवं रसभाव योजना

जब कवि अपने मन, वचन और इन्द्रियों को एक स्थान पर स्थापित कर देता है तब काव्य वैखरी प्रस्फुटित होती है। हृदय की अन्तर्वेदना, भावुकता, सांसारिक अनुभूति, इत्यादि को कवि सहजाभिव्यंजक शब्दों द्वारा अभिव्यक्त कर देता है। स्तुतियों में भी यही स्थिति होती है। जब भक्त सम्पूर्ण रूप से प्रभु की प्रपत्ति स्वीकार कर लेता है, तब अनायास ही उसके हृदय से सरस एव मनोरम शब्दों की प्रस्रविणी निःसृत होने लगती है।

श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में शास्त्राचार्यों के द्वारा निर्धारित सभी काव्य उपादानों की प्राप्ति होती है। शब्दालंकार, अर्थालंकार, रस, शब्द-शक्तियां, प्रतीक, बिम्ब, छन्दो-योजना एवं सौन्दर्य प्रभृति समस्त काव्य तत्त्व श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में समाहित हैं। आचार्य भामह ने शब्द, छन्द, अभिधान अर्थ, इतिहासाश्रित कथा, लोक, युक्ति और कला इन आठ तत्त्वों को काव्य के लिए आवश्यक माना है।[1] इनकी दृष्टि में जिस कवि की कृति में उपर्युक्त आठों तत्त्व समाहित होते हैं वही कृति काव्य की उच्च पंक्ति में निक्षिप्त करने योग्य है। उनका कथन है कि सत्कवित्व के बिना वाणी में वैदग्ध्य आ नहीं सकता और बिना वैदग्ध्य के कोई भी कृति चमत्कारपूर्ण नहीं हो सकती

रहिता सत्कवित्वेन कीदृशी वाग्विदग्धता: ॥[2]

भरतमुनि ने श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, पदों की सुकुमारता, अभिव्यंजकता, उदारता और कान्ति आदि दश गुणों को काव्य के लिए उपादेय माना है।[3] पर भामह की तत्त्वग्राहिणी प्रतिभा ने प्रसाद माधुर्य और ओज इन तीन गुणों को ही अपनी स्वीकृति प्रदान की है।[4] इन्होंने वक्रोक्ति को काव्य निष्पादक तत्त्व बतलाकर उसे काव्य के लिए

१. काव्यालंकार सूत्र १.९
२. तत्रैव १.४
३. नाट्य शास्त्र १७.९६
४. काव्यालंकार १.१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनिवार्य एवं व्यापक गुण बतलाया है।[1] आचार्य भामह के मत में गुण, अलंकार, अदोषता, एवं वक्रोक्ति आदि उत्तम काव्य के लिए आवश्यक तत्त्व हैं।[2] आचार्य दण्डी के अनुसार उत्तम काव्य में श्लेष, प्रसाद, समता, माधुर्य सुकुमारता, अर्थव्यक्ति, उदारता, ओज, कान्ति और समाधि ये दश गुण वैदर्भी मार्ग के प्राण हैं। रीति और गुण का सम्बन्ध स्थापित होने पर ही वैदर्भ काव्य को सत्काव्य कहा जाता है।[3] आचार्य रूद्रट का मत है कि काव्य में चारुत्व लाने के लिए अलंकारों का सन्निवेश आवश्यक है। टीकाकार नमिसाधु ने लिखा है कि दोषों का त्याग, सारग्रहण, अलंकारप्रयोग आदि प्रमुख तत्त्व हैं। निर्दुष्ट तथा अलंकारयुक्त रचनाशक्ति अथवा कवि-प्रतिभा, व्युत्पत्ति, निपुणता एवं प्रभूत अभ्यास के कारण ही महनीय कृति का प्रणयन होता है।[4] छन्दकोशादि विविध शास्त्रों के अध्ययन एवं मनन (अनुशीलन) से काव्य प्रणयन में गंभीरता एवं रमणीयता का आधान होता है। अतएव ये दोनों तत्त्व अध्ययन और मनन, काव्य मूल्य के निर्मापक आधारों में से हैं।[5]

वामन के अनुसार काव्य का सौन्दर्य शब्द और अर्थ में निहित है। माधुर्यादि गुण काव्य सौन्दर्य के मूल कारण होने के कारण काव्य के नित्य धर्म हैं। उपमादि अलंकार उत्कर्षाधायक होने के कारण अनित्य धर्म हैं। अतएव काव्य में माधुर्यादि गुणों एवं उपमादि अलंकारों का सन्निवेश आवश्यक है।[6]

आचार्य कुन्तक के अनुसार किसी भी काव्य के लिए षड्विध वक्रता का समावेश आवश्यक है। वर्ण चमत्कार, शब्द सौन्दर्य, विषय वस्तु की रमणीयता, अप्रस्तुतविधान एवं प्रबन्ध कल्पना ये षड्विध वक्रोक्ति के अन्तर्गत आते हैं।[7] रस, अलंकार, उक्ति वैचित्र्य, औचित्य एवं मार्गत्रय-सुकुमार, विचित्र और मध्यम भी काव्य चमत्कार के सृजन के लिए आवश्यक है।[8] मम्मट ने वाच्यार्थ के अपेक्षा व्यंग्यार्थ को उत्तमकाव्य के लिए अत्यधिक उपयुक्त माना है।[9]

---

१. काव्यालंकार ५.६६
२. तत्रैव ३.५४
३. काव्यादर्श १.४१-४४
४. काव्यालंकार १.४ की टीका
५. तत्रैव १.१८
६. काव्यालंकार सूत्र ३.१.१ एवं ३.१.३
७. वक्रोक्तिजीवितम् १.९.२१
८. तत्रैव १.६,२३,२४,५३
९. काव्य प्रकाश १.२.४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य विश्वनाथ ने मम्मट की मान्यता का समर्थन करते हुए रस को काव्य पुरुष की आत्मा, माधुर्य, प्रसाद और ओज को उसकी शूरवीरता, दया एवं दाक्षिण्यादि को गुण, श्रुतिकटुत्वादि को दोष उपमादि को उसके विभिन्न अलंकार बताया है।[1] इनके मत में रस, भाव, गुण, अलंकार एवं औचित्य काव्य के प्रतिमान हैं। पंडित राज जगन्नाथ ने रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहा है।[2] रमणीयता अलौकिक चमत्कार का पर्याय है और विशिष्ट प्रकार की आनन्ददायिनी अनुभूति है। इनकी दृष्टि में विशिष्ट चमत्कार ही काव्य का सबसे बड़ा प्रतिमान है।

भक्त कवि जगद्धरभट्ट ने शिव की स्तुति करते समय उत्तम काव्य के प्रतिमानों का निर्देश किया है—

ओजस्वी मधुरः प्रसादविशदः संस्कारशुद्धोभिधा-
शक्तिव्यक्तिविशिष्टरीतिरचितैरर्थैर्धृतालंकृतिः।
वृत्तस्थः परिपाकवानविरसः सद्वृत्तिरप्राकृतः
तस्य कस्य न सत्कविर्भुवि यथा तस्यैव सूक्ति क्रमः॥[3]

अर्थात् ओज, प्रसाद एवं माधुर्य गुणों का सद्भाव, विशुद्धसंस्कार-युक्त भाषा, विशिष्ट-रीति-सम्पन्नता, सरसता, अलंकार युक्तता, अभिधा-शक्ति के साथ लक्षणा और व्यंजना का सद्भाव, सुन्दर छन्दों का समावेश, कैशिकी आदि वृत्तियों का निवेश एवं उक्ति चमत्कार उत्कृष्ट काव्य के लिए आवश्यक प्रतिमान हैं।

उपर्युक्त मतों के समालोचना से उत्तम काव्य के लिए निम्नलिखित तत्त्व आवश्यक हैं—

(१) माधुर्यादि गुणों का सन्निवेश
(२) शुद्ध संस्कार युक्तभाषा
(३) अलंकारों का प्रयोग
(४) चमत्कारजन्यता
(५) आह्लादकता
(६) सुकुमारता
(७) भावों की अभिव्यंजना
(८) वैदर्भादि रीतियों का प्रयोग
(९) समरस छन्दों का समावेश
(१०) उक्ति वैचित्र्य

---

१. साहित्य दर्पण, पृ० १२
२. रसगंगाधर १.१
३. स्तुतिकुसुमांजलि ५.३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(११) चित्रात्मकता
(१२) सरल एवं सहृदयाह्लादक शब्दों का उचित विन्यास
(१३) अदोषता
(१४) मार्गत्रय की योजना
(१५) अभिधा के साथ लक्षणा एवं व्यंजना का सद्भाव
(१६) कोमलता
(१७) रसमयता
(१८) मार्मिकता
(१९) संक्षिप्तता
(२०) स्वाभाविक अभिव्यक्ति
(२१) भावातिरेकता
(२२) छन्दोजन्य नाद माधुर्य
(२३) भावानुकूल वातावरण
(२४) सूक्ष्म संवेदना ।

श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में उत्तम काव्य के उत्थापक सभी तत्त्व एकत्र समाहित हैं। भावों की स्वभाविक अभिव्यक्ति एवं सहज सम्प्रेषणीयता, भाषा की सरलता, समरसता एव संवेद्यता, छन्दालंकारों का समुचित प्रयोग, रीति, गुणादि की योजना, अन्तर्वेदना, कल्पना चारुता, सूक्ष्मसंवेदना आदि गुण सर्वत्र विद्यमान हैं। उनका संक्षिप्त पर्यालोचन इस प्रकार किया जा रहा है :—

१. माधुर्यादि गुणों का सन्निवेश

गुण काव्य के उत्कर्षाधायक तत्त्व है। ये शब्दार्थ रूप काव्य के साक्षात् उपकार करते हैं, रस के आश्रय से नहीं। आचार्य मम्मट ने पूर्वाचार्यों द्वारा निरूपित दश काव्य गुणों का निरसन कर— माधुर्य, ओज और प्रसाद तीन ही गुण स्वीकृत किया है।[1]

श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में तीनों गुणों की योजना सम्यक् रूप में की गई है। भागवतकार ने अनेक स्तुतियों में ट वर्गीय वर्णों को छोड़कर शेष मधुर ह्रस्व वर्णों की योजना कर माधुर्य गुण युक्त पद्यों का ग्रथन किया है। जब चित्तवृत्ति स्वाभाविक अवस्था में रहती है, तब रति आदि से उत्पन्न आनन्द के कारण माधुर्य गुण युक्त रस के आस्वादन से चित्त द्रवीभूत हो जाता है। स्तुति के पूर्वकाल में भक्त की चित्तवृत्तियां एकत्रावस्थित हो जाती हैं, फलतः वह अपने उपास्य के गुणों का वर्णन श्रुतिमधुर शब्दों में करने लगता है। भक्त के अनुरूप ही स्तुतियों में गुणों का सन्निवेश पाया जाता है।

१. काव्यप्रकाश —८।८९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कंशकारागार में सम्पूर्ण देव ऋषि आदि उपस्थित होकर भगवान् की श्रुति-मधुर शब्दों में स्तुति करते हैं--

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्ना ॥[1]

उपर्युक्त श्लोक में ट वर्गीय वर्गों का अभाव है, पद लघु समासांत और सानुस्वार हैं। कोमल कांतपदावली होने के कारण यहां माधुर्यगुण है। अन्य उदाहरण--

नमः पङ्कजनाभाय नमः पंकजमालिने ।
नमः पङ्कज नेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥[2]

यहां देव विषयक रति का प्रतिपादन है। कुन्ती भगवान् से उपकृत होकर स्तुति कर रही है—हे कमलनाभ ! आपको नमस्कार है।

माधुर्य गुण के अतिरिक्त स्तुतियों में प्रसाद और ओज गुण भी पाये जाते हैं। जो भक्त ज्ञानी एवं तत्त्वदर्शी हैं उनकी भाषा ओजगुण गुम्फित है। प्रसाद गुण का तो सर्वत्र साम्राज्य ही पाया जाता है। श्रीकृष्ण द्वारा परावर्तित किए जाने पर गोपियों का हृदय द्रवित हो जाता है, आंखों से आंसुओं की निर्झरिणी निःसृत होने लगती है और पुकार उठती है—हे प्रभो हमने सब कुछ छोड़कर आपके चरण शरण ग्रहण की है--

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं संत्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ।
भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान् देवो यथादिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥[3]

२. शुद्ध संस्कार युक्त भाषा

श्रीमद्भागवत भक्ति का प्रतिपादक ग्रन्थ है, अतएव इसकी भाषा सरल, सुबोध, सुसंस्कृत और सहज ग्राह्य है। स्तुतियों के अतिरिक्त स्थलों में भाषा कहीं-कहीं दुरूह तथा दुर्बोध हो गयी है। तत्त्वदीप निबन्ध नामक भाष्य में श्रीमद्भागवत के तीन प्रकार के भाषाओं का निर्देश है समाधि, मतांतर तथा लौकिकी।

स्तुतियों में सर्वथा प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है। प्रजा जब भूख से संत्रस्त हो जाती है तब वह राजा पृथु की स्तुति इन्द्रवज्रा छन्द में करती है।[4] इसमें स्तुतिगत भाषा की निम्नलिखित विशेषताएं दृष्टिगोचर होती है--मृदुता और कोमलता, भावानुरूप पदावली की योजना, भाव-

१. श्रीमद्भागवत १०।२।२६
२. तत्रैव १।८।२२
३. तत्रैव १०।२९।३१
४. तत्रैव १।१७।९-११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवणता एवं प्रेषणीयता की वृद्धि इत्यादि।

अलंकार नियोजन

काव्य के लिये अलंकार आवश्यक तत्त्व माना गया है। जैसे विधवा स्त्री श्रीहीन हो जाती है उसी प्रकार अलंकार के बिना काव्य का कोई महत्त्व नहीं रहता। श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में सभी प्रमुख अलंकारों का प्रयोग किया गया है। इस प्रसंग का विवेचन अगले अध्याय में किया जाएगा।

चमत्कारजन्य आह्लादकता

पण्डितराज जगन्नाथ ने लोकोत्तर आह्लादजनक शब्द को ही काव्य कहा है।[1] उत्कृष्ट काव्य के लिए चमत्कारजन्यता या आह्लादकता का होना अत्यावश्यक है। श्रीमद्भागत की स्तुतियों का एक-एक श्लोक अलौकिक चमत्कार को उत्पन्न कर आत्मानन्द जनन में समर्थ है। स्तुतियों के अध्ययन से चित्तवृत्ति का विस्तार होता है और तब आनन्द का सृजन। कृष्णविरहातुर गोपियां सर्वत्र कृष्ण का ही दर्शन करने लगती हैं। यह समाधि की अन्तिम स्थिति है। गोपियों की हृदयवीणा की तंत्री झंकृत हो उठती है

जयति तेऽधिक जन्मनाव्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावका स्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते॥[2]

हे प्रियतम! तुम्हारे जन्म के कारण ही वैकुण्ठ आदि लोकों से व्रज की महिमा बढ़ गयी है। तभी तो सौन्दर्य और मधुरता की देवी लक्ष्मीजी अपना वैकुण्ठ-वास छोड़कर यहां नित्य निरन्तर निवास करने लगी है. परन्तु प्रिय! देखो तुम्हारी गोपियां जिन्होंने अपना सर्वस्व तेरे चरणों में समर्पित कर चुकी हैं वन-वन में भटककर तुम्हें ढूंढ रही है।

वैदर्भी आदि रीतियां

साहित्याचार्यों ने रीति को चार प्रकार से विभाजित की है— वैदर्भी, पांचाली, गौडी और लाटी। वैदर्भी सबसे ज्यादा काव्य के लिए उपयुक्त है। ललित वर्णों का विन्यास, भावों की सम्प्रेषणीयता आदि वैदर्भी की विशिष्टतायें हैं। श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में वैदर्भी के अलावे अन्य रीतियां भी प्रसंगानुकूल प्राप्त होती हैं। वैदर्भी का तो स्तुतियों पर एकाधिपत्य जैसा लगता है।

---

१. रसगंगाधर १।२
२. श्रीमद्भागवत १०.३१.१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जब गजेन्द्र सब तरह से थक जाता है अन्त में स्वयं प्रकाश, स्वयं सिद्ध, सबके मूल कारण उस प्रभु को पुकार उठता है—

यः स्वात्मनीदं निजमाययार्पितं क्वचिद् विभातं क्वच तत् तिरोहितम् ।
अविद्धदृक् साक्ष्युभयं तदीक्षते स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः ॥[1]

जिनके परममंगलमय स्वरूप दर्शन करने के लिए महात्मागण संसार की समस्त आसक्तियों का परित्याग कर देते हैं और वन में जाकर अखंड ब्रह्मचर्यादि व्रतों का पालन किया करते हैं तथा अपने आत्मा को सबके हृदय में विराजमान देखकर स्वाभाविक रूप से सबकी भलाई करते हैं वे ही मुनियों के परमगति भगवान् हमारी गति हैं—

विदक्षवो यस्य पदं सुमङ्गलं विमुक्त संगा मुनयः सुसाधवः ।
चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वने भूतात्मभूताः सुहृदयः स मे गतिः ॥[2]

उपर्युक्त श्लोक में वैदर्भी का विलास अत्यन्त हृदयावर्जक है ।

छन्द विधान

काव्य में लयात्मकता एवं गेयता के लिए मनीषीयों ने छन्दों को अनिवार्य तत्त्व माना है । श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग प्राप्त होता है । इस प्रसंग का विस्तृत विवेचन सप्तम अध्याय में उपन्यस्त है ।

चित्रात्मकता

उत्तम काव्य में व्यंजना द्वारा या काव्य श्रवण से सामाजिक या रसिक के सामने वर्णनीय का चित्र या छाया स्पष्ट हो जाती है । भागवतीय स्तुतियों में चित्रात्मकता का दर्शन सर्वत्र होता है । गंगापुत्र भीष्म श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुये कहते हैं -

शितविशिखहतो विशीर्णदंशः क्षतजपरिप्लुत आततायितो मे ।
प्रसभमभिससार मद्वधार्थं स भवतु मे भगवान् गतिर्मुकुन्दः ॥[3]

उपर्युक्त श्लोक में महाभारत युद्ध में अर्जुनसारथि वीरवर श्रीकृष्ण का भयंकर रूप स्पष्ट दृष्टि-गम्य होता है । भगवान् नृसिंह की भयंकरता से त्रिलोकी भयभीत हो रहा है । बालक प्रह्लाद अपने उपास्य के चरणों में सर्वात्मना समर्पित होकर अभय हो जाता है । उनकी भयंकरता का दृश्य का वर्णन इस प्रकार से करता है—

१. श्रीमद्भागवत ८.३.४
२ तत्रैव ८.३.७
३. तत्रैव १.९.३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाहं बिभेम्यजित तेऽतिभयानकास्य जिह्वार्कनेत्रभ्रुकुटीरभसोग्रदंष्ट्रात् ।
आन्त्रस्रजः क्षतजकेशरशङ्कुकर्णान्निर्ह्रादभीतदिगभादरिभिन्नखाग्रात् ॥[1]

परमात्मन् ! आपका मुख बडा भयावना है । आपकी जीह्वा लपलपा रही है । आंखें सूर्य के समान हैं । भौहें चढ़ी हुई हैं, बड़ी पैनी दाढ़े हैं । आंतों की माला, खून से लथपथ गर्दन के बाल, बर्छे की तरह सीधे खड़े कान, एवं दिग्गजों को भी भयभीत कर देने वाला सिंहनाद एवं शत्रुओं को फाड़ डालने वाले आपके इन नखों को देखकर मैं तनिक भी भयभीत नहीं हुआ हूं । इस श्लोक में भगवान् नृसिंह की भयंकरता का चित्र पाठक के सामने स्पष्ट अंकित हो जाता है । भगवान् के ऐसे स्वरूप का दर्शन कर एक तरफ पापी, विधर्मी, अन्यायी पीपलकिसलयों की तरह थर-थर कापने लगते हैं तो दूसरे तरफ भक्त अपने भगवान् के चरणों में सब कुछ समर्पित कर अभयत्व एवं अमरत्व को प्राप्त कर लेता है ।

स्वभाविक अभिव्यक्ति

विचक्षण कवियों की मर्मगतवेदना शब्द के माध्यम से स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्त हो जाती है– उसी को उत्तम काव्य की कोटि में परिगणित किया जाता है । स्तुतियों में स्वाभाविक अभिव्यंजना की सर्वत्र प्रधानता दृष्टिगोचर होती है । जब गजेन्द्र पूर्णत: ग्राह से ग्रसित है, तब प्राक्तन संस्कारवश उसके हृदय से शब्द मणियों की माला स्वत: निर्मित होकर प्रभु-पादपंकजों में समर्पित हो जाती है –

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा न नामरूपे गुणदोष एव वा ।
तथापि लोकाप्ययसंभवाय यः स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ॥[2]

उपर्युक्त श्लोक में प्रभु की सर्वव्यापकता का वर्णन कितना स्वाभाविक रीति से किया गया है इसे कोई भक्त ही समझ सकता है ।

तृष्णा आदि रागादिकों एवं संसारचक्र वहन करने वाले गृहादिकों को त्यागकर एकमात्र प्रभु नृसिंह चरणों में सर्वात्मना समर्पित हो जाने के लिये राक्षस बालकों को भक्तप्रवर प्रह्लाद प्रेरित करते हैं । सहज एवं सरल शब्दों में इस आशय का निरूपण भगवान् वेदव्यास कर रहे हैं ।

तस्माद्रजोरागविषादमन्युमानस्पृहाभयदैन्याधिमूलम् ।
हित्वा गृहं संसृति चक्रवालं नृसिंहपादं भजताकुतोभयमिति ॥[3]

इस प्रकार स्तुतियों में सर्वत्र स्वाभाविकता का साम्राज्य व्याप्त है ।

---

१. श्रीमद्भागवत ७.९.१५
२. तत्रैव ८.३.८
३. तत्रैव ५.१८.१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार काव्य के उत्कर्षभूत सभी गुण, रीति, अलंकार, छन्द एवं चित्रात्मकता आदि स्तुतियों में समाहित हैं।

स्तुतियों की भावसम्पत्ति

भावविवेचन संसार के सुख दुःखात्मक अनुभवों की चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति का नाम काव्य है। कवि जीवन में अनुभूत विभिन्न प्रकार के भावों को कल्पनादि के साथ अनुस्यूत कर अपने काव्य में अभिव्यंजित करता है। किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति विशेष-विशेष अवस्थाओं में जो मानसिक स्थिति होती है उसे भाव कहते हैं और जिस व्यक्ति या वस्तु के प्रति यह भाव उत्पन्न होता है, वह वस्तु या व्यक्ति विभाव कहलाता है। भाव एवं विभाव का यह क्रम प्रत्येक काव्य में अनवरत चलता रहता है। अलंकार शास्त्र में सुख-दुःख आदि स्थितियों के ज्ञापन को भाव कहा गया है। धनंजय ने आन्तरिक स्थितियों के ज्ञापन को भाव शब्द से अभिहित किया है।[1] काव्य प्रकाशकार ने देवादि विषयक रति आदि स्थायीभावों का वर्णन भाव-ध्वनि के अन्तर्गत किया है। अतः स्पष्ट है कि देवादि विषयक रति और उद्बुद्ध मात्र स्थायी भाव कहलाता है। जब संवेगात्मक प्रतीति बौद्धिक प्रतीति को बांधकर अनुभूति के रूप में प्रवाहित होती है तब भाव का जन्म होता है।

श्रीमद्भागवतीय स्तुतियों में अनेक प्रकार के भावों से भावित होकर भक्तगण अपने उपास्य की स्तुति करते हैं। कोई जिज्ञासा भाव से कोई प्रेमभाव से, कोई आर्तभाव, सख्यभाव एवं दास्यभाव से प्रेरित होकर स्तुति करता है। नारद भक्तिसूत्र में जो ग्यारह प्रकार के भक्तिमार्ग बताये गये हैं वे वस्तुतः भाव ही हैं। ग्यारह प्रकार के भक्तों की विभाजन उनके भावना के आधार पर ही संभव है।[2]

श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में अधोविन्यस्त भाव परिलक्षित होते हैं--

१. आर्त्त भाव

त्रिविध कष्ट या सांसारिक विपत्ति से त्रस्त जीव-भक्त, जब उसकी अपनी शक्ति काम नहीं आती प्राणसंकट या धर्मसंकट उपस्थित हो जाता तो वह सर्वात्मना प्रभु के चरणों में समर्पित होकर रक्षा की याचना करता है—पुकारने लगता है अपने प्रभु को, नाथ ! मेरी रक्षा करो प्रभु ! रक्षा

---

१. दशरूपक ४.४

२. नारदभक्तिसूत्र ८२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करो।[1]

अर्जुन, उत्तरा, जीव, गजेन्द्र, कौरवगण, गोपीगण, नागपत्नियां, राजगण आदि की स्तुति में आर्तभाव की प्रधानता है। जब संसार की भयंकरता से मातृगर्भस्थ शिशु सर्वज्ञ जीव भयभीत हो जाता है तब उसी परमनिकेतन की छाया में उपपन्न होता जिसने उसे इस घोर बन्धन में डाला है।

तस्योपसन्नमवितुं जगदिच्छयात्त नानातनोर्भुविचलच्चरणारविन्दम्।
सोऽहं व्रजामि शरणं ह्यकुतोभयं मे येनेदृशी गतिरदर्श्यसतोऽनुरूपा॥[2]

मैं बड़ा अधम हूं, भगवान् ने मुझे जो इस प्रकार की गति दिखाई है वह मेरे योग्य ही है। वे अपनी शरण में आये हुए इस नश्वर जगत् की रक्षा के लिए ही अनेक रूपों को धारण करते हैं, अतः मैं भी भूतल विचरण करने वाले उन्हीं के निर्भय चरणारविन्दों की शरण लेता हूं।

सब तरह से जब थक जाता है, अब उसे कोई रखवाला नहीं दिखाई पड़ता तो अंततोगत्वा प्राक्तन सस्कारवश वह गजेन्द्र "न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा" की स्तुति करने लगता है।[3]

असह्य विष की ज्वाला एवं उसकी भयंकरता से आकुल होकर सम्पूर्ण प्रजा एवं प्रजापतिगण भगवान् शिव के चरण शरण ग्रहण कर विष पानार्थ स्तुति करते हैं—देवताओं के आराध्यदेव महादेव आप समस्त प्राणियों के आत्मा और उनके जीवनदाता हैं। हमलोग आपकी शरण में आये हैं। त्रिलोकी को भस्म करने वाले इस भयंकर महाविष से आप हमारी रक्षा कीजिए।[4]

इस प्रकार श्रीमद्भागवत की बहुत स्तुतियां आर्तभाव प्रधान है। इन स्तुतियों में हृण्मर्म की वेदना शब्दों के रूप में प्रस्फुटित हो जाती है। प्राण रक्षा की आतुरता में भक्त प्रभुपादपङ्कजों में अपने को सर्वात्मना समर्पित कर निर्भय हो जाता है। शेष कार्य-विपत्तियों से उसकी रक्षा का भार उस सर्जनहार का कर्त्तव्य बन जाता है।

२. दैन्यभाव

भक्ति के क्षेत्र में दीनभाव का प्रदर्शन भी आवश्यक है। भक्त लौकिक साधनविहीन होकर भगवान् के समक्ष आत्मनिवेदन करते हुए

---

१. श्रीमद्भागवत १.८.९
२. तत्रैव ३.३१.१२
३. तत्रैव ८.३.८
४. तत्रैव ८.७.२१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दीनता के भाव का प्रदर्शन करता है। यह दीनता सांसारिक दीनता से उच्चकोटि की होती है। वह भगवान् के दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिए अनुनय-विनय करता है। भक्त के समक्ष संसार के सम्पूर्ण देवी-देवता स्वार्थ युक्त एवं साधनहीन दिखलाई पड़ते हैं, एकमात्र उसका उपास्य ही ऐसा है जो सर्वगुणसम्पन्न एवं सर्वसमर्थ है। इसलिए उसके सामने दैन्य भाव से अपना सब कुछ प्रकट करता हुआ उसी की शाश्वत शीतल चरण छाया को प्राप्त कर लेता है।

भक्तिमति गोपियों में यद्यपि शरणागति के भाव की ही प्रधानता है, लेकिन प्रपत्ति के पहले दैन्य भाव का उद्भावन हो ही जाता है। गोपियां दीनभाव से प्रभु श्रीकृष्ण से अनुरोध करती है, अनुनय-विनय करती है कि— हम कहां जाएं हे प्रभो हमें स्वीकार कर लो

कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्
नित्यप्रियपतिसुतादिभिरार्तिदैः किम्।
तन्नः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिन्द्या
आशां भृतां त्वयि चिरादरविन्दनेत्र॥[1]

हे नाथ! स्वामिन्! आत्मज्ञान में निपुण महापुरुष तुमसे ही प्रेम करते हैं, क्योंकि तुम नित्य प्रिय और अपने ही आत्मा हो। अनित्य एवं दुःखद पति-पुत्रादि से क्या प्रयोजन है। परमेश्वर! इसलिए हम पर प्रसन्न होवो। कृपा करो। कमलनयन! चिरकाल से तुम्हारे प्रति पाली-पोसी आशा-अभिलाषा की लहलहाती लता का छेदन मत करो।

कितना दीन-भाव है गोपियों में "हे नाथ! आशा-लतिका का छेदन मत करो" इसी वाक्य में भक्ति का सम्पूर्ण बीज दृष्टिगोचर होता है।

अपने आततायी स्वामी का विनाश अपने समक्ष देखकर दैन्य भाव से नागपत्नियां अपने पति के जीवन की याचना करती है -शान्तात्मन्! स्वामी को एक बार प्रजा का अपराध सह लेना चाहिए। यह मूढ है, आपको पहचानता नहीं इसलिए इसको आप क्षमा कर दीजिए। भगवान् कृपा कीजिए, अब यह सर्प मरने ही वाला है। साधुपुरुष सदा से हम अबलाओं पर दया करते आये हैं। अतः हमारे प्राणस्वरूप हमारे पतिदेव को दे दीजिए।[2]

जरासंध कारागार में निबद्ध दस सहस्र नृपतियों ने दीनतापूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण से अपनी रक्षा की याचना की—

---

१. श्रीमद्भागवत १०.२९.३३
२. तत्रैव १०.१६.५१-५२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन् प्रपन्नभयभञ्जन ।
वयं त्वां शरणं यामो भवभीताः पृथग्धियः ॥[1]

वाङ्मनसगोचर सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण ! आप शरणागतों के भयभंजक हैं । भेदबुद्धि से युक्त जन्ममृत्युरूप संसारचक्र से भयभीत होकर हम आपकी शरण में आये हैं ।

३. वात्सल्य भाव

श्रीमद्भागवत की कतिपय स्तुतियों में वात्सल्यभाव की प्रधानता है । अपने उपास्य या भगवान् को पुत्र के रूप स्वीकृत कर कतिपय भक्त भक्ति करते हैं । "कर्दम-देवहूति" कश्यप-अदिति, नन्द-यशोदा और वसुदेव-देवकी आदि वात्सल्य भक्तों में अग्रणी हैं । ये लोग प्रभु को पुत्र के रूप में स्वीकार कर उनकी विभिन्न प्रकार से सेवा, सुश्रूषा आदि कर अपने को धन्य कर लेते हैं ।

भगवान् स्वयं ऐसे भाग्यशाली लोगों के यहां प्रादुर्भूत होकर जगत् का कल्याण करते हैं । संसारार्णव से जीवों के कल्याण के लिए भगवान् कपिल माता देवहूति के गर्भ से प्रकट होते हैं । साक्षात्परमब्रह्मपरमेश्वर को अपने पुत्र के रूप में अवतरित देखकर प्रजापति कर्दम इस प्रकार स्तुति करने लगते हैं

अहो पापच्यमानानां निरये स्वैरमङ्गलैः ।
कालेन भूयसा नूनं प्रसीदन्तीह देवताः ॥
बहुजन्मविपक्वेन सम्यग्योग समाधिना ।
द्रष्टुं यतन्ते यतयः शून्यागारेषु यत्पदम् ॥[2]

अहो ! अपने पापकर्मों के कारण इस दुःखमय संसार में नाना प्रकार से पीड़ित होते हुए पुरुषों पर देवगण तो बहुत-काल बीतने पर प्रसन्न होते हैं । किन्तु जिनके स्वरूप को योगिजन अनेकों जन्मों के साधन से सिद्ध हुई सुदृढ़ समाधि के द्वारा एकान्त में देखने का प्रयत्न करते हैं, अपने भक्तों की रक्षा करने वाले वे ही श्रीहरि हम विषय लोलुपों के द्वारा होने वाली अवज्ञा का कुछ भी विचार न कर आज हमारे घर अवतीर्ण हुए हैं । "यहां वात्सल्यभाव से भक्ति प्रारम्भ होती है । इसमें केवल कोरा सांसारिक सम्बन्ध ही नहीं स्थापित किया गया बल्कि प्रभु के माहात्म्य ज्ञान भी भक्त कर्दम द्वारा पोषित किया गया है । लौकिकजनों और भगवान् के सम्बन्ध में यही अन्तर होता है । भले ही भक्त भगवान् को "घुटरनु चलत रेणु तनु

१. श्रीमद्भागवत १०.७०.२५
२. तत्रैव ३.२४.२७-२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मण्डित" के रूप ग्रहण करे या "मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल" के रूप में, पर प्रभु के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान अवश्य होता है।

इसी प्रकार देवकी-वसुदेव भी भक्ति करते हैं। जब भगवान् श्रीकृष्ण उनके यहां अवतरित होकर अपने विश्वरूप का दर्शन कराते हैं तो देवकी डर जाती है और उन्हें अपने शिशु के रूप में ही दर्शन करना चाहती है। माता यशोदा की तो वात्सल्य भक्ति सम्पूर्ण भक्तिसंसार में अनूठी है। वह एक क्षण भी अपने माखनचोर का वियोग सहन नहीं कर सकती है। माता देवकी को यह सह्य नहीं कि उसका शिशु चतुर्भुज रूप में रहे—

उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम्।
शंखचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम्॥[1]

एक दिन माता यशोदा अपने लाला को स्तन-पान करा रही थी। अचानक जम्हाई लेते समय अपने लाला के मुख में सम्पूर्ण विश्व को देखकर आश्चर्यित हो जाती है।

खं रोदसी ज्योतिरनीकमाशाः सूर्येन्दुवह्निश्वसनाम्बुधींश्च।
द्वीपान् नगांस्तद्दुहितृर्वनानि भूतानि यानि स्थिरजङ्गमानि॥[2]

४. दास्यभाव

दास्य भाव में स्वामी-सेवक भाव से भक्ति की जाती है। अखिलानंद परमब्रह्मपरमेश्वर को सेव्य मानकर स्वयं भक्त उन्हीं की चरण सेवा में अपने आपको नियोजित कर अपना जीवन सफल कर लेता है। वृत्रासुर, हनुमान, अक्रूर और विदुर आदि की स्तुतियों में दास्यभाव की प्रधानता है। भक्तराज वृत्रासुर उपास्य के चरणों में जन्म-जन्मान्तर के लिए अपने आपको समर्पित कर देता है। वह सिर्फ भगवद्दासों का दास बनना चाहता है—प्रभो! आप मुझ पर ऐसी कृपा कीजिए कि अनन्य भाव से आपके चरण कमलों के आश्रित सेवकों की सेवा करने का अवसर मुझे अगले जन्म में भी प्राप्त हो। मेरा मन आपके गुणों का स्मरण करता रहे मेरी वाणी उन्हीं का गुणगान करे तथा शरीर आपकी सेवा में लगी रहे।[3] यहां दास्य भाव के अतिरिक्त अनन्य शरणागति या प्रपत्ति भाव की प्रधानता है। किम्पुरुष वर्ष में महाभागवत श्रीहनुमानजी भगवानादि पुरुष लक्ष्मणाग्रज सीताभिराम श्रीराम की स्तुति दास्य भाव से करते हैं। रामभक्तों में हनुमानजी का स्थान अग्रणी है। वे ज्ञानियों एवं योगियों में श्रेष्ठ और

१. श्रीमद्भागवत १०.३.३०
२. तत्रैव १०.७.३६
३. तत्रैव ६.११.२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बलवानों में बलीष्ठ हैं। हनुमानजी जन्म-जन्मान्तर के लिए प्रभु चरण-सेवा का ही वरदान मांगते हैं। राजा पृथु को एक क्षण भी भगवान् की चरण सेवा छोड़कर किसी भी कार्य में मन नहीं रमता है।[1]

भक्तिमति गोपियां मोरमकराकृत कुण्डल से सुशोभित पुरुषभूषण से उनके चरणों में दासी बनने की याचना करती हैं—

तन्न प्रसीद वृजिनार्दन तेऽङ्घ्रिमूलं
प्राप्ताविसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः ।
त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकाम
तप्तात्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यम् ॥[2]

हे नाथ हम तुम्हारे शरणागत हैं। हम पर कृपाकर अपने प्रसाद का भाजन बनाओ हमें दासी रूप में स्वीकार कर अपने सेवा का अवसर दो।

५. प्रपत्तिभाव

प्रपत्ति का अर्थ है शरणागति। संसार के सभी वस्तुओं को हीन समझकर एकमात्र अनन्य भाव से प्रभु की प्रार्थना करना ही प्रपत्ति है। त्रिविधानल से दग्ध प्राणी जब अपने आपको असहाय, असमर्थ समझने लगता है, तब अपनी स्थिरा एवं दृढ़ात्मिका बुद्धि के द्वारा अनन्यभाव से भगवान् के शरण में उपस्थित होता है। इस अवस्था में अनन्य साध्य भगवत्प्राप्ति में महाविश्वासपूर्वक भगवान् को ही एक मात्र उपाय समझकर प्रार्थना करते रहना ही प्रपत्ति है—

अनन्य साध्यं स्वामीष्टे महाविश्वासपूर्वकम् ।
तदेकोपायतायां च प्रपत्तिः शरणागतिः ॥[3]

इसमें उपायान्तरों का अभाव रहता है, भगवान् को ही सर्वोत्तम उपाय और उपेय समझकर भक्त सारी चिन्ता से रहित होकर उसी की शरण में चला जाता है। उस अवस्था में भक्त अपना सब कुछ उसी के प्रति समर्पित कर चिन्तामुक्त होकर केवल उन्हीं का हो जाता है। भक्तिमति गोपियां सांसारिक सम्बन्धों को छोड़कर प्रभु श्रीकृष्ण की शरणागति ग्रहण करती हैं—

मैवं विभोऽर्हति भवान गदितुं नृशंसं
संत्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ॥[4]

---

१. श्रीमद्भागवत ४.२०.२४
२. तत्रैव १०.२९.३८
३. पंचरात्र विष्वकसेन संहिता —साधनांक, कल्याण, पृ० ६०
४. श्रीमद्भागवत १०.२९.३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्यारे श्रीकृष्ण ! तुम घट-घटवासी हो। सबके हृदय को जानते हो। तुम्हें इस प्रकार निष्ठुरता भरे वचन नहीं करना चाहिए। हम तुम्हारे शरण में आये हैं हमें स्वीकार कर लो।

जब भगवान् देवकी के गर्भ में आते हैं तो राक्षसों से संत्रस्त देव, ऋषि आदि भक्तगण भगवान् के शरणागत होते हैं—

सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥[1]

अंतकाल में वृत्रासुर धनुष-वाण फेंककर सम्पूर्ण सांसारिक इच्छाओं का परित्याग कर अनन्य भाव से भगवान् के दयामय स्नेहासिक्त चरणों की छाया ग्रहण करता है। भगवान् की शरणागति छोड़कर उसे किसी प्रकार की वैभव-विलास, राज्यसमृद्धि की आवश्यकता नहीं। वंशस्थ छन्द के द्वारा वह भक्त अपने हृदय में निहित भावों को अभिव्यक्त कर देता है—

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे ॥[2]

प्रपत्ति में समर्पण की प्रधानता होती है। भक्त अपने प्रियतम के लिए ही जीवन धारण करता है। उसका जो कुछ भी है वह सब उसके हृदयपति के लिए है। सम्पूर्ण हृदयस्थ भावनाओं के सहित शरीर एवं इन्द्रियों को भगवत्सेवा के लिए समर्पित कर देना चाहता है—

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां
हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः।
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे
दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥[3]

दिव्य रूप प्राप्त नलकुबर मणिग्रीव स्तुति करते हैं—प्रभो ! हमारी वाणी आपके मंगलमय गुणों का वर्णन करती रहे, हमारे कान आपकी रसमयी कथा में लगे रहें, हमारे हाथ आपकी सेवा में तथा मन आपके चरणकमलों की स्मृति में रम जाएं। यह सम्पूर्ण जगत् आपका निवास स्थान है इसलिए हमारा मस्तक सबके सामने झुका रहे। संत आपके साक्षात् शरीर हैं, मेरी दृष्टि सदा उनकी दर्शन करते रहे।

इस प्रकार स्तुतियों में शरणागति या प्रपत्ति भाव की प्रधानता है।

६. जिज्ञासा भाव

श्रीमद्भागवत की कतिपय स्तुतियों में जिज्ञासा भाव की भी प्राप्ति

१. श्रीमद्भागवत १०.२.२६
२. तत्रैव ६.११.२५
३. तत्रैव १०.१०.३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होती है। जानने की इच्छा या ज्ञानेप्सा को जिज्ञासा कहते हैं। सृष्टि, जीव तथा ब्रह्म इन तीनों से सम्बद्ध जिज्ञासा या किसी अन्य प्रकार की जिज्ञासा यत्किंचित् स्तुतियों में प्राप्त होती है। देवहूति कृत कपिल स्तुति (३.२५) रहुगणकृत भगवत् स्तुति (५.१२) एवं याज्ञवल्क्य कृत सूर्य स्तुति में विभिन्न प्रकार की ज्ञानेप्सा उद्धृत की गई है। संसार के घनाच्छन्न विषय लालसा रूपी भयंकर कालरात्री में भ्रमित देवहूति अपने अज्ञानापास्तक पुत्र स्वरूप भगवान् कपिल से प्रार्थना करती है—

तं त्वा गताहं शरणं शरण्यं स्वभृत्यसंसारतरोः कुठारम्।
जिज्ञासयाहं प्रकृतेः पूरुषस्य नमामि सद्धर्मविदां वरिष्ठम्॥[1]

आप अपने भक्तों के संसार रूपी वृक्ष के लिए कुठार के समान हैं। मैं प्रकृति और पुरुष का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से आप शरणागत वत्सल की शरण में आयी हूं। आप भागवत धर्म जानने वालों में सबसे श्रेष्ठ हैं। मैं आपको प्रणाम करती हूं।

राजा रहुगण मुक्ति के लिए भगवान् जडभरत से जिज्ञासा करते हैं। रहुगण स्तुति करते हुए कहते हैं—

तस्माद्भवन्तं मम संशयार्थं प्रक्ष्यामि पश्चादधुना सुबोधम्।
आध्यात्मयोगग्रथितं तवोक्तमाख्याहि कौतूहलचेतसो मे॥[2]

प्रभो! हम आपसे अपने संशयों की निवृत्ति तो पीछे कराऊंगा, पहले तो इस समय आपने जो अध्यात्मयोग का उपदेश दिया है उसी को सरल कर समझाइये, उसे समझने की मुझे बड़ी उत्कण्ठा है।

७. प्रेमभाव

प्रियतम के लिए जीवन धारण करना, उसी की खुशी में खुशी होना, उसी के दुःख में दुःख होना प्रेम का लक्षण है। परमभागवत नारदजी के शब्दों में—'अतस्मिंस्तत्सुखसुखित्वम्' अर्थात् प्रियतम के सुख से सुखी होना तथा उसी के दुःख में दुःखी होना। सारे कर्मों को उसी में अर्पित कर देना तथा उसके तनिक भी विस्मरण सह्य नहीं होना प्रेम लक्षण है—नारदस्तु तदर्पिताखिलाचारितातद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति।[3] व्रज की गोपियों की स्तुति में इसी भाव की प्रधानता है।

प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगंश्रीनिकेतम्।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धिहृच्छयम्॥[4]

---

१. श्रीमद्भागवत ३.२५.१.
२. तत्रैव ५.१२.३
३. नारद भक्ति सूत्र १९
४. श्रीमद्भागवत १०.३१.७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हे प्रभो ! आप शरणागतों के पापकर्शक हैं, सौन्दर्य के आगार तुम्हारे चरणकमल लक्ष्मीजी द्वारा सेवित हैं। उन्हीं चरणकमलों को नागफणों पर तुमने रखा, अब उन्हें ही हमारे वक्षःस्थल पर रखकर मेरे हृदय की ज्वाला शान्त कर दो।

श्रीकृष्ण की भावना में डूबी हुई गोपियां यमुनाजी के पावन पुलिन पर रमणरेति में मिलकर गाने लगती हैं।[1]

यह गोपीगीत प्रेमरस से सराबोर है। सर्वत्र प्रेम की पवित्र प्रश्रविणी अनवरत प्रवाहित है। एक प्रेमरस भरा फल का आस्वादन करें—

रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम्।
बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः॥[2]

प्यारे ! एकान्त में तुम मिलकर प्रेम भाव को जगाने वाली बातें करते थे, ठिठोली करके हमें छेड़ते थे, तुम प्रेम भरी चितवन से हमारी ओर देखकर मुस्करा देते थे और हम देखती थी तुम्हारे उस वक्षस्थल को जिस पर लक्ष्मीजी नित्य निवास करती हैं। तब से अब तक निरन्तर हमारी लालसा बढ़ती ही जा रही है और हमारा मन अधिकाधिक मुग्ध होता जा रहा है।

८. उपालम्भ भाव

श्रीमद्भागवतीय स्तुतियों में उपालम्भ भाव की भी विद्यमानता है। उपालम्भ का अर्थ "उलाहना" है। भक्त भक्तिभावित चित से, प्रभु के गुणों के प्रति मुग्ध होकर उन्हें विभिन्न प्रकार से उपालम्भ देता है। जब भक्त विनयपूर्वक निवेदन करते-करते क्लान्त हो जाता है और अपने प्रभु को अपनी ओर आकृष्ट कर पाने में अपने आपको असमर्थ पाता है तो उन्हें उपालम्भ देकर उनके चित्त को द्रवीभूत करना चाहता है। वह प्रेम और स्नेह के वशीभूत हो आराध्य को व्यंग्यात्मक उपालम्भ देता है। जिस प्रकार चुम्बक लोहे को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है उसी प्रकार भक्त भी अपने विभिन्न-प्रकार के हाव-भाव से भगवान् को अपने ओर आकृष्ट करना चाहता है।

जब भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्ध्यान हो जाते हैं तब विरहव्यथिता गोपियां विभिन्न प्रकार से उपालम्भ देकर विलाप करने लगती हैं। पहले तो वे मधुर-मधुर विनय से पूर्ण उद्गारों के द्वारा भगवान् को पाना चाहती है लेकिन अपने कार्य की असफलता देखकर कपटी आदि विभिन्न प्रकार के

१. श्रीमद्भागवत १०.३१.१-१७
२. तत्रैव १०.३१.१७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दों द्वारा प्रियतम को उलाहना देने लगती हैं---

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवानतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागतः ।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि ।।[1]

अरे धूर्त ! कपटी ! अपने पति भाई आदि की आज्ञा का उल्लंघन कर तेरे पास हमलोग आई हैं। हम तुम्हारी एक-एक चाल जानती हैं, संकेत समझती हैं। तुम्हारे मधुर गान से मोहित होकर ही हम तेरे पास आई हैं। इस प्रकार रात्रि के समय आयी हुई युवतियों को तेरे सिवाय और कौन छोड़ सकता है।

रस विश्लेषण

वासना रूप में विद्यमान रति आदि स्थायी भाव विभावादि के द्वारा उद्बुद्ध एवं उदीप्त होकर, अनुभावादि की सहायता से कार्य रूप में परिणत तथा संचारिकों के द्वारा रस के रूप में अभिव्यक्त हो जाता है उसे ही रस कहते हैं। यह पानक रस की तरह सुस्वादु, ब्रह्मस्वादसहोदर, अलौकिक और चमत्कारकारक होता है।

भरतमुनि रस सम्प्रदाय के आद्याचार्य माने जाते हैं। उनके अनुसार विभाव, अनुभाव और व्यभिचारिभाव के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।[2] काव्यप्रकाश के अनुसार आलम्बनविभाव से उद्बुद्ध उद्दीपन से उद्दीप्त व्यभिचारिभावों से परिपुष्ट तथा अनुभावों द्वारा व्यक्त हृदयस्थ स्थायीभाव ही रस को प्राप्त होता है।[3] काव्य के पुनः-पुनः अनुसन्धान से तथा विभावादि के संयोग से उत्पन्न आनन्दात्मक चित्तवृत्ति ही रस संज्ञाभिधेय है। चमत्कार ही रस का प्राण है और चमत्कार चित्त का विस्तार, विस्फार या अलौकिक आनन्द की उपलब्धि रूप है तथा विस्मय का अपर पर्याय है।[4] आचार्य भरत ने रस की तुलना पानक रस से की है। जिस प्रकार मिश्री, मिर्च, इलाईची आदि के आनुपातिक मिश्रण से निष्पन्न पानक रस के पान से एक विलक्षण प्रकार की स्वादानुभूति होती है, जो न तो केवल मिश्री का स्वाद रहता है न तो केवल इलाईची, अपितु सबका मिलाजुला तथा सबसे विलक्षण स्वाद से युक्त होता है। उसी प्रकार काव्यरस विभावादि के द्वारा निष्पन्न एक प्रकार की अलौकिक विलक्षण एवं अनिर्वचनीय अनुभूति है जो

१. श्रीमद्भागवत १०.३१.१६
२. विभावानुभावव्यभिचारि संयोगाद्रसनिष्पत्तिः---नाट्यशास्त्र ६.३१ के बाद में
३. काव्यप्रकाश, ४.२८ के बाद
४. चमत्कारश्चित्तविस्ताररूप विस्मयापरपर्यायः—सा० द० ३.३ के अनन्तर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोक व्यवहार से भिन्न है और केवल आनन्द रूप है।[1]

साहित्यदर्पण में सत्त्वोद्रेक को रस के हेतु के रूप निरूपित किया गया है और रस को अखण्ड, स्वप्रकाशानन्द, चिन्मय, वेद्यान्तरस्पर्शशून्य, ब्रह्मानन्द सहोदर तथा लोकोत्तर चमत्कारप्राण कहा गया है। लोक में जिस प्रकार की सुख-दुःखात्मक अनुभूति होती है वैसी अनुभूति काव्य नाटकों में नहीं होती, वहां प्रत्येक दशा में विलक्षण आनन्द की ही चर्वणा होती है। इसलिए रस को अलौकिक कहा गया है। यह लोक की स्वार्थ सीमा से ऊपर उठकर स्वप्रकाशानन्द, वेद्यान्तरस्पर्शशून्य एवं चिन्मय रूप होता है। आनन्दात्मक एवं विलक्षण होने से रस को "लोकोत्तरचमत्कार-प्राण" संज्ञा से अभिहित किया गया है।[2] रस से उत्पन्न आनन्द बाह्य इन्द्रियगत अनुकूल वेदना जन्य आनन्द से सर्वथा भिन्न होता है।

रस को काव्य की आत्मा के रूप में स्वीकृत किया गया है। कोई भी कृति रस के बिना काव्यत्व को नहीं प्राप्त कर सकती। रसबोध में वासना का रहना आवश्यक है। बिना वासना के अन्य कारणों के रहते हुए भी रसबोध नहीं हो सकता है।

पूर्व में निरूपित किया गया है कि विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी या सहकारी भावों के सहयोग से व्यक्त रत्यादि रूप स्थायी भाव ही रस है। प्रसंगानुसार स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव यहां विवेच्य हैं—

रस-प्रक्रिया में विभाव को दो रूप-आलम्बन तथा उद्दीपन में विभाजित किया गया है। ये बाह्य कारण समझे जाते हैं। रसानुभूति का आभ्यन्तर और मुख्य कारण स्थायी भाव है। यह वासना स्वरूप सदा प्रत्येक मनुष्य के हृदय में पूर्व से विद्यमान रहता है और समय पाकर या अनुकूल अवस्था से संयुक्त होकर अभिव्यक्त हो जाता है। यह अभिव्यक्ति ही आस्वाद्य होने के कारण रस शब्द से अभिहित की जाती है। आचार्य मम्मट के शब्दों में "व्यक्तः स तैः विभावाद्यैः स्थायीभावो रससंज्ञितः।"[3]

स्थायी भाव समस्त मानव जाति में स्वाभाविक वासना रूप में विद्यमान रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के मन में जन्म से ही ये भाव रहते हैं। वासना रूप में विद्यमान किसी निमित्त को पाकर उद्बुद्ध हो जाते हैं और

---

१. काव्यप्रकाश ४ अभिनवगुप्त का रस सिद्धान्त

२. साहित्य दर्पण ३.२

३. मम्मट, काव्यप्रकाश ४ ४३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपना कार्य करके विलीन हो जाते हैं, किन्तु कभी नष्ट नहीं होते।[1] जो अपने प्रतिकूल भावों तथा अनुकूल भावों से विच्छिन्न न होकर सभी प्रतिकूल भावों को आत्मरूप बना लेता हो वह स्थायी भाव है। समुद्र जैसे सभी को अपने रूप का बना लेता है स्थायी भाव भी वैसे ही अन्य भावों को अपने अनुरूप बना लेता है।[2] रूप गोस्वामी ने स्थायीभावों को "उत्तमराजा" संज्ञा से अभिहित किया है। जो भाव अनुकूल एवं प्रतिकूल समस्त भावों को अपने वश में कर उत्तमराजा के समान सुशोभित होता है वह स्थायी भाव है।[3]

मनोविज्ञान और स्थायीभाव

संस्कृत साहित्य शास्त्र में निरूपित स्थायी भाव मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर पूर्णतः अवस्थित है। हमारा ऋषि जितना मनस्तत्त्व का सुन्दर एवं सूक्ष्म विश्लेषण करता है उतना शायद ही किसी अन्य साहित्य में हो पाया हो। आधुनिक मनोविज्ञान, जिनको मूल प्रवृत्तियों से सम्बद्ध "मनः-संवेग" की संज्ञा से अभिहित करता है, उन्हीं को साहित्य शास्त्र में स्थायी भाव नाम से कहा गया है। नवीन मनोविज्ञान के "मनःसंवेग" और प्राचीन साहित्य शास्त्र के "स्थायी भाव" एक ही शब्द के पर्याय हैं। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मैगडूगल ने चौदह प्रकार की मूल प्रवृत्तियां और उनसे सम्बद्ध चौदह मनःसंवेग माने हैं। मूल प्रवृत्ति की परिभाषा करते हुए उन्होंने लिखा है—

मूल प्रवृत्ति वह प्रकृति-प्रदत्त शक्ति है जिसके कारण प्राणी किसी विशेष पदार्थ की ओर ध्यान देता है और उसकी उपस्थिति में विशेष प्रकार के संवेग या मनःक्षोभ का अनुभव करता है।

मैगडूगल ने पहले चौदह प्रकार की मूल प्रवृत्तियों का निर्देश कर तत्सम्बन्धित मनःसंवेगों को गिनाया है। लेकिन सूक्ष्मतया विचार करने पर प्रतीत होता है कि मूल प्रवृत्तियों के प्रेरक या कारण तत्त्व "मनःसंवेग" ही हैं अतएव प्रथम व्याख्यान "मनःसंवेग" का ही होना चाहिए। "मनः-संवेग" ही मूल प्रवृत्तियों को उत्प्रेरित करते हैं। क्रम से मनःसंवेग, मूल प्रवृत्तियां तत्सम्बन्धित स्थायी भाव एवं रस की तालिका इस प्रकार है—

---

१. अभिनव गुप्त—अभिनव भारती

२. सा० द० ३.१७४, दशरूपक ४.३४

३. रूपगोस्वामी, भक्ति रसामृत सिन्धु—दक्षिण विभाग, पचमी लहरी-१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनःसंवेग	मूलप्रवृत्तियां	स्थायी भाव	रस
(१) भय	पलायन, आत्मरक्षा	भय	भयानक रस
(२) क्रोध	युयुत्सा	क्रोध	रौद्ररस
(३) घृणा	निवृत्ति, वैराग्य	जुगुप्सा	बीभत्स रस
(४) करुणा	शरणागति	शोक	करुणरस
(५) काम	कामप्रवृत्ति	रति	शृंगाररस
(६) आश्चर्य	कौतूहल, जिज्ञासा	विस्मय	अद्भुत रस
(७) हास	आमोद	हास	हास्यरस
(८) दैन्य	आत्महीनता	निर्वेद	शान्तरस
(९) आत्मगौरव, उत्साह	आत्माभिमान	उत्साह	वीररस
(१०) वात्सल्य, स्नेह	पुत्रैषणा	वात्सल्य, स्नेह	वात्सल्यरस

स्थायी भावों की संख्या

नाट्यशास्त्र, काव्यप्रकाश आदि ग्रन्थों में स्थायी भावों की संख्या आठ मानी गई है। रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा या घृणा और विस्मय। प्रकारान्तर से शम को भी स्थायी भाव के रूप में स्वीकृत किया गया है।[1] दशरूपकार ने भी इसी मान्यता को उपस्थापित किया।[2] साहित्य-दर्पण में भी इन्हीं नौ स्थायी भावों को स्वीकारा गया है।[3]

भक्त प्रवर श्रीलरूपगोस्वामी ने अपने "भक्तिरसामृतसिन्धु" नामक ग्रन्थ के दक्षिण विभाग के पंचम लहरी में स्थायी भावों का विस्तृत विवेचन किया है। उन्होंने श्रीकृष्ण विषयक "रति" को ही स्थायी भाव मानकर मुख्या तथा गौणी भेद से दो रूपों में विभाजित किया है।[4] मुख्या रति के छः भेद — शान्ति, शुद्धा, प्रीति, सख्य, वात्सल्य तथा प्रियता एवं गौणी के सात भेद — हास, विस्मय, उत्साह, शोक, क्रोध, भय तथा जुगुप्सा, कुल मिलाकर १३ स्थायी भाव स्वीकृत किये गये हैं।

विभाव

रसानुभूति के कारणों को विभाव कहते हैं। लोक में जो अनादि-

१. काव्यप्रकाश ४.४७
२. दशरूपक ४.३५
३. साहित्य दर्पण ३.१७५
४. भक्तिरसामृत सिन्धु—दक्षिण विभाग—पंचम लहरी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालीन वासना से अन्तर्लीन रति हास आदि स्थायी भावों के उद्बोधक हैं, वे ही काव्य एवं नाटकों के अन्तर्गत विभाव कहलाते हैं।[1] लोक में विभाव को कारण कहा जाता है। विभाव के सर्वसम्मत दो भेद स्वीकृत किए गये हैं—आलम्बन और उद्दीपन। जिसके आलम्बन करके रस की उत्पत्ति होती है उसे आलम्बन-विभाव कहते हैं, तथा जिसके द्वारा रस उद्दीप्त होता है उसे उद्दीपन विभाव कहते हैं। यथा सीता को देखकर राम के मन में और राम को देखकर सीता के मन में रति की उत्पत्ति होती है और दोनों को देखकर सामाजिक के भीतर रस की अभिव्यक्ति होती है इसलिए सीता-राम शृंगार रस के आलम्बन विभाव कहलाते हैं। चांदनी, उद्यान, एकान्त स्थान आदि के द्वारा उस रति का उद्दीपन होता है। इसलिए उनको शृंगार रस का उद्दीपन विभाव कहा जाता है। प्रत्येक रस के आलम्बन एवं उद्दीपन विभाव अलग-अलग होते हैं। उन सबों की चर्चा आगे की जायेगी।

अनुभाव

अनुभाव आन्तर रसानुभूति की बाह्य अभिव्यंजना के साधन हैं जिसमें शारीरिक व्यापार की प्रधानता रहती है। नट कृत्रिम रूप से अनुभावों का अभिनय करता है परन्तु अनुकार्य राम आदि की अंतस्थ अनुभूति की बाह्य अभिव्यक्ति इन साधनों द्वारा होती है। अनु पश्चाद्-भवन्तीति अनुभावाः अर्थात् वे विभाव के बाद में—कार्य होते हैं इसलिए उन्हें अनुभाव कहते हैं। अपने-अपने आलम्बन या उद्दीपन कारणों से सीता राम आदि के भीतर उद्बुद्ध रति आदि स्थायी भाव को बाह्य रूप में जो प्रकाशित करता है, वह रत्यादि का कार्य काव्य और नाट्य में अनुभाव कहलाता है।[2] धनंजय के अनुसार भाव को सूचित करने वाले विकास को अनुभाव कहते हैं।[3] यहीं पर अनुभाव को काव्य और नाट्य में कारण के रूप में चित्रित किया है, कार्य के रूप में नहीं,[4] परन्तु मम्मट, विश्वनाथ, पण्डितराजजगन्नाथ आदि आचार्य अनुभाव को कार्य के रूप में ही निरूपित करते हैं। श्रीलरूपगोस्वामी के अनुसार अनुभाव चित्त में स्थित मुख्य भावों के बोधक होते हैं। वे प्रायः बाह्य विक्रिया रूप होते हैं और "उद्भासुर" नाम से कहे गये हैं।[5]

१. साहित्यदर्पण ३.२९
२. साहित्यदर्पण ३.१३२
३. दशरूपक ४.४
४. तत्रैव ४.४ पर वृत्ति
५. भक्ति रसामृत सिन्धु, दक्षिण विभाग, २.१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुभाव के तीन भेद स्वीकृत हैं—सात्त्विक अनुभाव, मानसिक अनुभाव और कायिक अनुभाव। सत्त्व मन की एक अवस्था है जो एकाग्रता से उत्पन्न होता है। इस अवस्था में मन दूसरे के सुख और दुःख में तद्रूप हो जाता है। सात्त्विक अनुभाव—स्तम्भ, प्रलय, रोमांच, स्वेद, वैवर्ण्य, वेपथु, अश्रु और वैस्वर्य।[1] प्रत्येक रस के अलग-अलग अनुभाव होते हैं, जिसका विवेचन आगे किया जाएगा।

व्यभिचारी भाव

व्यभिचारी एवं संचारी शब्द समानार्थक हैं। वि एवं अभि उपसर्ग पूर्वक गत्यर्थक चर् धातु से कर्त्ता में "णिनि" प्रत्यय करने पर "व्यभिचारी" शब्द की निष्पत्ति होती है। सागर में लहरों के तुल्य स्थायी भाव में उत्पन्न तथा विलीन होकर जो निर्वेद आदि भाव रति आदि स्थायी भाव को विविध प्रकार से पुष्ट करते हैं उसे रसरूपता की ओर ले जाते हैं वे व्यभिचारी-भाव कहलाते हैं।[2] विशेषेण आभिमुख्येन च स्थायिनं प्रति चरन्ति" अर्थात् जो विशेष रूप से स्थायी भाव के अनुकूलता से चरण करते हैं वे व्यभिचारि भाव हैं।[3] ये स्थायी भाव के गति का संचालन करते हैं इसलिए ये संचारि-भाव कहे जाते हैं।[4]

इस प्रकार संचारीभाव या व्यभिचारीभाव क्षणिक होते हुए भी रसदशा तक पहुंचाने में स्थायी भावों के विशेष रूप से उपकारक होते हैं। इनकी निम्नतम संख्या ३३ बतायी गयी है, जो इस प्रकार है—निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दैन्य, चिन्ता, मोह, स्मृति, धृति, व्रीडा, चपलता, हर्ष, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार, सुप्त, प्रबोध, क्रोध, अवहित्था, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रास और वितर्क।[5]

उपरोक्त ३३ संख्याओं के अतिरिक्त नाट्यदर्पणकार ने तृष्णा, मुदिता, मैत्री, श्रद्धा, दया, उपेक्षा आदि को भी व्यभिचारी भावों की पंक्ति में समाहित किया है।

रसों की संख्या

नाट्य शास्त्र ६.१५-१७, काव्यप्रकाश ४.२९ और भाव प्रकाश

१. दशरूपक ४.५
२. दशरूपक ४.७
३. भक्तिरसामृतसिन्धु—दक्षिण विभाग ४.१
४. तत्रैव ४.२
५. काव्य प्रकाश ४.३१-३४, दशरूपक ४.८, साहित्यदर्पण ३.१४१ नाट्य-शास्त्र ७.९३, नाट्यदर्पण ३.१८२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि ग्रन्थों में आठ रसों को स्वीकार कर शान्त रस की भी मान्यता प्रदान की गई है। नाट्यदर्पण ३.१८१, साहित्यदर्पण ३.१८२ आदि ग्रन्थों में नवरसों की स्वीकृति प्रदान की गई है। भक्तिरसामृतसिन्धु में श्रीलरूप-गोस्वामी ने भक्तिरस को ही प्रमुखता प्रदान कर उसको मुख्य और अमुख्य रूप में विभाजित कर मुख्य भक्ति रस के पांच भेद—

(१) शान्तभक्तिरस (२) प्रीतिभक्तिरस
(३) प्रेयोभक्तिरस (४) वत्सलभक्तिरस
(५) मधुरभक्तिरस तथा

अमुख्य भक्तिरस के सात भेद—

(१) हास्यभक्तिरस (२) अद्भुतभक्तिरस
(३) वीरभक्तिरस (४) करुणभक्तिरस
(५) रौद्रभक्तिरस (६) भयानकभक्तिरस
(७) बीभत्सभक्तिरस

स्वीकृत कर कुल बारह रसों का विवेचन किया है।[1] प्रस्तुत संदर्भ में इसी को आधार मानकर प्रमुख रसों का विवेचन किया जाएगा।

श्रीमद्भागवत भक्ति का उत्स है। उसके प्रत्येक अंश में भक्तिरस की निर्मल धारा प्रवाहित है। महामनीषी श्रीलव्यासदेव सम्पूर्ण वाङ्मय का निरूपण करके भी भगवान् के यशगायन के बिना अपूर्ण थे। तब महाभागवत नारदजी से उपदिष्ट होकर उन्होंने इस महापुराण की रचना की। श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में जो रस की सरिताएं प्रवाहित हैं वे मूलतः भक्ति के मानसरोवर से ही निःसृत हैं।

१. शान्तरस

शान्तरस का स्थायी भाव शान्तिरति है। इस भाव में भगवान् के संयोग सुख का आस्वादन होता है। कोई-कोई आचार्य निर्वेद को शान्तरस का स्थायी भाव स्वीकृत करते हैं।[2] निर्वेद दो प्रकार का होता है—एक तो इष्ट वस्तु की अप्राप्ति से तथा अनिष्ट वस्तु के संयोग से प्राप्त निर्वेद। यह स्थायी भाव नहीं हो सकता। परन्तु तत्त्वज्ञान के उदय से जागतिक विषयों के प्रति जो सहज निर्वेद है, वह शान्तरस का स्थायी भाव हो सकता है। चतुर्भुज श्रीकृष्ण एवं शान्त, दान्त भागवत भक्त इसके आलम्बन विभाव तथा उपनिषदादि का श्रवण, एकान्तवास, अन्तर्मुखीवृत्ति, कृष्ण रूप की स्फूर्ति, तत्त्व का विवेचन विद्या की प्रधानता, शक्ति की प्रधानता, विश्वरूप का दर्शन, ज्ञानी भक्तों के साथ सम्पर्क आदि शान्तरस के उद्दीपन

२. भक्तिरसामृतसिन्धु—पश्चिम एवं उत्तर विभाग

३. मम्मट, काव्यप्रकाश ४.४७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विभाव हैं।[1]

ध्यानादि करना, त्यागियों की तरह व्यापार करना, अहंकारादि का अभाव, समत्वभाव आदि इस रस के अनुभाव हैं। रोमांच, कम्प आदि सात्त्विक भाव हैं। निर्वेद, धृति, हर्ष, विषाद औत्सुक्य, आवेगादि संचारी-भाव हैं। इस प्रकार चतुर्भुज श्रीकृष्णादि आलम्बन विभाव एवं उपनिषदादि का श्रवण एवं एकान्तवासादि के द्वारा उद्दीप्त होकर, ध्यानादि अनुभावों, रोमांच कम्पादि सात्त्विक भावों एवं धृतिहर्षादि संचारिकों की सहायता से अभिव्यक्त शान्ति रति या निर्वेद शम रूप स्थायी भाव रस दशा को प्राप्ति होता है और उसे शान्त रस कहते हैं।

श्रीमद्भागवतीय स्तुतियों में शान्तरस का साम्राज्य पाया जाता है। भवमुक्ति वेला में परमहंसों में श्रेष्ठ, रथियों में महारथि एवं ज्ञानियों में मूर्धन्य पितामह भीष्म स्तुति करते हुए भगवान् के त्रैलोक्य सुन्दर चरणों में स्थिर हो जाते हैं—

तमिममहमजं शरीरभाजां हृदि हृदिधिष्ठितमात्मकल्पितानाम्।
प्रतिदृशमिव नैकधार्कमेकं समधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः॥[2]

तत्त्वज्ञान से, भगवत्कथादि के श्रवण मनन आदि से उत्पन्न सहज निर्वेद ही स्थायी भाव है। भगवान् श्रीकृष्ण आलम्बनविभाव, शुद्ध एकान्त स्थान एवं तत्त्वनिर्णय आदि उद्दीपन विभाव, ध्यानादि या एकाग्रता अनुभाव है। स्वेद रोमांचादि सात्त्विक भाव एवं धृति हर्षादि संचारिकों के द्वारा निर्वेद रूपस्थायी भाव आस्वाद्यत्व को प्राप्त होकर रससंज्ञाभिधेय हो जाता है।

वरान् विभो त्वद्वरदेश्वराद् बुधः कथं वृणीते गुणविक्रियात्मनाम्।
ये नारकानामपि सन्ति देहिनां तानीश कैवल्यपते वृणे न च॥[3]

मोक्षपति प्रभो! आप वर देने वाले ब्रह्मादि देवताओं को भी वर देने में समर्थ हैं। कोई भी बुद्धिमान् पुरुष देहाभिमानियों के भोगने योग्य भोगों को कैसे मांग सकता? वे तो नारकी जीवों को भी मिलते ही हैं। अतः इन तुच्छ विषयों को आपसे मैं नहीं मांगता।

यहां पर चतुर्भुज भगवान् विष्णु आलम्बन विभाव हैं, यज्ञशाला, पवित्र स्थान आदि उद्दीपन विभाव है। सारे भोगों का परित्याग चरण-शरणागति की इच्छा आदि अनुभाव है, रोमांचादि सात्त्विक भाव है। त्यागादि सहचारीभाव है। इन सबों के सहयोग से संसारिक विषयों के

१. भक्तिरसामृत सिन्धु—पश्चिमविभाग १.७ एवं १.१३,१४,१५,
२. श्रीमद्भागत १.९.४२
३. तत्रैव ४.२०.२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रति सहज निर्वेद रूप शम, जो स्थायी भाव है, रसनीयत्व को प्राप्त हो जाता है।

शान्तरस का अन्य उदाहरण—

न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम्।
न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा वाञ्छन्ति यत्पादरजः प्रपन्नाः॥[1]

हे प्रभो! जो भक्त आपके चरणों की धूलि का शरण लेते हैं, वे जोग न स्वर्ग का राज्य या न पृथिवी का आधिपत्य चाहते, वे रसातल का राज्य या ब्रह्मपद भी प्राप्त करना नहीं चाहते। उन्हें न तो अणिमादि सिद्धियों की आवश्यकता होती है और न जन्म मृत्यु से छुड़ाने वाले कैवल्य-मोक्ष की ही कामना करते।

प्रस्तुत में भागवतभक्त आलम्बलन के द्वारा उत्पन्न भगवच्चरणधूलि आदि उद्दीपन के द्वारा उद्दीप्त सम्पूर्ण भोगों के त्याग रूप अनुभाव के द्वारा कार्य दशा को प्राप्त, हर्षादि संचारिकों के द्वारा पुष्ट शान्तिरति स्थायी भाव अभिव्यक्त होकर रस दशा को प्राप्त हुआ है।

इस प्रकार स्तुतियों में शान्त रस का सर्वत्र साम्राज्य व्याप्त है।

२. प्रीतिरस (दास्य रस)

श्रीधरस्वामी ने रस के प्रसंग में इस भक्तिरस को सप्रेमभक्तिरस-नामक रसराज कहा है। नामकौमुदी के निर्माता सुदेवादि ने इसी को रति स्थायी भाव वाला शान्त रस कहा है।[2] अपने अनुरूप विभावादि के द्वारा भक्तों के हृदय में आस्वादन योग्यता को प्राप्त हुई प्रीति ही प्रीति भक्तिरस कहलाती है। शान्तरस में स्वरूप चिन्तन की प्रधानता होती है, प्रीतिरस में ऐश्वर्यचिन्तन की। कतिपय आचार्यों ने इसे दास्यरस भी कहा है।

प्रीति भक्ति के दो भेद (१) भयजन्यसंभ्रमप्रीतिरस तथा (२) गौरव मिश्रित गौरव प्रीतिरस। सम्भ्रमजनित प्रीतिभक्तिरस में भक्त भगवान् के अनंत-ऐश्वर्य, प्रभाव, महत्त्व, शक्ति, प्रतिष्ठा, गुणों का आधिक्य एवं चरित्र की अलौकिकता आदि देखकर या जानकर अपने सेव्य के रूप में प्रभु का वरण कर लेता है, और उनकी सेवा के रस में ही अपने को डुबा देता है। गौरव प्रीतिरस में भगवान् के साथ गौरव सम्बन्ध होता है, जैसे भगवान् के पुत्र प्रद्युम्न, शाम्ब आदि गुरुबुद्धि से भगवान् की सेवा करते थे। भक्तिमति कुन्ती की स्तुति में संभ्रमप्रीति और गौरव प्रीति दोनों का मिश्रण पाया जाता है। रसिकभक्तों ने सगुण साकार, अनंत ऐश्वर्यों के निधि द्विभुज, चतुर्भुज आदि आकार विशिष्ट भगद्विग्रह को प्रीतिरस का आलम्बन स्वीकार किया है।

१. श्रीमद्भागवत १०.१६.३७
२. भक्तिरसामृतसिन्धु—पश्चिम विभाग २।१-२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निराकार ब्रह्म को भी आलम्बन स्वीकार किया जा सकता है।

सर्वत्र भगवत्कृपा का अनुभव चरणरज की प्राप्ति, भगवत्प्रसाद का सेवन, भक्तिसंगीत, वंशी आदि की ध्वनि का श्रवण भगवान् का मन्दमुस्कान एवं चित्तवन, भगवत्गुणादि का श्रवण आदि उद्दीपन विभाव हैं। इन विभावों के द्वारा प्रीति आदि भाव उत्पन्न होकर--भगवदाज्ञा का सहर्ष स्वीकार; जीव मात्र के प्रति ईर्ष्या का अभाव एवं दया भाव, भगवद्भक्तों से मैत्री आदि अनुभावों के द्वारा प्रतीति की योग्यता प्राप्त कर हर्षगर्वादि संचारी भावों से पुष्ट होकर रसदशा को प्राप्त होते हैं, उसे ही प्रीतिभक्तिरस कहते हैं।

भगवान् के ऐश्वर्य और सामर्थ्य के ज्ञान से जो आदरपूर्वक संभ्रम-प्रीति का नाम धारण करता है, वहीं दास्यरस या प्रीतिभक्तिरस का स्थायीभाव है। यह प्रीति उत्तरोत्तर बढ़ती हुई प्रेम, राग एवं स्नेह का रूप धारण करती है। यह प्रीतिभाव इतना दृढ़ हो जाता है कि ह्रास की आशंका नहीं रहती, चाहे भगवान् क्षीरसागर में अवस्थित कर दे या नरक में डाल दे - कहीं भी चित्त में विकार उत्पन्न नहीं होता। सम्पूर्णभाव से अपना सब कुछ उसी महिमामय के चरणों में समर्पित कर भक्त निश्चित हो जाता है।

अहं हरे तव पादैकमूलो दासानुदासोभवितास्मि भूयः।
मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः॥[1]

सर्वात्मना वृत्रासुर भगवच्चरणों में अपने को समर्पित कर देता है। वह भगवद्दासों का दास बनना चाहता है। एक क्षण भी प्रभु का वियोग उसे असह्य है। यहां भगवद्विषयिणी प्रीति ही स्थायी भाव है। भगवान् भक्तवत्सल, सगुणरूप आलम्बन विभाव, तथा भगवत्कृपा का अनुभव, भगवद्दासों की संगति आदि उद्दीपन विभाव हैं। सर्वात्मना प्रभु चरणों में समर्पण, भगवत्भक्तों की दासता की स्वीकृति आदि अनुभाव हैं। रोमांच सात्त्विक भाव, हर्ष, निर्वेद आदि संचारिभाव हैं।

न यस्यदेवा ऋषयः पदं विदुः जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम्।
यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो दुरत्ययानुक्रमणः स मावतु॥[2]

यहां भयप्रीति का उदाहरण है।

अन्य उदाहरण---

स उत्तमश्लोक महन्मुखच्युतो भवत्पदाम्भोजसुधाकणानिलः।
स्मृतिं पुनर्विस्मृततत्त्वर्त्मनां कुयोगिनां नो वितरत्यलं वरैः॥

---

१. श्रीमद्भागवत ६।११।२४
२. तत्रैव ८.३ ६
३. तत्रैव ४.२०.२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजा पृथु भगवान् की स्तुति कर रहे हैं—पुण्यकीर्ति प्रभो ! आपके चरणकमल मकरन्द रूपी अमृत कणों को लेकर महापुरुषों के मुख से जो वायु निकलती है, उसी में इतनी शक्ति है कि वह तत्त्व को भूले हुए हम कुयोगियों को पुनः तत्त्वज्ञान करा देती है। अतएव हमें दूसरे वरों की आवश्यकता नहीं है।

यहां प्रीति स्थायी भाव है, भगवान् श्रीहरि आलम्बन विभाव तथा महापुरुषों के मुख से निःसृत भगवद्गुणादि का श्रवण उद्दीपन विभाव है। भगवद्गुण कथा श्रवण के अतिरिक्त अन्य सारे विषयों का परित्याग अनुभाव है। हर्ष, समत्वभाव आदि संचारी भाव हैं।

गौरव प्रीति का उदाहरण

गौरव प्रीति जनित प्रीतिरस में भगवान् को किसी प्रकार का सम्बन्धी या आत्मीय स्वीकार कर उनकी सेवा की जाती है—

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः॥

यहां कुन्ती भगवान् की स्तुति कर रही है—श्रीकृष्ण ! वासुदेव ! देवकीनन्दन ! नन्दगोप कुमार ! गोविन्द ! आपको बार-बार नमस्कार है।

यहां श्रीकृष्ण को अपने निकटतम आत्मीय मानकर स्तुति की गई है इसलिए गौरवप्रीति का उदाहरण है।

(३) प्रेयोभक्तिरस

सख्य रूप स्थायी भाव अपने अनुरूप विभावादि के द्वारा सहृदयों के चित्त में पुष्टि को प्राप्त होकर प्रेयोभक्ति रस कहलाता है।[1] दो समान व्यक्तियों की भयरहित तथा विश्वासरूप जो रति होती है वही सख्य नामक स्थायी भाव है।

कुमार पौगण्ड और किशोर अवस्था के श्रीकृष्ण एवं उनके सखा इसके आलम्बन हैं। व्रज में मरकतमणि के समान श्यामसुन्दर शरीर, कुन्द के समान निर्मल हास्य, चमकता हुआ पीताम्बर, वनमाला, जादूभरी वंशी - ये सबके सब प्रेयोभक्ति रस की धारा प्रवाहित करते हैं।

श्रीकृष्ण की कुमार, पौगण्ड, किशोर अवस्थाएं, उनकी मुनिजन-मनमोहक लोकोत्तर सुन्दरता, वंशीध्वनि, विनोदप्रियता, मधुर भाषा, श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाएं, उनके द्वारा राजा, देवता, अवतार, हंस आदि का अनुकरण, सखाओं के साथ अत्यन्त प्रेमपूर्ण व्यवहार आदि सख्य रस के उद्दीपक विभाव हैं। इन बातों के श्रवण, कीर्तन, स्मरण तथा चिन्तन से प्रेयोभक्तिरस प्रकट होता है।

---

१. भक्तिरसामृतसिन्धु—पश्चिमविभाग ३.१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीकृष्ण के साथ गेंद खेलना, कुश्ती लड़ना एक दूसरे पर सवारी चढ़ना, उनके साथ पलङ्ग पर बैठना, झूले पर झूलना, साथ सोना, उनके साथ विनोद करना, जलविहार, नाचना, गाना, बजाना, गाय दुहना-चराना, कलेऊ करना, आंख मिचौनी आदि खेलना इत्यादि प्रेयोभक्तिरस के अनुभाव हैं।

श्रीकृष्ण के प्रेम में पगे रहना, उनकी अद्भुत लीला देखकर स्तम्भित हो जाना, शरीर पसीजना, रोमांचित होना, विवर्ण होना आदि सात्त्विक भाव स्पष्टरूप से प्रकट होते हैं। आनन्द के आंसू, हर्ष की गाढ़ता आदि स्वाभाविक रूप से रहते हैं। सख्यरति में अपने सखा पर पूर्ण विश्वास रहता है। यही सख्यरति विकसित होकर क्रमशः प्रणय, प्रेम, स्नेह और राग का रूप धारण करती है। सख्यरति में मिलन की इच्छा अत्यन्त तीव्र होती है। प्रणय में ऐश्वर्य का प्रकाश होने पर भी सखा पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। एक ओर ब्रह्मा एवं शिव जैसे महान् देवता श्रीकृष्ण की स्तुति कर रहे हैं तो दूसरी ओर एक सखा उनकी बालों पर पड़ी हुई धूलि झाड़ रहा है। प्रेम में दुःख भी उसको बढ़ाने वाला होता है। स्नेह में एक क्षण के लिए भी अपने सखा की विस्मृति नहीं होती। हृदय सर्वदा स्नेह से भरा रहता है। राग में दुःख के निमित्त भी सुख के रूप में अनुभूत होते हैं।

दास्यरसवत् प्रेमोभक्ति रस में भी अयोग की दोनों अवस्थाएं होती हैं। (१) जब तक भगवान् की प्राप्ति नहीं होती तब तक उत्कण्ठित अवस्था, और (२) मिलने के पश्चात् जब वियोग होता है तब विह्वावस्था। मिलने के पश्चात् वियोग का वर्णन पाण्डवों के जीवन में स्पष्ट रूप से मिलता है। भागवत के प्रथम स्कन्ध में अर्जुन ने भगवान् से बिछुड़ने पर जो विलाप किया है वह बड़ा ही हृदयद्रावक एवं मर्मस्पर्शी है।

भगवान् सखाओं के जीवन में प्राप्त विविध संकटों से रक्षा करते हैं। कुन्तीकृत भगवत्स्तुति में—कुन्ती अपने सुहृद् सखा श्रीकृष्ण के भूयोपकारों का स्मरण कर रही हैं—

> विषान्महाग्नेः पुरुषाददर्शनादसत्सभाया वनवासकृच्छ्रतः।
> मृधे मृधेऽनेकमहारथास्त्रतो द्रौण्यस्त्रतश्चास्म हरेऽभिरक्षिताः॥[1]

उद्धव, गोपियां, श्रीदामा आदि, श्रीकृष्ण के अन्तरंग सखा हैं। गोपीजन एक क्षण भी श्रीकृष्ण से विरहित होकर अपना अस्तित्व धारण नहीं कर सकती। गोपियां श्रीकृष्ण से निवेदित कर रही है—प्यारे श्याम-सुन्दर! तुम सब धर्मों का रहस्य जानते हो। तुम्हारा यह कहना कि अपने पति, पुत्र और भाई-बन्धुओं की सेवा करना ही स्त्रियों का स्वधर्म है—यह

१. श्रीमद्भागवत १.८.२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अक्षरसः ठीक है, परन्तु इस उपदेश के अनुसार हमें तुम्हारी ही सेवा करनी चाहिए क्योंकि तुम्ही सब उपदेशों के परमलक्ष्य हो, साक्षात्भगवान् हो। तुम्ही समस्त शरीरधारियों के आत्मा हो, सहृद् हो, और प्रियतम हो।[1]

दास्यमिश्रित सख्य (प्रेयोभक्तिरस) का एक अन्य उदाहरण---

सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृतपूरकेण हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम्।
नो चेद् वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखेते॥

प्राणबल्लभ! प्यारे सखा! तुम्हारी मन्द-मन्द मधुर मुस्कान, प्रेमभरी चितवन और मनोहर संगीत ने हमारे हृदय में तुम्हारे प्रेम और मिलन की आग और धधका दी है। उसे तुम अपने अधरों की रसधारा से बुझा दो। नहीं तो प्रियतम! हम सच कहती हैं तुम्हारी विरह व्यथा की आग से हम अपने-अपने शरीर जला देंगी और ध्यान के द्वारा तुम्हारे चरण कमलों को प्राप्त करेंगी।

(४) वत्सलभक्तिरस

विभावादि के द्वारा पुष्टि को प्राप्त हुआ वात्सल्यरूप स्थायी भाव वत्सलभक्तिरस होता है। इसको विद्वान् लोग वत्सलभक्तिरस न कहकर केवल वात्सल्यरस कहते हैं।[2] ये कृष्ण एवं उनके गुरुजनों को इसका आलंबन मानते हैं। श्यामलदेह, सुन्दर, समस्त शुभ लक्षणों से युक्त, मिदुभाषी, सरलप्रकृति, लज्जाशील, विनयी, पूजनीय जनों का आदर करने वाले, दाता श्रीकृष्ण इसके आलम्बन विभाव हैं।[3] कौमारादि आयु, रूप, वेष, शैशव की चपलता, बात करना, मुस्कराना और लीला आदि वात्सल्यरस के उद्दीपन विभाव हैं।[4] सिर का सूंघना, शरीर पर हाथ फेरना आशीर्वाद और आज्ञा देना, लालन-पालन करना, तथाहित का उपदेश करना आदि वत्सलरस में अनुभाव कहे जाते हैं।[5] आश्चर्य, स्तम्भन, स्वेद, रोमांच, हर्ष आदि संचारि-भाव हैं।

स्तुतियों में अनेक स्थलों पर वात्सल्यरस का सुन्दर प्रयोग प्राप्त होता है। कुन्ती, देवहूति, देवकी और वसुदेव की स्तुतियां वात्सल्यरस से युक्त हैं। सती कुन्ती प्रभु के बाल लीलाओं का ध्यान कर मुग्ध हो जाती हैं। वह कहती है--जब बचपन में आपने दूध की मटकी फोड़कर यशोदा मैया को रिझा दिया था, और उन्होंने आपको बांधने के लिए हाथ में रस्सी

१. श्रीमद्भागवत १०।२९।३५
२. भक्तिरसामृत सिन्धु, पश्चिम विभाग, ४.१
३. तत्रैव ४.२-४
४. तत्रैव ४.९
५. तत्रैव ४.२०-२१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ली थी, तब आपकी आंखों में आंसू छलक आए थे, काजल कपोलों पर बह चला था, नेत्र चंचल हो रहे थे और भय की भावना से आपने अपने नेत्र को नीचे की ओर झुका लिया था। आपकी उस दशा का—लीला छवि का ध्यान कर मोहित हो जाती हूं। भला जिससे भय भी भय मानता उसकी यह दशा।[1]

श्रीकृष्ण जन्म के बाद वसुदेव श्रीकृष्ण का रूप सौन्दर्य देखकर अत्यत हर्षित हो गए। यह जानकर कि पुत्र रूप में स्वयं भगवान् ही आए हैं, अत्यन्त भावविह्वल हो गए—

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शङ्खगदार्युदायुधम्।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम्॥
महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डलत्विषा परिष्वक्तसहस्त्रकुन्तलम्।
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभिः विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत॥[2]

जहां भी वात्सल्यरस का चित्रण है वहां भक्त सिर्फ प्रभु से लौकिक सम्बन्ध ही स्थापित नहीं करता बल्कि प्रभु के वास्तविक स्वरूप (माहात्म्य) को भी जानता है। देवकी विराट् प्रभु के रूप की अपेक्षा वह अपने पुत्र श्रीकृष्ण को ही देखना चाहती है—

उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम्।[3]
शंखचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम्॥

इस प्रकार स्तुतियों में वात्सल्यरस का यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है।

(५) मधुर भक्तिरस

मधुररति ही मधुरभक्तिरस का स्थायी भाव है। अपने अनुरूप विभावादिकों के द्वारा सहृदयों के हृदय में पुष्टि को प्राप्त, मधुरारति को मधुर भक्तिरस कहा जाता है।[4] भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनकी प्रिय बल्लभाएं आलम्बन विभाव हैं। भगवान् श्रीकृष्ण का सौन्दर्य त्रिभुवन में अनुपमेय है, उनकी लीलामाधुर्य लोकोत्तर है। अत्यन्त रमणीय, मधुर, समस्त शुभलक्षणों से युक्त, अत्यन्त बलवान्, नित्य-नूतन, नव-युवा, प्रेमपरवश, मदनमोहन श्यामसुन्दर, और उनके लहराते हुए बाल तथा फहराता हुआ पीताम्बर से युक्त श्रीकृष्ण पर क्षणभर के लिए भी जिन आंखों की दृष्टि पड़ी की सदा-सर्वदा के लिए उन्हीं की हो गयी।

थोड़ी सेवा से रीझना, हमेशा मुस्कराते रहना, श्रीकृष्ण की प्रेममयी

१. श्रीमद्भागवत महापुराण १.८.३१
२. तत्रैव १०.३.९-१०
३. तत्रैव १०.३.३०
४. भक्तिरसामृतसिन्धु-पश्चिम विभाग ५.१-२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाणी भगवान् की किशोरादि अवस्थाएं, वंशी और शृंग की ध्वनि, मधुर-गायन, शरीर की दिव्य सुगन्धि, आभूषणों की झनकार, चरणचिह्न, श्रीकृष्ण का प्रसाद, मयूरपिच्छ, गुंजा, गोधूलि, गोवर्द्धन, यमुना, कदम्ब, रासस्थली, वृन्दावन, भौंरे, हरिन, सुगन्धित हवाएं, पशु-पक्षी आदि मधुर भक्तिरस के आलम्बन विभाव हैं।

अनुभाव तीन प्रकार के होते हैं—अलंकार, उद्भास्वर और वाचिक। भाव, हाव, हेला—ये तीन शारीरिक, शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता, औदार्य, धैर्य– ये सात बिना प्रयास के होने वाले तथा लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम आदि दस स्वाभाविक—ये बीस लंकार कहे जाते हैं। वस्त्रगिरना, बाल खुलना, अङ्ग टूटना एवं दीर्घश्वास लेना ये उद्भास्वर अनुभाव हैं। आलाप, विलाप, संलाप, प्रलापादि १२ प्रकार के वाचिक अनुभाव होते हैं। इनके अतिरिक्त मौग्ध्य और चकित नाम के दो अनुभाव और भी होते हैं।

इसमें स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभङ्ग, कम्प, विवर्णता अश्रुपातादि सभी प्रकार के सात्त्विक भाव उत्पन्न होते हैं। ये अपनी अभिव्यक्ति के तारतम्य से धुमायित, प्रज्वलित, दीप्त, उद्दीप्त, और सुदीप्त पांच प्रकार के होते हैं। यद्यपि सभी रसों में सात्त्विक भावों का उदय होता है लेकिन उनकी पूर्ण रूप से अभिव्यंजना मधुर रस में ही होती है।

आलस्य और उग्रता को छोड़कर निर्वेदादि तीसों संचारीभाव मधुररस के होते हैं।[1] इन्हीं विभाव, अनुभाव तथा संचारीकों की सहायता मधुरारति मधुरभक्तिरस के रूप में अभिव्यक्त हो जाती है।

भागवतीय भक्तों की अनेक स्तुतियों में मधुररस की मधुर अभिव्यंजना हुई है। पितामह भीष्म मधुरेश्वर श्रीकृष्ण के सौन्दर्य का सुन्दर वर्णन किया है—

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवाम्बरं दधाने।
वपुरलककुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या॥[2]

जिनका शरीर त्रिभुवन सुन्दर एवं श्याम ताल की तरह सांवला है, जिस पर सूर्यरश्मियों की तरह श्रेष्ठ पीताम्बर लहराता है और कमल सदृश मुख पर घुंघराली अलकें लटकती रहती हैं, उन अर्जुन सखा श्रीकृष्ण में मेरी निष्कपट प्रीति हो।

यहां त्रैलोक्य सुन्दर श्रीकृष्ण आलम्बन हैं। त्रिभुवन कमन रूप, पीताम्बर, घुंघराले बाल इत्यादि उद्दीपन विभाव हैं। उनके द्वारा पूर्वकृत

१. भक्तिरसामृत सिन्धु– पश्चिम विभाग ५.६
२. श्रीमद्भागवत १.९.३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपकारों, अर्जुन के प्रति सातिशय प्रेमभाव का स्मरण करना, श्रीकृष्ण की मीठी बोली, धनुर्धरत्व आदि अनुभाव हैं। रोमांच, हर्ष, समर्पण आदि संचारिभाव हैं। यहां मधुररस की रमणीयता लोकोत्तर आह्लादजननसमर्थ है।

गोपियों की स्तुति में मधुररस का सौन्दर्य अवलोकनीय हैं। गोपियां कहती हैं—

वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्री गण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम्।
दत्ताभयं च भुजदण्डयुगं विलोक्य वक्षः श्रियैकरमणं च भवाम दास्यः॥
का स्त्यङ्ग ते कलपदायतमूर्च्छितेन सम्मोहिताऽऽर्यचरितान्न चलेत्त्रिलोक्याम्।
त्रैलोक्यसौभगमिदं चनिरीक्ष्य रूपं यद् गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन्॥[1]

प्रियतम! तुम्हारा सुन्दर मुखकमल, जिस पर घूंघराली अलके झलक रही है, तुम्हारे ये कमनीय कपोल, जिन पर सुन्दर-सुन्दर कुण्डल अपना अनन्त सौन्दर्य बिखेर रहे हैं, तुम्हारे ये मधुर अधर, जिनकी सुधा सुधा को भी लजाने वाली है, तुम्हारी यह नयनमनोहारी चितवन, जो मन्द-मन्द मुस्कान से उल्लसित हो रही है, तुम्हारी ये दोनों भुजाएं, जो शरणागतों को अभयदान देने में अत्यन्त उदार हैं, और तुम्हारा यह वक्षःस्थल, जो सौन्दर्य विभूति लक्ष्मी जी का नित्य क्रीड़ास्थल है, देखकर हम सब तुम्हारी दासी हो गयी हैं। प्यारे श्याम सुन्दर! तीनों लोकों में और कौन-सी स्त्री है, जो मधुर-मधुरपद एवं आरोह और अवरोह क्रम से विविध प्रकार की मूर्च्छनाओं से युक्त तुम्हारी वंशी की तान सुनकर तथा इस त्रिलोक सुन्दर मोहिनी मूर्त्ति को, जो अपनी एक बूंद सौन्दर्य से त्रिलोकी को सौन्दर्य का दान करती है एवं जिसे देखकर गौ, पक्षी, वृक्ष और हरिण भी रोमांचित हो जाते हैं— अपनी नेत्रों से निहारकर आर्य-मर्यादा से विचलित न हो जाए, लोकलज्जा को त्यागकर तुममें अनुरक्त न हो जाए।

यहां त्रैलोक्यसौभग श्रीकृष्ण मधुरभक्तिरस के आलम्बन हैं। उनकी सुन्दरता, वंशी की तान, भौहों का विलास इत्यादि उद्दीपन हैं। सौन्दर्य पर मुग्ध होना अनुभाव है तथा स्तम्भ, रोमांच इत्यादि संचारी भाव हैं। इन विभावादिकों की सहायता से प्रस्तुत प्रसंग में मधुररस की अभिव्यंजना हो रही है।

---

१. श्रीमद्भागवत महापुराण १०।२९।३९-४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में अलंकार

व्यावहारिक जीवन में साज-सज्जा एवं भव्य रूप सौन्दर्य के द्वारा दूसरे की धारणा को प्रभावित करने की प्रवृत्ति जनसामान्य में पायी जाती है। अपार काव्य संसार में भी काव्य की सुमधुर उक्तियों को अत्यधिक चमत्कारपूर्ण, प्रभावोत्पादक बनाने के लिए अलंकृत किया जाता है। काव्योक्तियां जनसामान्य की व्यावहारिक उक्तियों से भिन्न होती हैं। लोकोत्तर-चमत्कार-वर्णनानिपुण कवियों का कर्म काव्य ब्रह्मास्वादसहोदर तथा विलक्षण होता है। लोकव्यवहार की अनलंकृत उक्तियां अलंकृत होकर चमत्कार पूर्ण भङ्गी विशेष से कथित होने पर काव्य शब्द से अभिहित होने लगती हैं। कवि प्रतिभा से समुद्भूत उक्तियों के अलोकसिद्ध सौन्दर्य को कुछ आचार्य ने व्यापक अर्थों में अलंकार माना है।[1]

संस्कृत साहित्य में अलंकार शब्द का प्रयोग दो अर्थों में प्राप्त होता है। प्रथमतः भाव में प्रत्यय होकर अलंकृति (अलम्+कृ+क्तिन्) एवं अलंकार (अलम्+कृ+घञ्) शब्द भूषण या शोभा के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। इस अर्थ में अलंकार सौन्दर्य से अभिन्न है। इसी अर्थ को ग्रहणकर वामन ने अलंकार को सौन्दर्य का पर्याय कहकर अलंकार युक्तकाव्य को ग्राह्य एवं अलंकाररहित काव्य को अग्राह्य कहा है।[2]

इस अर्थ में काव्य के समस्त सौन्दर्य अलंकार हैं। काव्य के वे सभी तत्त्व जो काव्य शोभा का आधान करते हैं, अलंकार के इस व्यापक अर्थ में आ जाते हैं।

अलंकार शब्द का दूसरा अर्थ करण व्युत्पत्ति लभ्य है—"अलङ्क्रियते अनेन इति अलङ्कारः। "वह तत्त्व जो काव्य को अलंकृत अथवा सुन्दर बनाने का साधन हो, अलंकार कहलाता है। अनुप्रास उपमादि अलंकार कहे जाते हैं। भामह तथा उद्भट ने काव्य शोभा के साधक धर्म को अलंकार मानकर गुण रस आदि को भी अलंकार की सीमा में समेट लिया है।

आचार्य दण्डी ने भी काव्य के शोभाकर धर्म को अलंकार कहा है।

---

१. सौन्दर्यमलङ्कारः—वामन, काव्यालंकारसूत्रवृत्ति १.१.२

२. काव्य ग्राह्यमलंकारात्—तत्रैव १.१.१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इनके मतानुसार गुण आदि तत्त्व काव्य में सौन्दर्य का आधान करने के कारण अलंकार हैं। ये आचार्य गुण और अलंकार में स्पष्ट सीमा-रेखा नहीं खींच पाये, इसलिए वामन को स्पष्ट कहना पड़ा कि काव्यशोभा में वृद्धि करने वाले धर्म अलंकार कहे जाते हैं।

दूसरे वर्ग के अलंकारिकों ने कथन के चारुतापूर्ण प्रकार-विशेष को अलंकार का लक्षण माना है। वक्रोक्तिकार कुन्तक ने वक्रोक्ति—भङ्गीभणिति को काव्य का अलंकार कहा है।[२] कुन्तक के पूर्ववर्त्ती भामह ने भी वक्रोक्ति या अतिशयोक्ति को अलंकार का प्राणभूत तत्त्व माना है। रुय्यक कथन के प्रकार विशेष को अलंकार का स्वरूप मानते हैं। उनके अनुसार कवि प्रतिभा से समुद्भूत कथन का प्रकार-विशेष ही अलंकार है।[३] आनन्दवर्द्धन के अनुसार वाग्विकल्प अर्थात् कथन के अनूठे ढंग अनन्त हैं और उनके प्रकार ही अलंकार कहलाते हैं।[४] अभिनवगुप्त तथा पण्डितराज जगन्नाथ आदि विद्वानों के मतानुसार कथन का चमत्कारपूर्ण ढंग, उक्ति की विच्छित्ति ही अलंकार है। कथन की सुन्दरभङ्गियां अनन्त हैं, अतः अलंकार असंख्य हैं।

आचार्य मम्मट के अनुसार काव्य के वे धर्म, जो काव्य के शरीरभूत शब्द एवं अर्थ को अलंकृत कर उसके माध्यम से काव्यात्मभूत रस का भी उपकार करते हों, अलंकार कहलाते हैं। वे अनुप्रास, उपमादि शब्दालंकार एवं अर्थालंकार मनुष्य के हार आदि आभूषण की तरह काव्य के आभूषण होते हैं। स्पष्ट है कि मम्मट ने अलंकार को शब्दार्थभूत काव्य शरीर का भूषण माना है, जो प्रकारान्तर से ही यदा-कदा रस का उपकार करता है।[५]

काव्य सौन्दर्य एवं अलंकार योजना

काव्य क्षेत्र में अलंकार का स्थान तथा अन्य काव्य तत्त्वों के साथ उसके सापेक्ष महत्त्व में अनेक मत-मतान्तर प्रचलित हैं। काव्य के स्वरूप में विभिन्न आचार्यों में मतवैभिन्य के कारण अलंकार के विषय में भी वैभिन्य है। भारतीय काव्यशास्त्र में काव्यस्वरूप विधायक छः प्रस्प्रदाय प्रचलित हैं—
(१) अलंकार सम्प्रदाय (२) रीति सम्प्रदाय, (३) वक्रोक्ति सम्प्रदाय।
(४) रस सम्प्रदाय, (५) ध्वनि सम्प्रदाय और (६) औचित्य सम्प्रदाय

---

१. ओजः प्रभृतीनामनुप्रासोपमादीनां चोभयेषामपि समवायवृत्त्या स्थिति-रिति गड्डलिका प्रवाहेणैवैषां भेदः। (काव्यप्रकाश अष्टम उल्लास)
२. कुन्तक, वक्रोक्तिजीवितम् १.१०
३. रुय्यक, अलंकारसर्वस्व, पृ० ८
४. अनन्ता हि वाग्विकल्पास्तत्प्रकारा एव चालङ्काराः (आनन्दवर्द्धन ध्वन्यालोक ३.२७ की वृत्ति
५. मम्मट, काव्यप्रकाश ८.६७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ध्वनि सम्प्रदाय के आचार्यों ने वस्तुध्वनि एवं अलंकार ध्वनि की अपेक्षा रस ध्वनि को विशेष महत्त्व दिया है। अतएव ध्वनि सम्प्रदाय एवं रस सम्प्रदाय में काव्य के मौलिक स्वरूप में अधिक अन्तर नहीं है।

भामह, उद्भट आदि अलंकार को काव्य-सौन्दर्य के लिए अनिवार्य धर्म मानते हैं, पर इससे विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त उपमा आदि का माधुर्य आदि गुणों के साथ सापेक्ष महत्त्व स्पष्ट नहीं हो पाता। भामह ने काव्य के अलंकार को नारी के आभूषण की तरह स्वीकृत किया है। जैसे सुन्दर स्त्री आभूषणाभाव में श्रीहीन लगती है उसी प्रकार अलंकार विहीन काव्य शोभारहित है।[1] भामह को कान्त मुख भी अनलंकृत होने पर मनोरम नहीं लगता, पर कालिदास जैसे सुन्दर रसज्ञ "किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतिनाम्"[2] इत्यादि की उद्घोषणा करते हैं। भामह ने भी स्वीकार किया है कि आश्रय के सौन्दर्य से असुन्दर वस्तु भी सुन्दर बन जाती है। सुन्दर आँखों में काला अंजन भी सुन्दर लगने लगता है।[3]

आचार्य दण्डी ने अलंकार को व्यापक अर्थ में काव्य सौन्दर्य के हेतु के रूप में स्वीकृत किया है। दण्डी ने विशिष्ट अर्थ में उपमा आदि अलंकार को श्लेष प्रसाद आदि दस गुणों से पृथक् कर, जहां दोनों का सापेक्ष महत्त्व निर्धारित करना चाहा है, वहां अलंकार की अपेक्षा गुण पर ही उनका विशेष आग्रह जान पड़ता है। समाधि गुण को "काव्य सर्वस्व" कहकर दण्डी ने अलंकार की अपेक्षा गुण को अधिक महत्त्व दिया है।[4]

इस कथन से स्पष्ट आभाषित होता है कि दण्डी ने काव्य में रसोत्कर्ष के लिए अलंकार की अपेक्षा अग्राम्यता, माधुर्यादि गुण विशेष को ही अधिक उपकारक माना है।

वामन ने अलंकार को काव्य सौन्दर्य का पर्याय मानकर सालंकार काव्य को ही ग्राह्य कहा है।[5] उन्होंने जिस अलंकार के सद्भाव से काव्य को ग्राह्य एवं अभाव से काव्य को अग्राह्य माना, उसका अर्थ केवल अनुप्रास उपमा आदि विशिष्ट अलंकारों तक ही सीमित नहीं था प्रत्युत वह शब्द सामान्य रूप से काव्य सौन्दर्य के व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ था। वामन ने

---

१. भामह, काव्यालंकार १.१३
२. अभिज्ञानशाकुन्तलम् १.२०
३. भामह, काव्यलंकार १.५५
४. दण्डी, काव्यादर्श २.१
५. तत्रैव १.१०१
६. काव्यं ग्राह्यमलंकारात्। सौन्दर्यमलङ्कारः वामन काव्यालंकार सूत्रवृत्ति १.१.१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रीति को काव्य की आत्मा स्वीकार की है।[1] अतः यह स्वाभाविक है कि रीति के विधायक गुण को वे काव्य में विशेष महत्त्व देते। यही कारण है कि उन्होंने काव्य सौन्दर्य का हेतु गुण को ही माना है।[2] अलंकार काव्य-सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं।[3] स्पष्ट है कि गुण के अभाव में केवल अलंकार से काव्यत्व नहीं आ सकता। केवल गुणाधान से काव्यत्व का आरोप किया जा सकता है। गुणसहित सालंकृत पदावली ही ग्राह्य है।

आचार्य उद्भट अलंकार को गुण के समान ही महत्त्व देने के पक्षपाती हैं। उनकी मान्यता है कि गुण और अलंकार दोनों ही सामान्य रूप से काव्य के उपकारक होते हैं। जयदेव काव्य लक्षण में अलंकार को एक अनिवार्य तत्त्व के रूप में स्वीकृत करते हैं।[4] उन्होंने तो यहां तक कह दिया है कि अलंकारहीन शब्दार्थ की कल्पना उष्णता रहित अग्नि के समान है।[5] जैसे उष्णता में ही अग्नित्व है उसी प्रकार अलंकृत होने में काव्य का काव्यत्व है। अलंकार काव्य का नित्य धर्म है।

वक्रोक्ति सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापकाचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति को काव्य सर्वस्व स्वीकार किया है। लोकोत्तर चमत्कारपूर्ण भङ्गीभणिति ही वक्रोक्ति है, जो शब्दार्थ साहित्य का उपकारक होता है, वक्रोक्ति अलंकार है[6] और काव्य का प्राणभूत तत्त्व है। क्षेमेन्द्र ने "औचित्य" को काव्य का प्राण कहकर नवीन मार्ग की प्रतिष्ठापना की है। औचित्य का अर्थ है उचित का भाव। जिस वस्तु का जो अनुरूप है उसके साथ उसकी संघटना उचित मानी जाती है।[7] उचित विन्यास होने पर ही अलंकार सच्चे अर्थ में अलंकार होते हैं जो काव्यश्री की वृद्धि करते हैं।[8]

ध्वनि सम्प्रदाय में अलंकार का निरूपण साङ्गोपाङ्ग हुआ है। इस सम्प्रदाय में किसी एक तत्त्व को महत्त्व देकर अन्य को उसी में अन्तर्भुक्त नहीं माना, बल्कि ध्वनि को काव्य की आत्मा मानने पर भी गुण, रीति अलंकार को तटस्थभाव से काव्य में स्थान निरूपित किया है। आनन्दवर्द्धन के अनुसार रस को प्रकाशित करने वाले वाक्य-विशेष ही रूपक आदि अलंकार

१. वामन, काव्यालंकार सूत्रवृत्ति १.२.६
२. तत्रैव ३.१.१
३. तत्रैव ३.१.२
४. जयदेव, चन्द्रालोक १.७
५. तत्रैव १.८
६. कुन्तक, वक्रोक्ति जीवितम् १.१०
७. क्षेमेन्द्र, औचित्य वि० चर्चा ७
८. तत्रैव ८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है।[1] अलंकार वाच्योपकारक होने के कारण काव्य के शरीर हैं, पर कभी वे शरीरी भी बन जाते हैं।

रससिद्ध कवि को अलंकारों के लिए आयास नहीं करना पड़ता, बल्कि जब उस कवि के हृदय के भाव अभिव्यक्ति पाने लगते है तब अलंकार परस्पर होड़ लगाकर उस अभिव्यक्ति में स्थान पाने के लिए आ जुटते हैं।[2]

आचार्य मम्मट ने अपने काव्य परिभाषा में दोषरहित एवं गुण सहित शब्दार्थ को अनिवार्य तत्त्व माना है अलंकार को नहीं। उन्होंने कहा कि गुणसहित दोषरहित अनलंकृत शब्दार्थ भी काव्य होते हैं।[3] स्पष्ट है कि आचार्य मम्मट ने उत्कृष्ट काव्य के लिए अदोष एवं सगुण शब्दार्थ को अनिवार्य माना है, अलंकार भी यदि रस का सहायक बनकर आये तो काव्य का सौन्दर्य और उत्कृष्ट हो जाता है।

इस प्रकार अलंकार शब्दार्थ साहित्य की उत्कृष्टता के उपकारक होते हैं, उसके स्वरूपाधायक नहीं। जैसे ग्राम्य बाला भूषणों से भूषित अत्यन्त रमणीय हो जाती है उसी प्रकार प्रतिभाशाली कवियों की वाणी अलंकार से मण्डित होकर कमनीय एवं श्रवणीय हो जाती है। अतएव काव्य की उत्कृष्टता में अलंकारों का योगदान है।

पूर्व में अलंकार शब्द का दो अर्थ माना गया है। प्रथम वह सौन्दर्य का पर्याय है तो द्वितीय उपमादि अलंकारों का बोधक है, जो काव्य को सुशोभित करता है। हमारा विवेच्य यही उपमादि अलंकार हैं।

श्रीमद्भागवतकार ने सौन्दर्योत्पादन, अतिशय शोभाविधान, प्रभावोत्पादन, अभिव्यंजना-वैचित्र्य, चमत्कार संयोजन, स्पष्ट भावावबोधन, बिम्ब ग्रहणार्थ, रस उपकरण एवं संगीतात्मकता की उत्पत्ति आदि के लिए विविधालंकारों का प्रयोग किया है। श्रीमद्भागवत में शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों का प्रयोग शब्दों की चमत्कृति, अर्थों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति रसबोध, भावों को चमत्कृत एवं सौन्दर्य चेतना को उद्बुद्ध करने के लिए किया गया है।

स्तुतियों में अलंकार

श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में प्रयुक्त कतिपय अलंकारों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत करते हैं।

अनुप्रास

वर्णों की समानता अनुप्रास अलंकार है। स्वरों के असमान होने पर भी व्यंजनों की समानता होने पर अनुप्रास कहलाता है।[4] छेक और वृत्ति के

१. आनन्दवर्द्धन, ध्वन्यालोक, २
२. तत्रैव २
३. मम्मट, काव्यप्रकाश, १.१
४. काव्यप्रकाश ९.७९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्रम से अनुप्रास के दो भेद होते हैं। अनेक व्यंजनों की एक बार की समानता छेकानुप्रास तथा एक या अनेक वर्णों का अनेक बार सादृश्य वृत्त्यानुप्रास अलंकार है। ये दोनों भेद श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में उपलब्ध होते हैं। कविता का विषय है—हृदय की अनुभूति और अनुप्रास का विषय है उच्चारण का सादृश्य विधान। हृदय की अनुभूति एवं उच्चारण के सादृश्य विधान में गहरा सम्बन्ध है। भक्त हृदय की अवस्था दो प्रकार की होती है—उल्लास एवं विह्वलता की। जब भक्त हृदय उल्लास से भर जाता है तो वह गाने लगता है और जब विह्वल हो जाता है तो रोने लगता है। गाकर या रोकर भक्त अपने हृदय की भावनाओं को अपने प्रभु के प्रति निवेदित करने लगता है। इन दोनों अवस्थाओं में भाषा में लय और साम्य उत्पन्न होता है, जो अनुप्रास का मूल है। भागवतीय भक्त जहां भी उल्लास से पूर्ण होकर झूम उठता है या विह्वलावस्था में अत्यन्त कातर स्वर में प्रभु को पुकारता है, तब वहां उच्चारण सादृश्य का चमत्कार पाया जाता है। जब द्रौण्यास्त्र से भीत उत्तरा कातर स्वर में प्रभु को पुकारती है, उस समय की आनुप्रासिक छटा का अवलोकन कीजिए—

पाहि पाहि महायोगिन् देवदेव जगत्पते।
नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम्॥[1]

"पाहि-पाहि एवं देव-देव में वृत्त्यानुप्रास अलंकार है।

श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग्राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य।
गोविन्द गोद्विजसुरातिहरावतार योगेश्वराखिलगुरो भगवन्नमस्ते॥[2]

इस श्लोक में "कृष्ण-कृष्ण" में वृत्त्यानुप्रास अलंकार है एवं तृतीय पंक्ति में "गो-गो" आदि शब्दों में छेकानुप्रास अलंकार है।

शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः॥[3]

इसमें "न्त" पद पांच बार आवृत्त हुआ है। इसमें वृत्त्यानुप्रास है।

अथ विश्वेश विश्वात्मन् विश्वमूर्ते स्वकेषु मे।
स्नेहपाशमिमंछिन्धि दृढ़ा पाण्डुषु वृष्णिषु॥[4]

इसमें 'विश्व' इन तीन शब्दों की तीन बार आवृत्ति होने से वृत्त्यानुप्रास तथा अन्त में "षु" की दो बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास है। श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में अनुप्रास अलंकार बहुत अधिक मात्रा में प्राप्त होता है।

---

१. श्रीमद्भागवत १.८.९
२. तत्रैव १.८.४३
३. तत्रैव १.८.३६
४. तत्रैव १.८.४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृत्त्यानुप्रास का और उदाहरण—

सुरोऽसुरो वाप्यथवानरो नरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् ।
भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयन्कोसलान्दिवमिति ॥[1]

यहां "सुर-सुर" एवं "नर-नर" में वृत्त्यानुप्रास है । भागवतकार ने नामों में भी अनुप्रास के प्रयोग का प्रशंसनीय प्रयास किया है ।

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च ।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमोनमः ॥
नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ।
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजांघ्रये ॥[2]

उपर्युक्त श्लोकों में छेक और वृत्त्यानुप्रास दोनों के उदाहरण मिलते हैं ।

शुकदेवकृत भगवत्स्तुति में अनुप्रास की छटा देखिए । छेकानुप्रासालंकार—

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥[3]

इसमें न एवं ण की बार-बार आवृत्ति से छेकानुप्रास अलंकार है ।

श्रीमद्भागवतकार प्रसंगानुकूल वर्णों का प्रयोग करते हैं । जहां कोमलता का आधान करना हो वहां कोमल वर्णों का तथा जहां कठोरता, भयंकरता, वीरता का वर्णन करना हो तो परुष वर्णों का विन्यास करते हैं । श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में अधिकांशतः कोमल वर्णों का ही उपन्यास हुआ है । जब भगवान् कृष्ण यदुवंश के रक्षक के रूप में देवकी के गर्भ में निवास करते हैं तब देवलोग गद्गद् स्वर से उस गर्भस्थ प्रभु की अनुप्रासिक शब्दों में स्तुति करते हैं—

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ।
सत्यस्य सत्यमृत सत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नः ॥[4]

"स, त्, य" इन तीन वर्णों की अनेक बार आवृत्ति होने से इसमें वृत्त्यानुप्रास, साभिप्राय विशेषणों के प्रयोग से परिकर अलंकार एवं उत्कृष्टता का प्रतिपादन होने से उदात्त अलंकार तथा तीनों के तिल-तण्डुल न्याय से उपस्थिति होने से संसृष्टि अलंकार है। गीतों में अनुप्रास की छटा दर्शनीय है ।

१. श्रीमद्भागवत ५.१९.८
२. तत्रैव १.८.२१-२२
३. तत्रैव २.५.१५
४. तत्रैव १०.२.२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोपीगीत, वेणुगीत के प्रत्येक श्लोक में अनुप्रासिक सौन्दर्य का दर्शन होता है। चतुर्थ स्कन्ध के अन्तर्गत विद्यमान राजा पृथु की स्तुति का एक श्लोक उद्धृत है—जो अनुप्रासिक सौन्दर्य का उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत करता है। राजा पृथु अपने प्रभु से कहते हैं—

वरान् विभो त्वद्वरदेश्वराद् बुधः कथं वृणीते गुणविक्रियात्मनाम्।
ये नारकाणामपि सन्ति देहिनां तानीश कैवल्यपते वृणे न च।

इस प्रकार श्रीमद्भागवतकार ने अनुप्रासिक सौन्दर्य को खूब पहचाना है।

उपमा

उपमा भारतीय साहित्यशास्त्र में उपलब्ध अलंकारों में अत्यन्त प्राचीन तथा सौन्दर्य की दृष्टि से अग्रगण्य है। वामन, दण्डी, राजशेखर, अभिनवगुप्त, मम्मट आदि सभी आचार्यों ने उपमा के महत्त्व को स्वीकारा है। अभिनवगुप्त सभी अलंकारों का मूल उपमा को मानते हैं।[1] राजशेखर ने उपमा को सभी अलंकारों में मूर्धाभिषिक्त, काव्य का सर्वस्व तथा कवि-कुल की माता कहा है।[2]

अलंकार शास्त्र में उपमा का निरूपण अत्यन्त सूक्ष्म ढंग एवं भेदोपभेद सहित किया गया है। रुद्रट ने अर्थालंकार के वर्गीकरण में चार तत्त्वों को मूल आधार मानकर औपम्य अथवा सादृश्य तत्त्व को ही प्रमुख माना है।[3] कवि का उद्देश्य वस्तु के दर्शन से उत्पन्न अपनी अनुभूति को व्यक्त करना है। इस अवस्था में वह वस्तु स्वरूप निबन्धन न कर प्रतिमा निबन्धन करता है। उदाहरणार्थ कवि का वर्ण्य विषय यदि मुख है तो वह मुख का बाह्य या स्थूल वर्णन न कर मुख दर्शन सौन्दर्य भावना को व्यक्त करता है। मुख चन्द्रवत् है ऐसा कहने से कोमलता, स्निग्धता, चारुता, सुन्दरता आदि चन्द्रमा के जो गुण हैं वे सभी सादृश्य के आधार पर मुख में भी प्रतिबिम्बित होने लगते हैं।

अलंकार शास्त्रियों ने उपमा को सम्यक् रूप से पारिभाषित करने का प्रयास किया है। आचार्य भरत के अनुसार काव्य रचना में कोई वस्तु सादृश्य के कारण दूसरी वस्तु के साथ उपमित होती है वहां उपमा होती है, वह उपमा गुण और आकृति पर आधारित होती है।[4] भामह के अनुसार उपमान

१. उपमाप्रपञ्चश्च सर्वोऽलङ्कार इति विद्वद्भिः प्रतिपन्नयेव। अभिनवभारती पृ० ३२१
२. केशव मिश्र के अलंकार शेखर में उद्धृत, पृ० ३२
३. काव्यलंकार ७.९
४. भरत, नाट्यशास्त्र १६,४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के साथ उपमेय का गुण लेश के कारण साम्य दिखाया जाए वहां उपमा होती है।[1] दण्डी ने जिस--किसी प्रकार के सादृश्य की प्रतीति में उपमा की सत्ता मान ली।[2] मम्मट ने परस्पर स्वतंत्र दो वस्तुओं में साधर्म्य को उपमा कहा है।[3]

उपरोक्त परिभाषाओं के अवलोकन से उपमा के चार अंग परिलक्षित होते हैं

१. वह वर्ण्य-वस्तु, जिसकी तुलना अन्य वस्तु से की जाती है अर्थात् उपमेय।

२. जिस वस्तु के साथ वर्ण्य-वस्तु की तुलना की जाए अर्थात् उपमान।

३. दोनों के बीच साधारण रूप से रहने वाला धर्म जिसे साधारण धर्म कहते हैं और

४. उपमेय उपमान के बीच सादृश्य वाचक शब्द।

इन चार तत्त्वों—उपमेय, उपमान, साधारणधर्म तथा उपमावाचक शब्द—से उपमा अलंकार की योजना होती है। जहां ये चारों तत्त्व उपस्थित रहते हैं वह पूर्णोपमा तथा एक दो या तीन लुप्त होने पर लुप्तोपमा होती है।

उपमानों का विवेचन

श्रीमद्भागत की स्तुतियों में व्यासर्षि ने अनेक प्रकार की उपमाओं का प्रयोग किया है, जिससे काव्य-सौन्दर्य में वृद्धि हो जाती है। कवि अपने कल्पना क्षेत्र को विराट् बनाने के लिए सम्पूर्ण विश्व से उपमानों का चयन करता है। भागवतकार के उपमान प्रत्यक्ष जगत् तक ही सीमित नहीं बल्कि परोक्ष तथा अन्तर्जगत् से भी संग्रहित हैं। अग्निस्रोत मूलक, आकाशस्रोत मूलक, काष्ठादिस्रोत मूलक, ग्रहणक्षत्र आदि स्रोत मूलक, गृह एवं गृहोपकरण से सम्बन्धित, जल से सम्बन्धित, दर्शन-शास्त्र, दिव्य पदार्थ एवं धातु-खनिज स्रोत मूलक, नर-नारी, ऋषि-मुनि, कला-कलाकार, बालक, विभिन्न प्रकार के नर वर्ग, पर्वत, पशु एवं तिर्यञ्च जगत्, भाववाचक स्रोत, मेघविद्युत् आदि अनेक स्रोतों से उपमानों का ग्रहण कर भागवतकार ने विभिन्न प्रकार के उपमाओं का नियोजन किया है।

---

१. भामह, काव्यालंकार २.३०

२. दण्डी, काव्यादर्श २.२४

३. मम्मट, काव्यप्रकाश १०.१२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्तुतियों में उपमाओं का अद्भुत सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है। कुन्ती कृत भगवत्स्तुति में कुन्ती कहती है—

केचिदाहुरजं जातं पुण्यश्लोकस्य कीर्तये।
यदोः प्रियस्यान्ववाये मलयस्येव चन्दनम् ॥[1]

जैसे मलयाचल की कीर्त्ति का विस्तार करने के लिए उसमें चन्दन प्रकट होता है, वैसे ही अपने प्रिय भक्त पुण्यश्लोक राजा यदु की कीर्त्ति का विस्तार करने के लिए ही आपने उनके वंश में अवतार लिया—यहां पूर्णोपमा है। राजा यदु की उपमा मलयाचल से तथा भगवान् की उपमा चन्दन से दी गई है। "इव" उपमा वाचक शब्द है मलयाचल पर्वत स्थिरता, धीरता, शैत्यता एवं पावनत्व आदि गुणों को धारण कर सदा मस्तक ऊंचा किए रहता है। यदु भी धीर, गम्भीर एवं उन्नत मस्तक वाले राजा हैं। चन्दन अपनी पवित्रता के लिए प्रसिद्ध है। शैत्य और पावनत्व के कारण वह सबके द्वारा मस्तक पर धारण किया जाता है। भगवान् कृष्ण भी इन्हीं गुणों से युक्त हैं इसलिए उपमेय-उपमान में सादृश्य के आधार पर सम्बन्ध स्थापित किया गया है।

त्वयि मेऽनन्यविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत्।
रतिमुद्वहतादद्धा गङ्गेवौघमुदन्वति ॥[2]

हे कृष्ण! जैसे गंगा की अखण्ड धारा समुद्र में गिरती रहती है, वैसी ही मेरी बुद्धि किसी दूसरी ओर न जाकर आपसे ही निरन्तर प्रेम करती रहे। यहां पर कृष्ण की उपमा सागर से तथा बुद्धि की उपमा गंगा की अखण्ड धारा दी गई है।

लोक में अग्नि की अधिक महत्ता है। वह तेज, प्रकाश, दाहकता-शक्ति, तेजस्विता और भस्मसात् करने की शक्ति से युक्त बताया गया है। श्रीमद्भागवत में अग्नि एवं उसके पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग उपमान के रूप में बहुशः किया गया है।

एष देव दितेर्गर्भ ओजः काश्यपमर्पितम्।
दिशस्तिमिरयन् सर्वा वर्धतेऽग्निरिवैधसि ॥[3]

देवतालोग कहते हैं—देव! आग जिस प्रकार ईंधन में पकड़कर बढ़ती रहती है उसी प्रकार कश्यप जी के वीर्य से स्थापित हुआ यह दिति का गर्भ सारी दिशाओं को अन्धकारमय करता हुआ बढ़ रहा है। यहां

---

१. श्रीमद्भागवत १।८।३२
२. तत्रैव १.८.४२
३. तत्रैव ३.१५.१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कश्यपजी के तेज की उपमा आग से तथा दिति के गर्भ की उपमा काष्ठ से दी गई है।

स्वकृतविचित्रयोनिषु विशन्निव हेतुतया
तरतमतश्चकास्स्यनलवत् स्वकृतानुकृतिः ॥[1]

जैसे अग्नि छोटी बड़ी लकड़ियों और कर्मों के अनुसार प्रचुर अथवा अल्प परिणाम में या उत्तम अधम रूप में प्रतीत होती है उसी प्रकार हे प्रभो! आप अपने द्वारा बनाई, ऊंच-नीच सभी योनियों में कहीं उत्तम, कहीं मध्यम कहीं अधम रूप में प्रतीत होते हैं। "इस श्लोक में भगवान् की उपमा अग्नि से तथा विभिन्न प्रकार की योनियों की उपमा लकड़ियों से दी गई है।

श्रीमद्भागवतकार उपमानों का ग्रहण सिंहादि पशुयोनि के जीवों से भी करते हैं। भीष्मस्तवराज का एक श्लोक—

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः।
धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गु हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः ॥[2]

अर्थात् मैंने प्रतिज्ञा कर ली थी कि आपको शस्त्र ग्रहण कराकर ही छोड़ूंगा, उसे सत्य एवं ऊंची करने के लिए अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर जैसे सिंह हाथी को मारने के लिए टूट पड़ता है वैसे ही रथ का पहिया लेकर भगवन् मुझ पर झपट पड़े। यहां भगवान् श्रीकृष्ण की उपमा सिंह से, तथा भीष्म की उपमा हाथी से दी गई है।

श्रीमद्भागवत में प्रकृति जगत् स्रोतमूलक एवं ग्रहनक्षत्रादिस्रोत मूलक उपमान भी बहुशः प्राप्त होते हैं। सूर्य विषयक उपमान श्रीभीष्मराजस्तव का सौन्दर्य और बढ़ा देता है—

तमिमहमजं शरीरभाजां हृदि हृदिधिष्ठितमात्मकल्पितानाम्।
प्रतिदृशमिव नैकधार्कमेकं समधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः ॥[3]

जैसे एक ही सूर्य अनेक आंखों से अनेक रूपों में दिखाई पड़ता है, वैसे ही अजन्मा भगवान् श्रीकृष्ण अपने ही द्वारा रचित अनेक शरीरधारियों के हृदय में अनेक रूप से जान पड़ते हैं, वास्तव में वे एक और सबके हृदय में विराजमान हैं। उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण को मैं भेदभ्रम रहित होकर प्राप्त हो गया हूं। यहां पर भगवान् श्रीकृष्ण की उपमा सूर्य से दी गई है।

जब भगवान् श्रीकृष्ण द्वारका से चले जाते हैं, तब द्वारका वासियों की

---

१. श्रीमद्भागवत १०.८७.१९
२. तत्रैव १.९.३७
३. तत्रैव १.९.४२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वैसी ही दशा हो जाती है जैसी दशा सूर्य के बिना आंखों की—

तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेद् रविं विनाक्ष्णोरिव नस्तवाच्युत ॥[1]

खाद्यान्न स्रोतमूलक उपमान की छटा अवलोकनीय है। चित्रकेतु कहता है—हे प्रभो ! आपके प्रति सकाम भावना से की हुई भक्ति अन्यान्य कर्मों के समान जन्म-मृत्यु रूप फल देने वाली नहीं होती है—जैसे भुने हुए बीजों से अंकुर नहीं निकलते—

कामधियस्त्वयि रचिता न परम रोहन्ति यथा करम्भबीजानि ।
ज्ञानात्मन्यगुणमये गुणगणतोऽस्यद्वन्द्वजालानि ।[2]

यहां सकाम भागवतभक्ति की उपमा भुने हुए बीजों से दी गई है।

बाल्य जीवों से भी भागवतकार ने सुन्दर-सुन्दर उपमानों का ग्रहण किया है। महाप्रास्थानिक वेला में वृत्रासुर द्वारा की गई स्तुति का एक श्लोक—

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतरा क्षुधार्ताः ।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥[3]

जैसे पक्षियों के पंखहीन बच्चे अपने मां की बाट जोहते हैं, भूखे बछड़े अपनी मां का दूध पीने के लिए आतुर रहते हैं और जैसे वियोगिनी पत्नी अपने प्रवासी पति से मिलने के लिए उत्कण्ठित रहती है, वैसे ही कमलनयन! आपके दर्शन के लिए मेरा मन छटपटा रहा है।

यह श्लोक अद्भुत सौन्दर्य से समन्वित है। इस प्रकार भागवतकार ने विभिन्न स्रोतों से उपमानों को ग्रहण कर भाषा को खूब सजाया है। स्तुतियों में उपमाओं का कमनीय सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है।

उत्प्रेक्षा

भारतीय साहित्य शास्त्र में उत्प्रेक्षा को उपमा, रूपक आदि की तरह महत्त्वपूर्ण अलंकार माना गया है। भामह से लेकर आज तक के सभी आचार्यों ने सादृश्यमूलक अलंकारों में उत्प्रेक्षा का महत्त्व स्वीकार किया है। कुन्तक ने उत्प्रेक्षा को सार्वतिक रूप में शोभातिशायी स्वीकार किया है।[4] केशवमिश्र ने उसे "अलंकार-सर्वस्व" कहकर अलंकारों में शीर्षस्थ माना है।[5] कल्पनाशील कवि भावों को चमत्कृत और प्रेषणीय बनाने के हेतु उत्प्रेक्षालंकार का प्रयोग करता है। उत्प्रेक्षा का अर्थ है उत्कृष्ट रूप से की गई

१. श्रीमद्भागवत १.११.९
२. तत्रैव ६.१६.३९
३. कुन्तक, वक्रोक्ति जीवितम्, पृ० ४२९
४. केशवमिश्र, अलंकार शेखर, पृ० ३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कल्पना। उत्प्रेक्षालंकार वह है जहां हम उपमेय की उपमान के साथ तादात्म्य की संभावना करते हैं।[1] "मन्ये, शङ्के ध्रुवं, प्रायः, नूनम्" इत्यादि उत्प्रेक्षा वाचक शब्द हैं—

मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादयः।
उत्प्रेक्षा व्यंज्यते शब्दैः इव शब्दोऽपि तादृशः॥[2]

उत्प्रेक्षा में एक पदार्थ में अन्य पदार्थ की सम्भावना की जाती है। यह सम्भावना प्रायः अतिशयार्थ या उत्कर्ष की सिद्धि के लिए की जाती है। यह उपमान एवं उपमेय के सम्बन्ध की कल्पना के कारण उत्प्रेक्षा सादृश्य-मूलक भी है और सम्भावना का प्रयोजन अतिशय या उत्कर्ष साधन होने के कारण अतिशयमूलक भी है।

भागवतकार ने भक्ति, दर्शन एवं ज्ञान सम्बन्धी तथ्यों को उत्प्रेक्षा से पाठकों के माध्यम तक पहुंचाने का श्लाघनीय प्रयास किया है। उत्प्रेक्षा अतिशयोक्ति आदि की अपेक्षा भाव व्यंजना में अधिक साधिका होती है। उत्प्रेक्षा में अध्यवसान साध्य या सम्भावना के रूप में रहता है। इसमें अन्तर्वेदना की व्यंजना प्रधान होती है। श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में उत्प्रेक्षाओं का सौन्दर्य अद्भुत है। प्रत्येक स्तुति में भक्त अपनी अन्तःव्यथा को उत्प्रेक्षा के माध्यम से प्रभु तक पहुंचाने में समर्थ होता है। तो आइए भागवतकार के उत्प्रेक्षा सौन्दर्य का रसास्वादन करें। स्तुति के समय कुन्ती प्रभु से निवेदित करती है—

मन्ये त्वां कालमीशानमनादिनिधनं विभुम्।
समं चरन्तं सर्वत्र भूतानां यन्मिथः कलिः॥[3]

"मैं आपको अनादि, अनन्त, सर्वव्यापक, सबके नियन्ता कालरूप परमेश्वर समझती हूं। संसार में समस्त प्राणी आपक में टकराकर विषमता के कारण परस्पर विरुद्ध हो रहे हैं, परन्तु आप सबमें समान रूप से विचर रहे हैं। "यहां कुन्ती श्रीकृष्ण में सर्वव्यापकत्व आदि गुणों की सम्भावना करती है। उपरोक्त श्लोक में "मन्ये" क्रिया पद के प्रयोग से उत्प्रेक्षा अलंकार है।

स एव स्वप्रकृत्येदं सृष्ट्वाग्रे त्रिगुणात्मकम्।
तदनु त्वं ह्यप्रविष्टः प्रविष्ट इव भाव्यसे॥[4]

भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म के बाद वसुदेवजी कारागार में स्तुति कर रहे हैं—"आपही सर्ग के आदि में अपनी प्रकृति से इस त्रिगुणमय जगत् की

१. काव्यप्रकाश १०.१३७
२. काव्यादर्श २.८
३. श्रीमद्भागवत १.८.२८
४. तत्रैव १०.३.१४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सृष्टि करते हैं, फिर उसमें प्रविष्ट न होने पर भी आप प्रविष्ट की तरह जान पड़ते हैं।" यहां पर सांसारिक लोगों की दृष्टि में भगवान् अप्रविष्ट होते हुए भी प्रविष्ट के रूप में सम्भावित होते हैं। इस दार्शनिक तथ्य को उत्प्रेक्षा के माध्यम से बड़ा सुन्दर ढंग से उजागर किया गया है।

जब सृष्टि प्रक्रिया होने लगती है, प्रभु संसार के विभिन्न पदार्थों का निर्माण करने लगते हैं, तब ऐसा लगता है कि मानो प्रभु भी अनुप्रविष्ट हो गए हैं, परन्तु सच्ची बात तो यह है कि वे किसी भी पदार्थ में प्रवेश नहीं करते बल्कि पहले से ही विद्यमान रहते हैं। इस सर्वव्यापकता का प्रतिपादन अधोविन्यस्त उत्प्रेक्षालंकार में किया गया है—

संनिपत्य समुत्पाद्य दृश्यन्तेऽनुगता इव।
प्रागेव विद्यमानत्वान्न तेषामिह सम्भवः॥[1]

एक उत्प्रेक्षा द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण के अतिशोभन सौन्दर्य का दर्शन कीजिए—

स उच्चकाशे धवलोदरो दरोऽप्युरुक्रमस्याधरशोणशोणिमा।
दाध्मायमानः करकञ्जसम्पुटे यथाब्जखण्डे कलहंस उत्स्वनः॥[2]

भगवान् श्रीकृष्ण के रक्तवर्ण के होठों का स्पर्श करके बजता हुआ शंख उनके करकमलों में ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो लाल रंग के कमल पर बैठकर राजहंस उच्चस्वर से गान कर रहा हो। यहां कवि ने भगवान् के हाथों की रक्तकमल से और शंख की राजहंस से उत्प्रेक्षा की है।

भगवान् वाराह की दांतों के नोक पर रखी हुई पर्वतादि मण्डित पृथिवी ऐसी सुशोभित हो रही थी मानो वन में से निकलकर बाहर आये हुए किसी गजराज के दांतों पर पत्रयुक्त कमलिनी हो—

दंष्ट्राग्रकोट्या भगवंस्त्वया धृता विराजते भूधर भूः सभूधरा।
यथा वनान्निःसरतो दता धृता मतङ्गजेन्द्रस्य सपत्रपद्मिनी॥[3]

इसी स्तुति के एक अन्य उत्प्रेक्षा के द्वारा भगवान् वाराह का सौंदर्य देखिए—

त्रयीमयं रूपमिदं च सौकरं भूमण्डलेनाथ दता धृतेन ते।
चकास्ति शृङ्गोढघनेन भूयसा कुलाचलेन्द्रस्य यथैव विभ्रमः॥[4]

दांतों पर रखे हुए भूमण्डल के सहित भगवान् वाराह का वेदमयविग्रह

१. श्रीमद्भागवत १०.३.१६
२. तत्रैव १.११.२
३. तत्रैव ३.१३.४०
४. तत्रैव ३.१३.४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो शिखरों पर छायी हुई मेघमाला से कुलपर्वत की शोभा हो।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में अनेक भावपूर्ण उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग किया गया है। इससे न केवल भाषा-शैली में चारुता आती है बल्कि भावाभिव्यंजना में अद्भुत सम्प्रेषणीयता का संचार होता है। अनेक स्थलों पर मनोरम प्रसंगों को उत्प्रेक्षाओं के द्वारा व्यक्त किया गया है।

काव्यलिङ्गालंकार

काव्यलिङ्गालंकार कार्य-कारण सम्बन्ध पर आधारित अलंकार है। सर्वप्रथम उद्भट ने स्वतन्त्र रूप से काव्यलिंग का स्वरूप विवेचन किया था। उनके अनुसार एक वस्तु से अन्य का स्मरण या अनुभव उत्पन्न कराया जाय उसे काव्यलिंग कहते हैं।[1] "काव्याभिमतं लिङ्गम्" ही काव्यलिंग है। यहां लिंग का अर्थ हेतु है। इस प्रकार कवि द्वारा कल्पित अर्थ के उपपादन के लिए हेतु-कथन ही काव्यलिंग अलंकार है। मम्मट के अनुसार काव्यलिंग अलंकार वह अलंकार है जहां वाक्यार्थ या पदार्थ के रूप में किसी अनुपपन्न अर्थ का उपपादक हेतु कहा जाता है।[2] यह हेतु-कथन तर्कशास्त्र से नितांत भिन्न है और चमत्कारोत्पादक होता है। काव्यलिंग को ही हेत्वलंकार तथा काव्य हेतु भी कहा जाता है। रुय्यक, विश्वनाथ आदि आचार्य भी मम्मट मत के ही पोषक हैं। जहां हेतु सम्पूर्ण वाक्यार्थ से अथवा पद के अर्थ से बोध कराया जाए वहां काव्यलिंग अलंकार होता है।[3]

यह अलंकार तर्क एवं न्यायमूलक है। श्रीमद्भागवतकार ने धर्म, दर्शन, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति आदि के तथ्यों को काव्यमयी भाषा में आस्तिक जनता को समझाने के लिए काव्यलिंग अलंकार का प्रयोग किया है। इस अलंकार के प्रयोग से श्रीमद्भागवत की भाषा में चारुता का समावेश हो जाता है। स्तुतियों में भक्त अपने प्रियतम के गुणों का गायन करते समय इस अलंकार का प्रयोग करता है। श्रीलगोस्वामी शुकदेव कृत भगवत्स्तुति का एक श्लोक द्रष्टव्य है—

प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्वताजस्य सतीं स्मृतिं हृदि।
स्वलक्षणा प्रादुरभूत् किलास्यतः स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम्॥[4]

यहां पर ब्रह्मा के हृदय में स्मृति जागरण रूप कार्य के लिए, ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती को भगवान् के द्वारा प्रेरित किया जाना रूप कारण

१. उद्भट, काव्यलंकारसार ६.१४
२. मम्मट, काव्य प्रकाश १०.११४
३. रुय्यक, अलंकार सूत्र ५७ तथा विश्वनाथ, साहित्यदर्पण १०.८१
४. श्रीमद्भागवत २.४.२२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का वर्णन है। अतएव काव्यलिंग अलंकार है।

ब्रह्माकृत भगवत्स्तुति में तो काव्यलिंग अलंकार की मानो माला ही बन गई है। प्रथम से लेकर लगातार तीन श्लोकों में काव्यलिंग का प्रयोग हुआ है।

ज्ञातोऽसि मेऽद्य सुचिरान्ननु देहभाजां न ज्ञायते भगवतो गतिरित्यवद्यम्।
नान्यत्त्वदस्ति भगवन्नपि तन्न शुद्धं मायागुणव्यतिकराद्यदुरुविभासि॥[1]

प्रभो आज बहुत समय के बाद मैं आपको जान सका हूं। अहो कैसा दुर्भाग्य है कि देहधारी जीव आपके स्वरूप को नहीं जान पाते। भगवन्! आपसे अन्य और कोई वस्तु नहीं है। जो वस्तु प्रतीत होती है वह भी स्वरूपतः सत्य नहीं है क्योंकि माया के गुणों को क्षुभित होने के कारण केवल आपही अनेक रूपों में प्रतीत हो रहे हैं। यहां माया गुण का क्षुभित होना अनेक रूप में भगवत्प्रतीति का कारण बताया गया है। माया के कारण ही भगवान्, जो वस्तुतः एक, अखण्ड हैं, अनेक रूपों में प्रतीत होते हैं।

तभी तक संसारिक पाप-ताप जीव विशेष को सताते रहते हैं जब तक वह भगवत्चरणचंचरीक नहीं हो जाता। यहां पर भगवत् शरणागति सारे पातको की विनाशिका बताई गई है। देखें—

तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः॥[2]

इस प्रकार काव्यलिंगालंकार के प्रयोग से भाषा की श्रीवृद्धि हुई।

रूपकालंकार

"नाट्यशास्त्र" में उपलब्ध अलंकारों में रूपक का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्वरूपगत चारुता तथा कवि परम्परा में प्राप्त प्रतिष्ठा की दृष्टि से उपमा के बाद रूपक का ही स्थान आता है। "रूपयति एकतां नयतीति रूपकम्" अर्थात् भिन्न-भिन्न प्रकट होने वाले उपमान तथा उपमेय में अभेदारोप रूपक कहलाता है। भामह[3] के अनुसार जहां प्रस्तुत और अप्रस्तुत में गुण की समता देखकर अप्रस्तुत के साथ प्रस्तुत तत्त्व निरूपित किया जाय अर्थात् प्रस्तुत पर अप्रस्तुत का आरोप किया जाय वहां रूपक अलंकार होता है।[4] दण्डी का रूपक लक्षण उपमालक्षण सापेक्ष है। जिस उपमा में उपमान और उपमेय का भेद तिरोहित हो जाय वह उपमा अलंकार ही रूपक है।[4] मम्मट, रुय्यक आदि आचार्यों ने दण्डी के रूपक लक्षण को ही स्वीकारा है।

---

१. श्रीमद्भागवत ३.९.१
२. तत्रैव ३.९.६
३. भामह—अभिनव भारती, पृ० ३२५
४. दण्डी—काव्यादर्श २.६६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मम्मट के अनुसार उपमान तथा उपमेय का अभेद आरोपित या कल्पित हो वह रूपक अलंकार कहलाता है।[1] उपमा में उपमान-उपमेय में साधर्म्य का कथन किया जाता है पर रूपक में उपमान-उपमेय के साधर्म्य के आधार पर अभेदारोप किया जाता है।

श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में रूपक अलंकार की योजना सौन्दर्य की अभिव्यंजना, मनोभावों की स्पष्टाभिव्यक्ति, रसास्वादन की तीव्रता, भावों की प्रेषणीयता तथा कल्पित भाव साहचर्य का संकेत आदि के सिद्धि हेतु की गई है। भक्त हृदय की पवित्र भावनाओं को प्रभु के चरणों में समर्पण के लिए श्रीमद्भागवतीय स्तुतियों में अनेक स्थलों पर रूपक का कमनीय सौंदर्य अवलोकनीय है-

ये तु त्वदीयचरणाम्बुजकोशगन्धं, जिघ्रन्ति कर्णविवरैःश्रुतिवातनीतम्।
भक्त्या गृहीतचरणः परया च तेषां,
नापैषि नाथ हृदयाम्बुरुहात्स्वपुंसाम्॥[2]

मेरे स्वामी! जो लोग वेदरूपी वायु से लायी हुई आपके चरण रूप कमलकोश की गन्ध को अपने कर्णपुटों से ग्रहण करते हैं, उन अपने भक्तजनों के हृदय-कमल से आप कभी दूर नहीं होते क्योंकि पराभक्ति रूप डोरी से आपके पादपद्मों को बांध लेते हैं। उपरोक्त श्लोक में वेद में वायु का, चरण में कमलकोश के गन्ध का, हृदय में कमल का तथा पराभक्ति में डोरी का आरोप किया गया है।

एक रूपक के द्वारा भगवान् सूकर का अद्भुत सौन्दर्य अवलोकनीय है।

रूपं तवैतन्नु दुष्टकृतात्मनां दुर्दर्शनं देव यदध्वरात्मकम्।
छन्दांसि यस्य त्वचि बर्हिरोम स्वाज्यं दृशि त्वङ्घ्रिषु चातुहोत्रम्॥[3]

देव! दुराचारियों को आपके इस शरीर का दर्शन होना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि यह यज्ञ रूप है। इसकी त्वचा में गायत्री आदि छन्द, रोमावली में कुश, नेत्रों में घृत तथा चारों चरणों में होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा इन चारों ऋत्विजों के कर्म हैं। इस श्लोक में भगवान् सूकर के देह में यज्ञ का आरोप किया गया है। त्वचा में गायत्री आदि छन्दों का, रोमावली में कुश का, नेत्रों में घृत का तथा चार पैरों में चारों ऋत्विजों के कर्मों का वर्णन किया गया है। इसी जगह दो अन्य श्लोकों में भगवान् सूकर का यज्ञ रूप में प्रतिपादन किया गया है।

---

१. मम्मट. काव्यप्रकाश १०.१३९
२. श्रीमद्भागवत ३.९.५
३. तत्रैव ३.१३.३५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दसवें स्कन्ध के द्वितीय अध्यायान्तर्गत कंश कारागार में देवों द्वारा कृत गर्भस्थ भगवान् की स्तुति में संसार को वृक्ष के रूप में आरोपित कर उसके स्वरूप का वर्णन किया गया है

एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूलश्चतूरसः पञ्चविधः षडात्मा ।
सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः ॥[1]

यह संसार एक सनातन वृक्ष है । इस वृक्ष का आश्रय है एक प्रकृति । इसके दो फल हैं—सुख और दुःख, तीन जड़े हैं—सत्त्व, रज और तम, चार रस हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । इसके जानने के पांच प्रकार हैं—श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और नासिका, इसके छः स्वभाव हैं—पैदा होना, रहना, बढ़ना, बदलना, घटना और नष्ट हो जाना । इस वृक्ष की छाल हैं सात धातुएं—रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र । आठ शाखाएं हैं—पांच महाभूत, मन, बुद्धि और अहंकार । इसमें मुखादि नवो द्वार खोड़र हैं । प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त एवं धनंजय ये दस प्राण ही दस पत्ते हैं । इस संसार रूप वृक्ष पर दो पक्षी हैं एक जीव और दूसरा ईश्वर ।

इस प्रकार संसार का वृक्ष रूप में अभेद आरोप एकादश स्कन्ध में भी किया गया है ।

यथासंख्य अलंकार

यथासंख्य शब्द गुम्फ के विशेष क्रम की धारणा पर आधारित अलंकार है । आचार्य भामह के अनुसार जहां विभिन्न धर्म वाले पूर्व निर्दिष्ट अनेक पदार्थों का उसी क्रम से निर्देश हो तो वहां यथासंख्य अलंकार होता है ।[2] इसमें एक बार अनेक अर्थों का निर्देश कर पुनः उन्हीं अर्थों का क्रमिक अनुनिर्देश होता है । दण्डी के अनुसार उद्दिष्ट अर्थात् पूर्व उक्त पदार्थों का उसी क्रम से पीछे कहे हुए अर्थों के साथ अन्वय यथासंख्य, संख्यान या क्रम अलंकार है ।[3] मम्मट, रूय्यक, विश्वनाथ आदि आचार्य भामह की तरह क्रम से पूर्वकथित वस्तुओं के साथ उसी क्रम से वस्तुओं का अन्वय दिखाया जाना यथासंख्य का लक्षण मानते हैं । यह अलंकार उस संदर्भ में आता है जहां प्रतिपादित पदार्थों का उसी क्रम से अन्वय होता है ।[4]

भागवतकार ने दार्शनिक तथ्यों को यथासंख्य अलंकार के द्वारा सर्व-जनसंवेद्य बनाया है—

१. श्रीमद्भागवत १०.२.२७
२. भामह, काव्यालंकार २.८९
३. दण्डी, काव्यादर्श २.२७६
४. मम्मट, काव्य प्रकाश १०.१०८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे समुद्भवस्थाननिरोधलीलया ।
गृहीतशक्तित्रितयाय देहिना मन्तर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने ॥[1]

उन पुरुषोत्तम भगवान् के चरण कमलों में कोटि-कोटि प्रणाम है जो संसार की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय की लीला करने के लिए सत्त्व, रज तथा तमोगुण रूप तीन शक्तियों को स्वीकार कर ब्रह्मा, विष्णु शंकर रूप धारण करते हैं, जो समस्त चर-अचर प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से विराजमान हैं, जिनका स्वरूप और उसकी उपलब्धि का मार्ग बुद्धि के विषय नहीं हैं जो स्वयं अनन्त हैं ।" यहां सृष्टि के लिए रजोगुण, स्थिति के लिए सत्त्वगुण तथा प्रलय के लिए तमोगुण प्रधान क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश रूप तीन शक्तियों का प्रयोग किया गया है ।

स एष आत्मात्मवतामधीश्वरस्त्रयीमयो धर्ममयस्तपोमयः ।
गतव्यलीकैरजशङ्करादिभिः वितर्क्यलिङ्गो भगवान् प्रसीदताम् ॥[2]

वे ही भगवान् ज्ञानियों के आत्मा हैं, कर्मकाण्डियों के लिए वेदमूर्ति, धार्मिकों के लिए धर्ममूर्ति और तपस्वियों के लिए तपःस्वरूप हैं । ब्रह्मादि बड़े-बड़े देवता भी उनके स्वरूप का चिंतन करते और आश्चर्यचकित होकर देखते रह जाते हैं । वे मुझ पर अपने अनुग्रह-प्रसाद की वर्षा करें ।

इसमें ज्ञानियों के लिए आत्मा, कर्मकांडियों के लिए वेदमूर्ति धार्मिकों के लिए धर्ममूर्ति और तपस्वियों के लिए तपःमूर्ति का क्रमशः प्रयोग किया है ।

भागवतकार ने अनेक स्थलों पर इस अलंकार का प्रयोग किया है ।

परिकर अलंकार

परिकर का स्वतन्त्र अलंकार के रूप में स्वरूप विवेचन सर्वप्रथम रूद्रट ने किया है । वस्तु का विशेष अभिप्राय से युक्त विशेषणों से विशेषित किया जाय वहां परिकर अलंकार होता है । वस्तु के चार भेद—द्रव्य, गुण, क्रिया तथा जाति के आधार पर परिकर के भी चार भेद होते हैं ।[3] कुन्तक उसे एक स्वतन्त्र अलंकार न मानकर उत्तम काव्य के प्राणभूत तत्त्व मानते हैं, क्योंकि विशेषणों का वक्रतापूर्ण प्रयोग क्रिया तथा कारक का लावण्य प्रकट करता है । भोज ने सविस्तार परिकर का सभेद निरूपण किया है । टीकाकार जगद्धर ने साभिप्राय विशेषण के साथ विशेष्य के कथन को भोज सम्मत

१. श्रीमद्भागवत २.४.१२
२. तत्रैव २.४.१९
३. रूद्रट, काव्यालंकार ७.७२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिकर लक्षण माना है।[1] मम्मट, रुय्यक, विश्वनाथ, अप्पयदीक्षित, जगन्नाथ आदि सभी परवर्ती आचार्य साभिप्राय विशेषण के साथ विशेष्य के कथन को परिकर का लक्षण मानने में एक मत हैं। साभिप्राय विशेषणों का जहां प्रयोग किया जाय वहां परिकर अलंकार होता है।[2]

भागवतकार ने अनेक स्थानों पर साभिप्राय विशेषणों के साथ विशेष्य का कथन कर चमत्कार उत्पन्न किया है। प्रत्येक स्तुति में साभिप्राय विशेषण सहित विशेष्य का प्रयोग परिलक्षित होता है। भक्त जब भक्तिभावित चित्त से प्रभु की स्तुति करने लगता है तब वह अपने प्रभु के अनेक उत्कृष्ट गुणों का वर्णन करता है। हृदय में जब प्रभु भक्ति का संचार होता है तब चित्त विकास होता है और उसी विकसित अवस्था में भक्त के पावित हृदय से अनायास ही साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग होने लगता है। कुन्ती जब उपकृत होकर स्तुति करने लगती है तो वह कृष्ण के लिए अनेक साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग करती है। प्रथमावस्था में कुन्ती कृष्ण को लौकिक सम्बन्ध विषयक विशेषणों से विभूषित करती है—

कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च।
नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः॥[3]

यहां भगवान् श्रीकृष्ण (विशेष्य) के लिए वासुदेव देवकीनन्दन, नन्दगोपकुमार तथा गोविन्द आदि साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग किया गया है। वासुदेव इस अभिप्राय से कहती है कि वे वसुदेव के पुत्र हैं। देवकी के पुत्र होने से देवकीनन्दन, नन्दगोप का पुत्र होने से नन्दगोपकुमार तथा इन्द्रियों के स्वामी होने के कारण गोविन्द पद का प्रयोग किया गया है।

नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने।
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये॥[4]

उनके नाभि से ब्रह्मा का जन्मस्थान सुन्दर कमल प्रकट हुआ इसलिए उन्हें पङ्कजनाभ, कमलों की माला धारण करते हैं इसलिए पंकजमालिन्, उनके नेत्र कमल के समान विशाल और कोमल हैं इसलिए पङ्कजनेत्र, उनके चरणों में कमल का चिह्न है इसलिए पङ्कजाङ्घ्रि आदि साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग किया गया है।

नमोऽकिंचनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये।
आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतये नमः॥[5]

---

१. सरस्वतीकण्ठाभरण ४.२३५ पर श्री जगद्धर टीका
२. काव्यप्रकाश १०.११७
३. श्रीमद्भागवत १.८.२१
४. तत्रैव १.८.२२
५. तत्रैव १.८.२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्धनों के परम धन होने से अकिंचनवित्त, आत्मा में रमण करने के कारण आत्माराम विशेषण का प्रयोग किया गया है। इसी स्तुति के ३२ वें श्लोक में "पुण्यलोक" विशेषण राजा यदु के लिए प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि राजा यदु पवित्र कीर्ति से युक्त थे।

श्रीशुककृत स्तुति में परिकर का सौन्दर्य दर्शनीय है—

श्रियःपतिर्यज्ञपतिः प्रजापतिर्धियां पतिर्लोकपतिर्धरापतिः।
पतिर्गतिश्चान्धकवृष्णिसात्वतां प्रसीदतां मे भगवान् सतां पतिः॥[1]

समस्त संपत्तियों की स्वामिनी लक्ष्मीजी के पति होने से "श्रियःपति" यज्ञ का भोक्ता एवं फलदाता होने से "यज्ञपति", प्रजा के रक्षक होने से "लोकपति" एवं "धरापति" आदि साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग भगवान् विष्णु के लिए किया गया है। षष्ठ स्कन्ध के नारायणकवच का सम्पूर्ण श्लोक परिकर अलंकार का उत्कृष्ट उदाहरण है। जब गजेन्द्र संकट में फंसकर भगवान् की स्तुति करने लगता है तो वह भगवान् के अनेक साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग करता है

ॐ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम्।
पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि॥[2]

यहां पर पुरुष, आदिबीज, तथा परेश इन तीन साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग प्रभु के लिए किया गया है। इसी स्तुति में भगवान् के लिए ब्रह्म, अनन्त, अरूप, आत्मप्रदीप, साक्षी, विदूर, कैवल्यनाथ, शान्त, ज्ञानघन, क्षेत्रज्ञ, सर्वाध्यक्ष, स्वयंप्रकाश, अपवर्ग एवं ज्ञानात्मन् आदि साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग किया गया है। दसवें स्कन्ध के गर्भस्तुति में भगवान् को सत्यव्रतादि विशेषणों से विभूषित किया गया है।

इस प्रकार भागवतकार ने परिकर का प्रयोग भगवान् के गुणों के वर्णनार्थ किया है। श्रीमद्भागवत की प्रत्येक स्तुति में परिकर अलंकार के उदाहरण मिल जाते हैं।

अर्थापत्ति अलंकार

दर्शन में प्रतिपादित अर्थापत्ति का स्वरूप ही अलंकार के रूप में स्वीकृत है। रुय्यक, विश्वनाथ, अप्पयदीक्षित आदि ने "दण्डापूपन्याय" से अर्थ की सिद्धि में अर्थापत्ति अलंकार माना है[3]। दण्डापूपन्याय का तात्पर्य यह है कि चूहे के द्वारा दण्ड के हरण का कथन होने से दण्ड में लगे अपूप का हरण भी स्वतः प्रमाणित हो जाता है। इसी प्रकार एक अर्थ का कथन जहां

१. श्रीमद्भागवत २.४.२०
२. तत्रैव ८.३.२
३. विश्वनाथ, साहित्यदर्पण १०.८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्य अर्थ को सिद्ध या प्रमाणित कर दे, वहां अर्थापति अलंकार माना जाता है। पंडितराज जगन्नाथ ने "दण्डापूपन्याय" का उल्लेख न कर अर्थापति अलंकार में उसी आशय को प्रतिपादित किया है। किसी अर्थ के कथन से तुल्यन्याय से अन्य अर्थ की प्राप्ति अर्थापत्ति है। स्पष्ट है कि दर्शन की अर्थापत्ति विषयक मान्यता को ही स्वीकार कर आचार्यों ने उसी नाम से काव्यालंकार की कल्पना की है। एक अर्थ से अन्य अर्थ का साधन—दण्डापूप न्याय या तुल्य न्याय से एक के कथन से अन्य अर्थ की सिद्धि—अर्थापत्ति अलंकार है।

भागवतकार ने अनेक स्थलों पर अर्थापत्ति अलंकार का प्रयोग किया है। ऋषिगण भगवान् सूकर की स्तुति करते समय अर्थापत्ति अलंकार द्वारा हृदयस्थ भावों को अभिव्यंजित करते हैं—

कः श्रद्दधीतान्यतमस्तव प्रभो रसां गताया भुव उद्विबर्हणम्।
नविस्मयोऽसौ त्वयि विश्वविस्मये यो मायया इदं ससृजेऽतिविस्मयम्॥[1]

प्रभो! रसातल में डूबी हुई इस पृथिवी को निकालने का साहस आपके सिवा कौन कर सकता था? किन्तु आप तो संपूर्ण आश्चर्यों के आश्रय हैं, आपके लिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। आपने ही तो माया से इस आश्चर्यमय विश्व की रचना की है। यहां पर आपके अतिरिक्त इस पृथिवी को कौन बचा सकता है? अर्थात् कोई नहीं—यहां अर्थापत्ति अलंकार है। "आपको कौन जान सकता? इस अर्थ के द्वारा कोई नहीं इस अन्य अर्थ की सिद्धि की गई है।

गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः।
कोन्विहार्हति विज्ञातुं प्राक्सिद्धं गुणसंवृतः॥[2]

वृत्तियों से ग्रहण किए जाने वाले प्रकृति के गुणों और विकारों के द्वारा आप पकड़ में नहीं आ सकते। स्थूल और सूक्ष्म शरीर के आवरण से ढका हुआ कौन सा पुरुष है जो आपको जान सके? क्योंकि आप तो उन शरीरों के पहले भी विद्यमान थे। यहां कौन आपको जान सकता है? इस अर्थ के द्वारा 'कोई नहीं जान सकता' इस अन्य अर्थ की सिद्धि की गई है।

तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम्।
भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः॥[3]

आप शुद्ध जीवनमुक्त परमहंसों के हृदय में प्रेममयी भक्ति का सृजन करने के लिए अवतीर्ण हुए हैं। फिर हम अल्पबुद्धि स्त्रियां कैसे जान सकती

१. श्रीमद्भागवत ३.१३.४३
२. तत्रैव १०.१०.३२
३. तत्रैव १.८.२०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। यहां कैसे जान सकती हैं, इसके द्वारा 'हम नहीं जाने सकते' इस अन्य अर्थ के प्रतिपादन से अर्थापत्ति अलंकार है।

स्मरणालंकार

मम्मट और रुय्यक के पहले स्मरण या स्मृति की स्वीकृति नहीं मिल पाई थी। स्मृति के स्वरूप तथा कारण पर दर्शन में पहले से विचार हो रहा था। दार्शनिकों ने ज्ञान के स्वरूप का निरूपण करते हुए स्मृतिजन्य ज्ञान प्रत्यभिज्ञा आदि का विशद विवेचन किया था। रुय्यक मम्मट आदि के अनुसार केवल सादृश्यजन्य स्मृति ही स्मरणालंकार है।[1]

गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम तावद् या ते दशाश्रुकलिलाञ्जनसंभ्रमाक्षम्।
वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति॥[2]

जब बचपन में आपने दूध की मटकी फोड़कर यशोदा मैया को खिझा दिया था और उन्होंने बांधने के लिए हाथ में रस्सी ली थी तब आपकी आंखों में आंसू छलक आये थे, काजल कपोलों पर बह चला था, नेत्र चंचल हो रहे थे और भय की भावना से अपने मुख को नीचे की ओर झुका लिया था। आपकी उस दशा का लीलाछवि की ध्यान करके मोहित हो जाती हूं। भला जिससे भय भी भय मानता है उसकी यह दशा!

यहां कुन्ती भगवान् श्रीकृष्ण को अपने सम्बन्धी और रक्षक के रूप में देखकर उनके बाल्य लीलाओं का स्मरण करती है।

भक्तराज भीष्म को महाप्रास्थानिक बेला में उपस्थित श्रीकृष्ण को देखकर महाभारत युद्ध के अन्तर्गत विद्यमान श्रीकृष्ण के अद्भुत सौन्दर्य की स्मृति आने लगती है—

युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्कचलुलितश्रमवार्यलंकृतास्ये।
मम निशितशरैर्विभिद्यमानत्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा॥[3]

जाम्बवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कहते हैं—

यस्येषदुत्कलितरोषकटाक्षमोक्षैः वर्त्मादिशत् क्षुभितनक्रतिमिङ्गिलोऽब्धिः
सेतुः कृतः स्वयश उज्ज्वलिता च लङ्का रक्षःशिरांसि भुवि पेतुरिषुक्षतानि॥[4]

प्रभो मुझे स्मरण है। आपने अपने नेत्रों में तनिक-सा क्रोध भाव लेकर तिरछी दृष्टि से समुद्र की ओर देखा था। उस समय समुद्र के अन्दर रहने वाले बड़े-बड़े नाक (घड़ियाल) और मगरमच्छ क्षुब्ध हो गये थे, और समुद्र ने आपको मार्ग दे दिया था। तब आपने उस पर सेतु बांधकर सुन्दर यश

१. मम्मट, काव्यप्रकाश १०.१९९
२. श्रीमद्भागवत १.८.३१
३. तत्रैव १.९.३४
४. तत्रैव १०.५६.२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की स्थापना की तथा लंका का विध्वंस किया। आपके बाणों से कट-कटकर राक्षसों के सिर पृथिवी पर लोट रहे थे।

इस प्रकार कृष्ण को देखकर जाम्बवान् को अपने स्वामी राम की याद आ जाती है। अवश्य ही आप मेरे राम जी हैं जो श्रीकृष्ण के रूप में आये हैं- यह विश्वास हो जाता है। यह स्मरण अलंकार का सुन्दर उदाहरण है।

उदाहरण अलंकार

जहां "यथा" "तथा" के सम्बन्ध द्वारा औपम्य की विशेषता का वर्णन किया जाता है, उदाहरण अलंकार होता है। श्रीमद्भागवतकार ने इस अलंकार का प्रयोग अनेक स्थलों पर किया है।

यथार्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो निर्यान्ति संयान्त्यसकृत् स्वरोचिषः।
तथा यतोऽयं गुणसम्प्रवाहो बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गाः॥[1]

गजेन्द्र कहता है जैसे धधकती अग्नि से लपटें और प्रकाशमान सूर्य से उनकी किरणें निकलती और लीन होती रहती है, वैसे ही स्वयं प्रकाश परमात्मा से बुद्धि, मन, इन्द्रिय और शरीर जो गुणों के प्रवाह रूप हैं बार-बार प्रकट होते हैं तथा लीन होते हैं।

इस उदाहरण में परमात्मा से उत्पद्यमाना लयमाना सृष्टि की विशेषता का उदाहरण धधकती अग्नि की लपटों से तथा सूर्य के किरणों से दी गई है।

सा देवकी सर्व जगन्निवास निवासभूता नितरां न रेजे।
भोजेन्द्र गेहेऽग्निशिखेव रुद्धा सरस्वती ज्ञान खले यथा सती॥[2]

भगवान् सारे जगत् के निवास स्थान हैं। देवकी उनका भी निवास स्थान बन गयी। परन्तु घड़े आदि के भीतर बंद किए हुए दीपक का और अपनी विद्या दूसरे को न देने वाले ज्ञानखल की श्रेष्ठ विद्या का प्रकाश जैसे चारों ओर नहीं फैलता वैसे ही कंस के कारागर में बंद देवकी की उतनी शोभा नहीं हुई। इस उदाहरण अलंकार में जगन्निवास भगवान् का निवास भूत कंस कारागार में बंद देवकी का उदाहरण घड़े आदि के बंद दीपक और ज्ञानखल की विद्या से दिया गया है।

अर्थान्तरन्यास

जहां सामान्य का विशेष से, विशेष का सामान्य से साधर्म्य या वैधर्म्य भाव समर्थित किया जाये वहां अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है।[3]

---

१. श्रीमद्भागवत ८.३.२३
२. तत्रैव १०.२.१९
३. मम्मट, काव्य प्रकाश १०,१०९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीमद्भागवतकार ने इस अलंकार का प्रयोग अनेक स्थलों पर किया है।

दिष्ट्या संसारचक्रेऽस्मिन् वर्तमानः पुनर्भवः।
उपलब्धो भवानद्य दुर्लभं प्रियदर्शनम्॥[1]

यह भी बड़े आनन्द का विषय है कि आज हम लोगों का मिलना हो गया। अपने प्रेमियों का मिलन भी बड़ा दुर्लभ है। इस संसार का चक्र ही ऐसा है। इसे तो एक प्रकार का पुनर्जन्म ही समझना चाहिए।

इस श्लोक में यह बड़े आनन्द का विषय है कि हम लोगों का मिलन हो गया "इस विशेष वाक्य का" मित्रों का मिलन दुर्लभ होता है—इस सामान्य वाक्य से समर्थन किया गया है।

विनोक्ति

एक के बिना जहां दूसरे के शोभित या अशोभित होने का वर्णन किया जाय वहां विनोक्ति अलंकार माना जाता है।[2] इस अलंकार में यह आवश्यक नहीं है कि "बिना" शब्द का प्रयोग किया ही जाए, पर इतना आवश्यक है कि "बिना" शब्द का अर्थबोध हो।

यर्ह्यम्बुजाक्षापससार भो भवान् कुरून्मधून् वाथ सुहृद्दिदृक्षया।
तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेत् रविं विनाक्ष्णोरिव नस्तवाच्युत॥[3]

द्वारका के लोग भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करते हैं—हे कमलनयन! जब आप अपने बन्धु बान्धवों से मिलने के लिए हस्तिनापुर या मथुरा चले जाते हैं, तब आपके बिना हमारा एक-एक क्षण कोटि-कोटि वर्षों के समान लम्बा हो जाता है। आपके बिना हमारी दशा वैसे हो जाती है जैसे सूर्य के बिना आंखों की।" यह विनोक्ति अलंकार का उत्कृष्ट उदाहरण है।

दीपक

दीपक अलंकार वह है जहां उपमेय और उपमान रूप वस्तुओं के क्रियादि रूप धर्म का एक बार ग्रहण किया जाता है या बहुत सी क्रियाओं के होने पर किसी एक कारक का एक बार ग्रहण किया जाता है।[4]

भूतैर्महद्भिर्यं इमाः पुरो विभुः निर्माय शेते यदमूषु पूरुषः।
भुङ्क्ते गुणान् षोडश षोडशात्मकः सोऽलंङ्कृषीष्ट भगवान् वचांसि मे॥[5]

भगवान् ही पंचमहाभूतों से इस शरीर का निर्माण करके इनमें जीव

---

१. श्रीमद्भागवत १०.५.२४
२. मम्मट, काव्यप्रकाश १०.१७१
३. श्रीमद्भागवत १.११.९
४. मम्मट, काव्यप्रकाश १०.१०३
५. श्रीमद्भागवत २.४.२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूप से शयन करते हैं और पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय और पांच प्राण और एक मन इन सोलह कलाओं से युक्त होकर इनके द्वारा सोलह विषयों का भोग करते हैं, वे सर्वभूतमय भगवान् मेरी वाणी को अपने गुणों से अलंकृत कर दें।

इसमें एक कारक के लिए अनेक क्रियाओं का प्रयोग किया गया है। एक भगवान्, शरीर का निर्माण करते हैं, उसमें जीव रूप से शयन करते हैं तथा जीव रूप में विषयों का उपभोग करते हैं—इस प्रकार यह दीपक का सुन्दर उदाहरण है।

दृष्टान्त

उपमान, उपमेय तथा साधारण धर्म आदि सभी का प्रतिबिम्बन अर्थात् बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव दृष्टान्त में अपेक्षित है। मम्मट ने दृष्टान्त संज्ञा की सार्थकता दो धर्मियों या धर्मों में सादृश्य के कारण होने वाली अभेद बोध में मानी है। बिम्ब प्रतिबिम्बभाव में धर्म तत्त्वतः भिन्न-भिन्न रहते हैं पर सादृश्य के कारण अभिन्न से प्रतीत होते हैं और उनका दो बार उपादान होता है। अन्त या निश्चय दो में अभिन्नता की निश्चयात्मक प्रतीति के दृष्ट होने के कारण इसे दृष्टान्त कहते हैं। उदाहरण[1]

न ह्यायमयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्युतत्कालेन दर्शनादेव साधवः॥

केवल जलमय तीर्थ ही तीर्थ नहीं कहलाते और केवल मिट्टी या पत्थर की प्रतिमाएं ही देवता नहीं होती, संत पुरुष ही वास्तव में तीर्थ और देवता हैं क्योंकि तीर्थ और देवता उनका बहुत समय तक सेवन किया जाय तब वे पवित्र करते हैं परन्तु संत पुरुष तो दर्शन मात्र से ही कृतार्थ कर देते हैं। उक्त उदाहरण में जलमय तीर्थ और पाषाण प्रतिमाएं सन्त पुरुषों के समान तीर्थमय प्रतिपादित हैं। यह उपमेय और उपमान का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव है अतएव यहां दृष्टान्त अलंकार है।

उदात्त

मम्मट, रुय्यक और विश्वनाथ आदि आचार्य किसी वस्तु की समृद्धि का वर्णन तथा महान् व्यक्ति के चरित्र का उपलक्षण या अन्य प्रस्तुत वस्तु का अङ्ग होना आदि ये दो रूप उदात्त के मानते हैं।[2]

श्रीमद्भागवतकार ने अनेक स्थलों पर भगवच्चरित वर्णन या समृद्धि के वर्णन के लिए उदात्त अलंकार का प्रयोग किया है—

१. मम्मट, काव्यप्रकाश १०.१५५ एवं उसकी वृत्ति
२. तत्रैव १०.१७५, रुय्यक अलंकार सर्वस्व ८०-८१ तथा विश्वनाथ सा० द० १०. १२३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभावनिध्रुग राजन्यवंशदहनानपवर्गवीर्य ।
गोविन्द गोद्विजसुरार्तिहरावतार योगेश्वराखिलगुरो भगवन्नमस्ते ।[1]

श्रीकृष्ण ! अर्जुन के प्यारे सखा ! यदुवंश शिरोमणे ! आप पृथिवी के भार रूप राजवेशधारी दैत्यों को जलाने के लिए अग्नि के समान हैं । आपकी शक्ति अनन्त है । गोविन्द आपका यह अवतार गौ, ब्राह्मण और देवताओं का दुःख मिटाने के लिए ही है । योगेश्वर ! चराचर के गुरु भगवन् ! मैं आपको नमस्कार करती हूं ।

इसमें भगवान् श्रीकृष्ण के उदात्त चरित्र का निरूपण किया गया है । भगवान श्रीकृष्ण अनन्त, दुःखनिहन्ता तथा दुष्टविध्वंसक हैं ।

विरोधाभास

विरोधाभास अलंकार के प्राचीन आचार्यों के द्वारा स्वरूप निरूपण क्रम में विरुद्ध गुण, क्रिया आदि की योजना का तो स्पष्ट शब्दों में उल्लेख है पर यह अभिहित नहीं है कि विरोध तात्त्विक नहीं प्रतिभासिक मात्र होता है । वामन ने यह स्पष्ट कर दिया है कि विरोध का आभास ही विरोधाभास है ।[2] यहां विरोध तात्त्विक नहीं बल्कि आभासिक होता है ।

श्रीमद्भागवत में अनेक स्थलों पर इस अलंकार का प्रयोग मिलता है, विशेषकर स्तुतियों में

जन्म कर्म च विश्वात्मन्नजस्याकर्तुरात्मनः ।
तिर्यङ्नृषिषु यादःसु तदत्यन्तविडम्बनम् ॥[3]

आप विश्व के आत्मा हैं, विश्वरूप हैं, न आप जन्म लेते हैं, न आप कर्म ही करते हैं । फिर भी आप पशु, पक्षी, जलचर, मनुष्य आदि में जन्म लेते हैं और उन योनियों के अनुरूप दिव्य कर्म भी करते हैं । यह आपकी लीला ही तो है ।

यहां एक तरफ कहा गया है कि आप न जन्म लेते हैं न कर्म करते हैं फिर आप जन्म भी लेते हैं और कर्म भी करते हैं, यहां विरोध की प्रतीति हो रही है । वस्तुतः यह प्रभुमाया का प्रभाव है । यह प्रतीति यथार्थ नहीं है । अतएव यहां विरोधाभास अलंकार है ।

संसृष्टि

तिल-तंडुल न्याय से जहां अनेक अलंकारों की एकत्र स्थिति हो वहां संसृष्टि अलंकार होता है ।[4] यथा -

१. श्रीमद्भागवत १.८.४३
२. वामन, काव्यालंकार सूत्र ४.३.१२
३. श्रीमद्भागवत १.८.३०
४. मम्मट, काव्यप्रकाश १०.१३९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केचिदाहुरजं जातं पुण्यश्लोकस्य कीर्तये।
यदोः प्रियस्यान्ववाये मलयस्येव चंदनम् ॥[1]

जैसे मलयाचल की कीर्ति का विस्तार करने के लिए उसमें चन्दन होता है वैसे ही अपने प्रियभक्त पुण्यश्लोक राजा यदु की कीर्ति का विस्तार करने के लिए आपने उनके वंश में अवतार ग्रहण किया।

यहां उत्प्रेक्षा और उपमा की स्थिति तिल-तण्डुल-न्याय से है।

इस प्रकार स्तुतियों में विभिन्न अलंकारों के प्रयोग से भाषा में स्वाभाविकप्रवाह, सरसता, चारुता इत्यादि गुण सन्निविष्ट हो गए हैं।

श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में बिम्ब योजना

आधुनिक काव्य आलोचना के क्षेत्र में "बिम्ब" शब्द अंग्रेजी के इमेज शब्द के पर्याय के रूप में ग्रहण किया गया है। इमेज का अर्थ पारिभाषिक शब्द संग्रह, कॉम्प्रीहेन्सिव इंगलिश हिन्दी डिक्शनरी, इंगलिश संस्कृत डिक्शनरी, अंग्रेजी हिन्दी कोश आदि कोश-ग्रन्थों में मुख्यतः बिम्ब, प्रतिमा, प्रतिबिम्ब, प्रतिच्छाया, प्रतिमूर्ति आदि दिया गया है। "आक्सफोर्ड डिक्शनरी" में इमेज का अर्थ किसी वस्तु की कृत्रिम अनुकृति अथवा बाह्य-रूप का चित्रण बताया गया है।[2] बिम्ब उस चेतन स्मृति को कहते हैं जो मूल उद्दीपन की अनुपस्थिति में उसका सम्पूर्ण अथवा आंशिक दृश्य उपस्थित करती है। इस इमेज शब्द के स्थान पर अनेक पाश्चात्त्य विचारकों ने "इमेजरी" शब्द का प्रयोग किया है। इमेजरी शब्द का अर्थ विविध शब्दकोशों में प्रतिबिम्ब, प्रतिमूर्ति, मनःसृष्टि, कल्पना-सृष्टि, प्रतिमा-सृष्टि, लाक्षणिक चित्रण आदि दिया गया है। प्राच्य भाषा विवेचकों ने "बिम्ब-विधान" के स्थान पर "रूप-विधान" या "चित्र-विधान" शब्दों का प्रयोग किया है।[3]

बिम्ब वह तत्त्व है जो बुद्धि तथा भावना विषयक उलझनों को क्षण भर में अभिव्यक्त कर दे।[3] "एजरा पाउण्ड" उसी को बिम्बवादी कविता स्वीकार करते हैं जिसमें गद्य जैसी स्पष्टता हो तथा विशेष को प्रस्तुत किया गया हो, सामान्य को नहीं। उनके अनुसार बिम्बवादी कविता में तीन शर्तें आवश्यक मानी गयी हैं—

१. विषय चाहे भावपरक हो या वस्तुपरक पर उनका स्पष्ट चित्रण होना चाहिए।

---

१. श्रीमद्भागवत १.८.३२
२. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – चिन्तामणि, पहला भाग, पृ० १९५
३. टी० एस० इलियट—लिटरेरी एसे ऑफ एजरा पाउण्ड पृ० ४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. ऐसे एक भी शब्द का प्रयोग नहीं होना चाहिए जो हमें मूर्त रूप खड़ा करने में सहायता न दें।

३. छन्दोबद्धता पर ध्यान न देकर संगीतात्मकता के आधार पर काव्य सर्जना होनी चाहिए।

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से काव्य बिम्ब की निम्नलिखित विशेषताएं प्रतीत होती है—

१. काव्य बिम्ब का माध्यम शब्द है।

२. वह चित्रात्मक होता है।

३. उसमें इन्द्रियानुभव जुड़ा रहता है।

४. उसमें मानवीय संवेदनाएं सन्निहित रहती है।

५. वह रूपात्मक अर्थात् मूर्त होता है।

भारतीय आलोचकों ने भी काव्य बिम्ब को पारिभाषित करने का प्रयास किया है। डॉ० नागेन्द्र की धारणा है कि "काव्य सर्जना के क्षणों में अनुभूति के नानारूप कवि की कल्पना पर आरूढ़ होकर जब शब्द अर्थ के माध्यम से व्यक्त होने का उपक्रम करते हैं, तो इस सक्रियता के फलस्वरूप अनेक मानस छवियां आकार धारण करने लगती हैं, आलोचना की शब्दावली में इन्हें ही काव्य-बिम्ब कहते हैं।[1] डॉ. भागीरथ मिश्र के अनुसार वस्तु, भाव या विचार को कल्पना या मानसिक क्रिया के माध्यम से इन्द्रिय गम्य बनाने वाला व्यापार ही बिम्वविधान है।[2]

बिम्ब में प्रतिबिम्ब का वैशिष्ट्य होता है। प्रतिबिम्बन किसी मूल तत्त्व का ही होता है। बिम्ब-प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया में पुनः सर्जन की स्थिति अनिवार्यतः रहती है। पुनः सर्जन उन संस्कारों का होता है जो मानस में पहले से विद्यमान रहते हैं। वे संस्कार जन्मजात एवं अनुभवजात होते हैं। नेत्रादि इन्द्रियों के द्वारा रूपादि विषयों का संयोग होने से व्यक्ति बाह्य जगत् के सम्पर्क में आता है। पहले दृष्टिपथ एवं अनुभूति सीमा में आये रूप, रस, गंध आदि विषय उसके मानस में पुनः उद्बुद्ध हो जाते हैं। उन्हें ही वह कविता में प्रकाशित कर देता है। उनके सम्पर्क में पहले से ही आया सहृदय काव्य-भावना करते समय उनका साक्षात् करने लगता है। रागसंबलित बिम्ब-बोध ही उसके अंतश्चमत्कार का कारण बनता है।

जिस चेतना द्वारा उपर्युक्त उद्बुद्धीकरण संभव होता है उसे ही सामान्यतः कल्पना कहा जाता है। कल्पना का उर्ध्वगामी होकर आत्म-साक्षात्कार के लिए विकल होना बिम्ब निर्माण का कारण है।

---

१. डॉ० नागेन्द्र काव्य बिम्ब, प्रथम संस्करण १९६७, पृ० ५१

२. डॉ० भागीरथ मिश्र— काव्य शास्त्र, पृ० २४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बिम्ब निर्माण में कल्पना के साथ-साथ प्रत्यक्ष अनुभवों की प्रधानता होती है। कभी-कभी प्रत्यक्ष अनुभव न प्राप्त होने पर भी कल्पना के द्वारा संवेदना के स्तर पर उन्हें साक्षात्कार कर लिया जाता है। वही बिम्बयोजना सफल मानी जाती है जो अपने मूल के समस्त विशेषताओं को सहृदय के मानसमें प्रतिफलित कर दे। इस प्रक्रिया में रागात्मकता का संश्लेष आवश्यक है। राग ही वह तत्त्व है जो प्रतिपाद्य विषय और उसे रमणीय बनाने वाले बिम्ब को अन्वित किए रहता है। बिम्ब का कार्य भावानुभूतियों तथा विचारों की व्यंजना है।

बिम्ब मूलतः इन्द्रियों का विषय है। मन इन्द्रियों के माध्यम से विषयों का भावना करता है, संस्कारमय अन्तश्चेतना के सम्पर्क से उन्हें रागरंजित करता है। इस प्रकार इन्द्रियों के मूलधर्म के आधार पर बिम्ब पांच प्रकार के हो जाते हैं— रूप, शब्द, गंध, रस और स्पर्श।

काव्य बिम्बों का वर्गीकरण

काव्य बिम्बों के वर्गीकरण में विद्वानों में ऐक्यमत नहीं है। आधुनिक काव्य विद्या के जितने विचारक हुए हैं वे सबके सब अपने अनुसार काव्य-बिम्बों का विभाजन करते हैं। कुछ काव्य बिम्ब इन्द्रिय ग्राह्य होते हैं जैसे कमल का सौन्दर्य आदि, कुछ हृदय ग्राह्य होते हैं यथा दुःख, सुख इत्यादि और कुछ मानस के अर्थात् प्रज्ञा ग्राह्य होते हैं जैसे मान, अपमान, यश, पुण्य-पाप, आदि। इस प्रकार प्रथमतः इन्द्रियों के आधार पर काव्य बिम्बों को दो भागों में वर्गीकृत किया गया·

१. बाह्येन्द्रिय ग्राह्य और
२. अन्तःकरणेन्द्रिय ग्राह्य।

(१) बाह्य करणेन्द्रिय बिम्ब पांच प्रकार के होते हैं—

१. रूप बिम्ब ४. गन्धबिम्ब और
२. ध्वनि बिम्ब ५. आस्वाद बिम्ब।
३. स्पर्शबिम्ब

(२) अन्तः करणेन्द्रिय ग्राह्य बिम्ब दो प्रकार के होते हैं—

१. भाव बिम्ब २. प्रज्ञा बिम्ब

उपर्युक्त बिम्बों के भी कई उपभेद होते हैं—स्थिरता और गत्यात्मकता के आधार पर बिम्बों के दो भेद—

१. स्थिर एवं
२. गतिशील

पुनः श्लोकों के आधार पर उपर्युक्त बिम्बों के दो भेद—

१. एकल और २. संश्लिष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपर्युक्त भेद श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में यथास्थान प्राप्त होते हैं। इन बिम्ब-भेदों के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार के काव्य बिम्ब, जो जाति या योनि विशेष के आधार पर हैं श्रीमद्भागवत में पाये जाते हैं। वे तीन प्रकार के हैं—१. देव विशेष से सम्बन्धित २. मनुष्य योनि से सम्बन्धित एवं (३) पशुविशेष एवं प्राकृतिक सम्पदाओं से सम्बन्धित काव्य बिम्ब।

उद्विन्यस्त वर्गीकृत बिम्बों का सोदाहरण विवेचन श्रीमद्भागवत की स्तुतियों के आधार पर किया जाएगा।

रूप बिम्ब

रूप बिम्ब नेत्रेन्द्रिय ग्राह्य है। इसे चाक्षुष बिम्ब भी कहते हैं। मनुष्य के हृदय में सदा अनुद्बुद्ध राग समावेशित रहता है। किसी कारणवश पुनः जागरित हो जाता है। कवि के रसात्मक वर्णनों से आखों के सामने वस्तु विशेष का प्रत्यक्ष सौन्दर्य स्थापित हो जाता है, उसे ही रूप बिम्ब या चाक्षुष बिम्ब कहते हैं।

श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में यह बिम्ब पाया जाता है। जब भक्त आर्तभाव से या सख्य या किसी भाव से राग या उत्कण्ठा से प्रभु का ध्यान करता है, स्तुतियों का गायन करता है, तब श्रोतागण को या पाठक को उसके द्वारा वर्णित उपास्य का प्रत्यक्ष सौन्दर्य नेत्रेन्द्रिय के सामने प्रकट हो जाता है। महाप्रास्थानिक वेला में उपन्यस्त भीष्मस्तवराज का एक सुन्दर बिम्ब अवलोकनीय है। पितामह अपने उपास्य के अद्भुत सौन्दर्य का वर्णन इन शब्दों में करते हैं—

त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवराम्बरं दधाने।
वपुरलककुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या॥[1]

उपर्युक्त श्लोक के अवलोकन से भगवान् श्रीकृष्ण कमनीय रूप में प्रत्यक्ष हो जाते हैं देखिए—आप भी देख सकते —उस परमेश्वर के रमणीय रूप को —जो त्रिलोकी में सबसे सुन्दर एवं तमालवृक्ष के समान सांवला है। जिनके शरीर पर सूर्य रश्मियों के समान श्रेष्ठ पिताम्बर सुशोभित हो रहा है। कमल सदृश मुख पर घुंघराली अलकें लटक रही हैं।

इस श्लोक के अध्ययन से लगता है कि प्रभु श्रीकृष्ण सम्पूर्ण रूप-सौन्दर्य के साथ आंखों के सामने प्रकट हो गये हैं। यह स्थिर एकल बिम्ब का उदाहरण है।

एक और प्रभु की झांकी देखिए—आर्त गजेन्द्र की रक्षा के लिए भगवान् स्वयं गरूड़ पर चढ़कर, सुदर्शन चक्र से सुशोभित आकाश मार्ग से

१. श्रीमद्भागवत १.९.३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उधर ही आ रहे हैं, जिधर भक्तराज गजेन्द्र जीवन और मरण के साथ संघर्ष कर रहा है- प्रभु प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त कर वह धन्य हो जाता है। जन्म जन्मान्तरीय साधना सफल हो जाती है। नीचे वह गजेन्द्र मृत्यु के मुख में, ऊपर उसके स्वामी, जिसके लिए वह कितने जन्मों से इन्तजार कर रहा था, कितने कष्ट पूर्ण साधनाओं को उसने पूर्ण किया था, तब भी उसे प्रभु नहीं मिले। आज जब वह पूर्णतः असहाय हो चुका है, तब उसके प्रियतम आ रहे हैं - क्या समर्पित करे उस त्रिलोकी पति को कुछ है ही नहीं। कुछ कर भी नहीं सकता, क्योंकि वह पूर्णतः फंस चुका है। बिना दिए रह भी नहीं सकता, क्योंकि आज उसके प्रियतम का प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हो रहा है वह किसी तरह कमलनाल तोड़कर हाथ में उठाकर उस आगम्यमान प्रभु को समर्पित कर देता है "नारायणाखिल गुरो भगवन्नमस्ते" इसी के साथ वह अपना सर्वस्व उसी के चरणों में समर्पित कर देता है।

सोऽन्तः सरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम्।
उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रान्नारायणाखिलगुरो भगवन् नमस्ते॥[1]

कमलों से पूर्ण अगाध सरोवर, विशालकाय हाथी और भयंकर ग्राह, आगम्य-मान प्रभु, गरुड़, सुदर्शन और गजेन्द्र द्वारा हाथ उठाकर कमल पुष्प का समर्पण आदि दृश्य हमारे नेत्रेन्द्रिय के सामने प्रत्यक्ष हो जाते हैं। यह स्थिर एवं गत्यात्मक एकल चाक्षुष बिम्बों का मिश्रित उदाहरण है।

महार्हवैदूर्यकिरीटकुण्डलत्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम्।
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभिर्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत॥[2]

उपर्युक्त श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण का अद्भुत सौन्दर्य का वर्णन किया गया है। भगवान् श्रीकृष्ण कंश-कारागार में अत्यन्त सुन्दर लगते हैं। कमल के समान कोमल एवं विशाल नेत्र, चार सुन्दर हाथों से युक्त, जिनमें शंख, चक्र, गदा और कमल लिए हुए हैं। वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न, गले में कौस्तुभमणि, वर्षाकालिन मेघ के समान परम सुन्दर श्यामल शरीर, मनोहर पीताम्बर से सुशोभित, वैदूर्यमणि के किरीट और कुण्डल की कान्ति से सुन्दर, घुंघराले बाल सूर्य की किरणों के समान चमक रहे हैं। कंगणों से हाथ सुशोभित हो रहे हैं। यहां बालक श्रीकृष्ण के साथ विभिन्न प्रकार के आभूषणों का रूप भी बिम्बित हो रहा है।

कुन्ती स्तुति करती है। कृष्ण के उपकारों को बार-बार याद करती है

---

१. श्रीमद्भागवत ८.३.३२
२. तत्रैव १०.३.१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक संश्लिष्ट चाक्षुष-बिम्ब का उदाहरण, जिसमें श्रीकृष्ण के मनोरम सौन्दर्य का निरूपण हुआ है :—

विषान्महाग्नेः पुरुषाददर्शनादसत्सभायाः वनवासकृच्छ्रतः ।
मृधे मृधेऽनेकमहारथास्त्रतो द्रौण्यस्त्रतश्चास्म हरेऽभिरक्षिताः ॥[1]

इस श्लोक में अनेक प्रकार के बिम्ब उजागर होते हैं- विष एवं अग्नि और हिडिम्ब आदि राक्षस, द्यूतसभा का कोलाहल, वनवास में आयी विपत्तियां। दुर्वासा की क्रोधमूर्ति और दुर्दम्य अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र के लपट इत्यादि दृश्य बिम्बित होते हैं। इसमें रूप बिम्ब, श्रवण बिम्ब तथा भाव-बिम्ब का समन्वय है।

बिम्ब उपमा का प्राण है। कोई भी उपमा बिना किसी बिम्ब की नहीं हो सकती है—

त्वयि मेऽनन्यविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत् ।
रतिमुद्वहतादद्धा गङ्गेवौघमुदन्वति ॥[2]

इसमें रूप बिम्ब के साथ-साथ भाव बिम्ब, ध्वनिबिम्ब एवं स्पर्शबिम्ब भी है। गंगा की उज्ज्वल धारा सर्व प्रथम आंखों के सामने रूपायित होती है, तदनन्तर उसमें विद्यमान शैत्यता का अनुभव स्पर्श के द्वारा होता है। ज्योंहि गंगा का रूप बिम्बित होता है त्योंहि उसके प्रति हृदय में श्रद्धा का संचार हो जाता है। उसकी अखण्ड धारा से उत्पन्न श्रुतिमधुर कल-कल ध्वनि श्रवणेन्द्रिय को आनन्द प्रदान करती है। यह गत्यात्मक बिम्ब का उदाहरण है।

भगवान् नृसिंह की भयंकरता से सभी देव डर गये। तब बालक प्रह्लाद उनके चरणों में लोटकर स्तुति करने लगता है। एक तरफ भगवान् के भयंकर रूप का दर्शन होने से हृदय में भय व्याप्त हो जाता है, तो दूसरी ओर बालक प्रह्लाद के अवलोकन से हृदय में वात्सल्य उमड़ पड़ता है। उपर्युक्त प्रसंग में रूप बिम्ब के अतिरिक्त भय के कारण एवं बालक के प्रति वात्सल्य भाव के कारण भाव बिम्ब का भी सौन्दर्य चर्व्य है। ब्रह्मास्त्र से डरकर उत्तरा भाग रही है। आगे-आगे उत्तरा और पीछे से ब्रह्मास्त्र-जलता अंगारा। सब सम्बन्धियों को असार समझकर सबके परम सम्बन्धी भगवान को पुकार उठती है।[3] यहां रूप बिम्ब के साथ-साथ भाव बिम्ब भी है।

पर्वत, नदी एवं सागर के बिम्ब का उदाहरण—

---

१. श्रीमद्भागवत १.८.२४
२. तत्रैव १.८.४२
३. तत्रैव १.८.९-१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यथाद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्यापूरिताः प्रभो ।
विशन्ति सर्वतः सिन्धुं तद्वत्त्वां गतयोऽन्ततः ॥[1]

पर्वत से निकलकर समुद्र में गिरती हुई वेगवती नदियों का बिम्ब चाक्षुष प्रत्यक्ष हो जाता है । नदियां उमड़ती-घुमड़ती, कल-कल नाद करती समुद्र में मिल जाती हैं । पर्वत की विशालता का बिम्ब दृष्टिगम्य होता है । चाक्षुष बिम्ब के अतिरिक्त इसमें भाव बिम्ब, ध्वनि बिम्ब आदि भी है ।

रूपक अलंकार के प्रयोग में भी चाक्षुष बिम्ब अपने रमणीयत्व एवं कमनीयत्व को उद्घोषित करता है—

रोमाणि वृक्षौषधयः शिरोरुहा मेघाः परस्यास्थिनखानि तेऽद्रयः ।
निमेषणं रात्र्यहनी प्रजापतिर्मेढ्रस्तु वृष्टिस्तव वीर्यमिष्यते ॥[2]

इस श्लोक में वृक्ष, औषधी, मेघ, पर्वत, वृष्टि आदि का बिम्ब रूपायित होता है । भागवतकार ने विभिन्न प्रकार के साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग किया है । जब भक्त अपने उपास्य की स्तुति करने लगता है, तो तल्लीलागुणरूप से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के विशेषणों का प्रयोग करता है । उन साभिप्राय विशेषणों के प्रयोग में भी चाक्षुष बिम्ब प्राप्त होता है —संश्लिष्ट स्थिर रूप बिम्ब का सुन्दर उदाहरण—

कृष्णाय वासुदेवाय देवकी नन्दनाय च ।
नन्दगोप कुमाराय गोविन्दाय नमो नमः ॥
नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ।
नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥[3]

उपर्युक्त स्तुति खण्ड में साभिप्राय विशेषणों का प्रयोग किया गया है । "कृष्णाय" के प्रयोग से जनाकर्षक कृष्ण का, वासुदेवाय, पद के पठन से वसुदेव पुत्र का, "नन्दगोपकुमाराय" से उस नटखट अहीर के छोकरे का सौन्दर्य चाक्षुष प्रत्यक्ष हो जाता है । "पङ्कजनाभाय" से क्षीरशायी विष्णु के अवतार भक्तोधारक श्रीकृष्ण का सर्वाह्लाद्य रूप नेत्रेन्द्रिय के सामने बिम्बित होने लगता है ।

भीष्मस्तवराज के प्रत्येक पद में चाक्षुष बिम्ब पाया जाता है । पूर्व की घटनाओं को यादकर पितामह स्तुति कर रहे हैं । पहले श्लोक में सृष्टि के उद्भव स्थिति एवं लय कारण परमानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण का, द्वितीय में विश्व सुन्दर रविकर के समान गौरवाम्बर श्रीकृष्ण का, और शेष श्लोकों में महारथि श्रीकृष्ण का बिम्ब आंखों के सामने प्रत्यक्ष हो जाता है ।

१. श्रीमद्भागवत १०.४०.१०
२. तत्रैव १०.४०.१४
३. तत्रैव १.८.२१-२२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृत्रासुर स्तुति कर रहा है। शंखचक्रगदाधारी भगवान् विष्णु सामने खड़े हैं। दुष्ट इन्द्र अन्धाधुन्ध अस्त्र-शस्त्रों का प्रहार कर रहा है। उसी समय शस्त्र फेंककर वृत्रासुर प्रभु को अपना सर्वस्व समर्पित कर देता है। उपमा सौन्दर्य मण्डित चाक्षुष बिम्ब के अनेक उदाहरण इस स्तुति में उपलब्ध हैं।[1]

इस प्रकार प्रत्येक स्तुति में चाक्षुष बिम्ब की प्राप्ति होती है।

ध्वनि बिम्ब

विश्व में कुछ ऐसे पदार्थ होते हैं जो विशिष्ट गति से सक्रिय होने पर विशेष प्रकार के शब्द उत्पन्न करते हैं, उन शब्दों का ग्रहण श्रवणेन्द्रिय के द्वारा होता है। शब्दों में इतनी शक्ति होती है कि वे प्राणी के कर्णकुहरों में प्रवेश करके उसके राग-तन्तुओं को झंकृत कर देते हैं। पदार्थों में वैभिन्नय होने के कारण शब्दों में भी वैभिन्नय होता है। वे कोमलता-मधुरता, कठोरता-कर्कशता आदि गुणों से युक्त होते हैं। ध्वनिबिम्ब या शब्द बिम्ब के सम्बन्ध में तीन बातें ध्यातव्य है :-

(१) शब्द बिम्ब सामान्य शब्द की तरह केवल पदार्थ का द्योतक न होकर उससे उत्पन्न ध्वनि का द्योतक होता है। ध्वनि-व्यंजक शब्द का उच्चरित रूप मूल पदार्थ की ध्वनि की समानता लिए रहता है। उस शब्द के ग्रहण करते ही प्रमाता की चेतना में तत्सम्बन्धी पदार्थ-ध्वनि का पुनः ध्वनन होने लगता है।

(२) कुछ पदार्थ अपनी विशिष्ट ध्वनि के लिए विख्यात है। उनका नाम आते ही उनसे उत्पन्न होने वाली ध्वनि का बिम्ब मानस में आ जाता है।

(३) कभी-कभी मानवीय ध्वनि के गुण का आरोप प्राकृतिक पदार्थ ध्वनि पर तो कभी प्राकृतिक पदार्थ-ध्वनि का आरोप मानवीय ध्वनि पर कर दिया जाता है। इस पद्धति से उस ध्वनि का जो बिम्ब अवतरित होता है उसमें विशेष क्षमता आ जाती है। इसमें व्यंजना-शक्ति खास तौर से काम करती है।

श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में यह शब्द-बिम्ब प्रत्येक स्थलों पर पाया जाता है। विपत्तियों से त्रस्त भक्तों की एवं संसार से तिरस्कृत जनों की करुण पुकार श्रवणेन्द्रिय मार्ग से ग्राह्य होकर हृदय को झंकृत कर देती है। भक्तों के भक्तिभावित हृदय से निःसृत शब्द समुदाय जब श्रोता या पाठक के कर्णकुहरों में प्रवेश करते हैं, तब एक अपूर्व आनन्द की सृष्टि होती है। चाहे वह करुण पुकार हो या दुःख दैन्य की कहानी, सबके सब चित्त को विकसित

१. श्रीमद्भागवत ६.११. २५-२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर आनन्द की सृष्टि करते है।

दिव्यास्त्र से डरकर उत्तरा चिल्लाती हुई भाग रही है। उसकी करुण पुकार सुनकर स्वयं भगवान् भी आकृष्ट हो जाते हैं।[1] गंगा की धारा अपनी कल-कल, छल-छल ध्वनि से योगीजन को भी आह्लादित करती है। गंगाधारा की ध्वनि श्रवण का विषय होती है। कुन्ती के ये शब्द "गङ्गेवौघमुदन्वति" श्रवण या शब्द बिम्ब को उजागर करते हैं।

भक्तों के मधुर एवं सरस शब्द एक अद्भुत सौन्दर्य की उत्पत्ति करते हैं। भीष्म कहते हैं—महाभारत युद्ध में हे प्रभो ! आप जैसे सिंह हाथी पर दहाड़ते हुए टूट पड़ता है वैसे ही हम पर टूट पड़े थे। यहां सिंह की दहाड़ और हाथी के गम्भीर गर्जन का बिम्ब श्रवणेन्द्रिय ग्राह्य होने से शब्द बिम्ब या ध्वनि बिम्ब है —"हरिरिव हन्तुमिभं"[2]। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथि के रूप में घोड़ों की लगाम थामे हुए थे। युद्ध क्षेत्र में शत्रुपक्ष के लोगों को देखकर घोड़े हिनहिना रहे थे। घोड़ों का हिन-हिनाहट श्रवणेन्द्रिय ग्राह्य होने से शब्द बिम्ब है। धृतहयरश्मिनि तच्छ्रियेक्षणीये"[3]। युधिष्ठिर के राजसूय यक्ष के ऋत्विजों की मन्त्र ध्वनि कर्णकुहरों में प्रविष्ट कर सुसुप्त राग को उद्बोधित कर देती है। युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ में राजाओं का कोलाहल, वाद्य-ध्वनियों की आवाज अतिशय आनन्द की उत्पत्ति करते हैं।[4]

स्तुति करते-करते पितामह श्रीकृष्ण में ही विलीन हो गये। सभी देवता ऋषि लोग नगारे तथा विविध प्रकार के वाद्ययन्त्र बजाने लगे। ऋषि लोग वैदिक मन्त्रों का उच्चारण करने लगे। इस प्रकार नगारों की आवाज, मन्त्रों एवं साधु-साधु शब्द की ध्वनियां उस शान्त क्षण में गूंज उठीं। ये सब ध्वनि बिम्ब का निर्माण करते है—

तत्र दुन्दुभयो नेदुर्देवमानववादिताः।
शशंसुः साधवो राज्ञां खात्पेतुः पुष्पवृष्टयः॥[5]

भगवान् श्रीकृष्ण कालियनाग का दमन करने लगे। भगवान् के पाद प्रहार से व्यथित कालियनाग की फुफकार ध्वनि कर्णपुटों के सामने शब्द-बिम्ब प्रकट करती है।[6] भगवान् नृसिंह के भयंकार हुंकार से त्रैलोक्य

१. श्रीमद्भागवत १.८.९-१०
२. तत्रैव १.९.३७
३. तत्रैव १.९.३९
४. तत्रैव १.९.४१
५. तत्रैव १.९.४५
६. तत्रैव १०.१६.२४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कांपने लगा। कोई भी उनके क्रोध को शमित करने में समर्थ नहीं हुआ। तब बालक प्रह्लाद हाथ जोड़कर भगवान् की स्तुति करने लगा। "इस प्रसंग में नृसिंह के हुंकार तथा बालक प्रह्लाद की तोतली बोली से ध्वनि बिम्ब का निर्माण होता है।

मत्स्यावतार में मत्स्य की ध्वनि, वाराहवतार में वाराह की ध्वनि कच्छपावतार में कच्छप की ध्वनि बिम्बित होती है।

बालक श्रीकृष्ण के बाललीलाओं में हंसना, रोना, किलकारी करना इत्यादि भी शब्द बिम्ब के अन्तर्गत ही आते हैं। बालक श्रीकृष्ण के पैरों में सुशोभित पायलों की झनकार तथा कंगणों के खनखनाहट मनोज्ञ शब्द बिम्ब प्रकट करते हैं।[1]

इस प्रकार श्रीमदभागवत की स्तुतियों में तथा स्तुतियों के अतिरिक्त भी सुन्दर शब्द बिम्बों का विनियोजन हुआ है। संश्लिष्ट, एकल, गत्यात्मक, स्थिर आदि प्रकार के बिम्ब भी यहां प्राप्त होते हैं।

३. स्पर्श बिम्ब

स्पर्श त्वचा का धर्म है। स्पर्श प्राप्त करके त्वचा में होने वाले संवेदनों के वर्णन से स्पर्श बिम्ब का सर्जन होता है। त्वचा के द्वारा बाह्य पदार्थों के संपर्क से होने वाली अनुभूति कोमल, कठोर एवं सामान्य होती है। वर्ण्य-विषय में स्पर्श—जन्य संवेदन का वर्णन होने पर ही स्पर्श बिम्ब का निर्माण हो सकता है। वर्ण्य-विषय का वर्णन चाहे वास्तविक हो या काल्पनिक, उसके लिए स्पर्शानुभूति आवश्यक है। कोमल या कठोर स्पर्श जनित गुण के लिए विभिन्न प्रकार के पदार्थों के उल्लेख होते ही प्रमाता की चेतना में तत्सम्बन्धी स्पर्श-बिम्ब उभर आता है। यथा—चन्दन के वर्णन से ही उसकी शीतलता, स्निग्धता आदि गुणों की प्रमाता को अनुभूति होने लगती है। इसे ही स्पर्श बिम्ब कहते हैं।

स्पर्श बिम्ब को दो कोटियों में रख सकते हैं—

(१) इस कोटि में वैसे स्पर्श बिम्बों का समावेश हो सकता है, जिसमें वर्ण्य-विषय की स्पर्श क्रिया एवं स्पर्श जन्य संवेदनशीलता—रोमांच, पुलक, शीतलता आदि की अभिव्यक्ति होती है। भगवान् श्रीकृष्ण के स्पर्श मात्र से ही गोपियों का पूरा शरीर रोमांच से युक्त हो जाता है। कुब्जा कामासक्त होती है।

(२) जिनमें स्पर्श क्रिया का वर्णन न कर केवल स्पर्श गुण—कोमल, कठोर और उससे युक्त पदार्थ—फूल, रेशम, पाषाण का उल्लेख रहता है। और प्रमाता कल्पना द्वारा स्पर्शानुभूति करता है। इस कोटि के बिम्ब

---

१. श्रीमद्भागवत १०.३.१०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अधिकांश मात्रा में भगवद्विशेषणों में प्राप्त होते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण को कमलनयन, पद्मनाभ, पङ्कजाङ्घ्रि इत्यादि विशेषणों में कमल के वर्णन से ही प्रमाता की चेतना में कमल जन्य स्पर्शानुभूति होने लगती है।

श्रीमद्भागवत में दोनों प्रकार के स्पर्शबिंब प्राप्त होते हैं। अग्नि की दाहकता, जल की शीतलता, इत्यादि की अनुभूति स्पर्श का ही विषय है। अश्वत्थामा विसर्जित ब्रह्मास्त्र की दाहकता से अर्जुन एवं उत्तरा का शरीर जलने लगा। ऐसे वर्णनों से प्रमाता की चेतना में दाहकता की स्पर्शानुभूति होने लगती है। कुन्ती द्वारा वर्णित स्तुति में लाक्षागृह की भयंकर अग्नि का ताप स्पर्श बिम्ब उत्पन्न करता है।[1] सुदर्शन के तीव्र आतप से दुर्वासा का शरीर जलने लगा, भाग पड़े दुर्वासा—प्राणों की रक्षा के लिए—कौन बचावे उन्हें—पुनः भक्त अम्बरीष के शरण प्रपन्न हुए। यहां सुदर्शन से प्रमाता के हृदय में स्पर्श-जन्य गम्भीर आतप की अनुभूति होने लगती है। सूर्य के ताप और अग्नि की दाहकता की एकत्र अनुभूति प्रस्तुत श्लोक में द्रष्टव्य है—

त्वमग्निर्भगवान् सूर्यस्त्वं सोमो ज्योतिषां पतिः।
त्वमापस्त्वं क्षितिर्व्योम वायुर्मात्रेन्द्रियाणि च॥[2]

इस श्लोक में सूर्य के आतप, चन्द्रमा की चांदनी की स्निग्धता एवं जल की शीतलता की स्पर्श जन्य अनुभूति होती है।

बाण-वेधन से जन्य वेदना की स्पर्शानुभूति भीष्मकृत स्तुति में होती है।

ममनिशितशरैर्विभिद्यमानत्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा॥[3]

भगवान् श्रीकृष्ण के स्पर्श से गोपियों के शरीर में रोमांच, राजा नृग की मुक्ति, कुब्जा का उद्धार आदि की कहानी प्रसिद्ध है।

गन्ध बिम्ब

घ्राणेन्द्रियग्राह्य विषयों को गन्ध-बिम्ब की कोटि में रखा जाता है। सृष्टि के समस्त पदार्थ गन्ध से युक्त होते हैं लेकिन हमारी घ्राणेन्द्रिय कुछ ही पदार्थों के गंध को ग्रहण कर पाती है। ये गंध दो प्रकार के सामान्य व्यवहार में प्रचलित हैं—सुगन्ध और दुर्गन्ध। सुगन्ध से घ्राणेन्द्रिय तृप्त और मन प्रसन्न हो जाता है। दुर्गन्ध से घ्राणेन्द्रिय अतृप्त एवं मन खिन्न हो जाता है। मनुष्य सुगन्ध की ओर आकृष्ट होता है लेकिन दुर्गन्ध की ओर से पलायित होना चाहता है। गन्ध अनुभूति सिद्ध है, शब्दों के द्वारा

१. श्रीमद्भागवत १.८.२४
२. तत्रैव ९.५.३
३. तत्रैव १.९.३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। अधिक से अधिक सुगन्ध या दुर्गन्ध कह सकते हैं।

श्रीमद्भागवत में इस प्रकार के अनेक बिम्ब पाये जाते हैं। भागवत के गन्ध बिम्ब अनेक रूपों में पाये जाते हैं—(१) यज्ञीय धूम से उत्पन्न गन्ध (२) प्राकृतिक पदार्थ परक—सुमन, चन्दन, मलयानिल, इत्यादि तथा (३) शरीर परक गन्ध—भगवान् जब जन्म लेते हैं तो सुगन्ध व्याप्त हो जाता है। जब राक्षस अवतरित होते हैं तो दुर्गन्ध चतुर्दिक् जीवों को कष्ट देने लगता है।

१. यज्ञीय पदार्थों से उत्पन्न—गन्ध बिम्ब

श्रीमद्भागवत में विभिन्न स्थलों पर विविध प्रकार के भक्त अपने उपास्य के प्रति भक्ति भावना से युक्त होकर यज्ञ समर्पित करते हैं। उन यज्ञों में विविध प्रकार के सुगन्धित द्रव्य अग्नि देव को तथा केसर-कस्तुरी भगवान् के शरीर में लेप किया जाता है, जिससे वातावरण सुगन्धित हो जाता है। दक्ष प्रजापति का सृष्टि विषयक यज्ञ एवं राजा पृथु का यज्ञ प्रसिद्ध है। राजा पृथु के यज्ञशाला से उत्पन्न सुगन्ध चतुर्दिक् परिव्याप्त हो जाता है।

२. सुमनपरक गन्धबिम्ब

भगवान् श्रीकृष्ण का जब प्रादुर्भाव काल आया तब सारे सुमन-कमल, चमेली, बेली इत्यादि आधी रात में खिल गये, वृक्षों की पंक्तियां रंग-बिरंगे पुष्पों के गुच्छों से लद गयी। उस समय शीतल वायु पुष्पों के सुगन्ध को चारों दिशाओं में प्रसृत कर रही थीं—

ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः।
अग्नयश्च द्विजातीनां शान्तास्तत्र समिन्धत॥[1]

देवता लोग पुष्पों की वर्षा करने लगे—उन पुष्पों का सुगन्ध चतुर्दिक् फैल गया है।

३. शरीर परक गन्ध बिम्ब

सूतिका गृह में जब भगवान् अवतरित हुए तब पूरा गृह जगमगा गया तथा सुन्दरगन्ध व्याप्त हो गया। भगवान् के शरीर से एक दिव्य सुगंधी निकलती है, जो भक्तों को आह्लादित करती है। कुब्जा केसर आदि लगाकर सुगन्ध से युक्त हो प्रभु के पास काम-याचना करती है।[2]

१. श्रीमद्भागवत १०.३.४
२. तत्रैव १०.४२.३-४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रस बिम्ब

जिह्वेन्द्रिय के द्वारा ग्राह्य विषय इस बिम्ब की कोटि में आते हैं। जिह्वा के द्वारा पदार्थों की स्वादगत विशेषताओं—खट्टा, मीठा, तीता आदि का ग्रहण होता है। उनका प्रसंग आते ही प्रमाता की चेतना में आस्वाद्य का पुनः प्रत्यक्षीकरण हो जाता है। रसबिम्बों का प्रत्यक्षीकरण अल्पकालिक होता है, क्योंकि रसना द्वारा ग्राह्य विषय की आस्वादन की अवधि क्षणिक होती है। श्रीमद्भागवत के स्तुतियों में इस प्रकार के बिम्ब उपलब्ध नहीं होते हैं।

अन्तःकरण ग्राह्य बिम्ब

कुछ ऐसे भी पदार्थ होते हैं जिनका ग्रहण इन्द्रियों के द्वारा नहीं किया जा सकता है। मनुष्य की विभिन्न प्रकार की भावनाएं एवं धारणाएं अमूर्त हुआ करती हैं—जिनका केवल अनुभव किया जाता है, इन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं। उन अमूर्त पदार्थों को हृदय और बुद्धि के द्वारा ग्रहण किया जाता है। विभिन्न प्रकार के भावनाओं—रति, हास, शोक, क्रोध आदि स्थायी भावों एवं हर्षविषाद, धृति, अमर्ष इत्यादि संचारी भावों का ग्रहण किया जाता है, इसलिए ये भावबिम्ब कहलाते हैं, जो हृदय ग्राह्य होते हैं। यश, अपयश, पुण्य-पाप इत्यादि धारणाएं बुद्धि का विषय होने के कारण प्रज्ञा बिम्ब के अन्तर्गत आती हैं।

यद्यपि "रति" आदि भावनाएं एवं यश आदि की धारणाएं अमूर्त होने से अपने आप में बिम्ब नहीं हो सकतीं। परन्तु कभी-कभी कवि अपने हृदय के प्रच्छन्न भावनाओं एवं बुद्धि की अवधारणाओं को, प्रभावादि की समानता के आधार पर मूर्त्त पदार्थों की सहायता से मूर्तिकरण कर देता है, जिससे उस मूर्त पदार्थ के क्रिया कलापों के साथ-साथ इन भावादिकों की अनुभूति से सम्बद्ध क्रियाकलापों का दृश्य भी सामने उभर आता है। यही मूर्तिकरण इन भावों और धारणाओं का बिम्ब कहलाता है।[1] इस प्रकार अन्तःकरण ग्राह्य बिम्ब के दो रूप (१) भाव बिम्ब एवं (२) प्रज्ञा बिम्ब होते हैं।

भाव बिम्ब

वे शब्द जिनकी अनुभूति का परिचय कोई बाह्य करण तो नहीं दे सकता, परन्तु उनका उच्चारण करते समय मानसिक पूर्वानुभव जागरित हो जाता है। यथा सुख-दुःख, काम-क्रोध, लज्जा-चिन्ता आदि। भागवत-कार ने अनेक स्थलों पर ऐसे बिम्बों का विधान किया है। भक्ति विवेचक

१. कालिदास के साहित्य में बिम्बविधान पृ० १७२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्थलों पर ऐसे बिम्ब अवश्यमेव प्राप्त होते हैं। प्रत्येक स्तुतियों में इस प्रकार के बिम्ब प्राप्त होते हैं—

त्वयि मेऽनन्यविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत् ।
रतिमुद्वहतादद्धा गङ्गेवौघमुदन्वति ॥[1]

यहां पर गंगा की अखण्डधारा इस मूर्त पदार्थ के द्वारा भगद्विषयिणी अनन्यारति के वर्णन से प्रमाता की चेतना में भक्ति विषयक बिम्ब बन जाता है।

इस प्रकार के बिम्बों के द्योतन के लिए भागवत में उपमा, रूपक, दृष्टान्त उत्प्रेक्षा आदि का सहारा लिया गया है—

यथाहृषीकेश खलेन देवकी कंसेन रुद्धातिचिरं शुचार्पिता ।
विमोचिताहं च सहात्मजा विभो त्वयैव नाथेन मुहुर्विपद्गणात् ॥[2]

यहां विपत्तियों का मूर्त चित्रण हुआ है। विष, अग्नि, दाह, राक्षसों की दृष्टि, दुष्टों की द्यूतसभा आदि विपत्तियों का बिम्ब प्रमाता की चेतना में उजागर हो जाता है। कुन्ती द्वारा याचित हजारों विपत्तियों का प्रमाता के मन में मूर्त्तिकरण हो जाता है।[3]

अधोविन्यस्त श्लोक में भय, दुःख, शोक, स्पृहा लोभ आदि मानसिक भावों का प्रमाता के मन में प्रतिबिम्बन होता है—

तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः ।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः ॥[4]

यहां ब्रह्माजी द्वारा कृतस्तुति में अनेक भाव बिम्बों का समावेश है। यहां भूख, प्यास, वात, पित्त आदि कष्टों का मूर्त बिम्बन प्राप्त है—

क्षुत्तृट्त्रिधातुभिरिमा मुहुरर्द्यमानाः शीतोष्णवातवर्षैरितरेतराच्च ।
कामाग्निनाच्युत रुषा च सुदुर्भरेण सम्पश्यतो मन उरुक्रम सीदते मे ॥[5]

जीवों के प्रति समदर्शिता का भाव आत्मा का विषय होने से भाव बिम्ब के अन्तर्गत आता है। श्रीमद्भागवत में इस तरह के भावबिम्ब अनेकत्र स्थलों पर प्राप्त होते हैं। जो सब कुछ समर्पित कर प्रभु का हो जाता है वह समस्त प्राणियों में एकत्व का दर्शन करने लगता है। उसमें समदर्शिता का भाव जागरित हो जाता है।

---

१. श्रीमद्भागवत १.८.४२
२. तत्रैव १.८.२३
३. तत्रैव १.८.२५
४. तत्रैव ३.९.६
५. तत्रैव ३.९.८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार दर्शन, भक्ति आदि के तथ्यों के उजागर करते समय भाव बिम्बों का निर्माण हुआ है। भक्ति विवेचनावसर पर भक्ति (रति) के एक बिम्ब अवलोकनीय है।

भक्तिः परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैष त्रिक एककालः।
प्रपद्यमानस्य यथाश्नतःस्युस्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम्॥[1]

यहां अमूर्त्त भाव, भक्ति का—मूर्त्त भोजन के ग्रास के वर्णन के द्वारा मूर्त्तिकरण किया गया है।

प्रज्ञा बिम्ब

जिन शब्दों के उच्चारण से न तो किसी इन्द्रिय में विकार उत्पन्न होता है, और न मन में, केवल मस्तिष्क में एक छाया-सी बनती है। उन्हें प्रज्ञा बिम्ब के अन्तर्गत रखा जा सकता है। कभी-कभी कवि यश-अपयश, मान-अपमान आदि अमूर्त्त विषयों को भी मूर्त्तता प्रदान करता है, जो किसी भाव के अन्तर्गत नहीं आ सकते, केवल बुद्धि का ही विषय बनते हैं।

श्रीमद्भागवत में ब्रह्म-जीव विवेक, ज्ञान-मीमांसा, यश, विजय, आदि विषयों के निरूपण प्रसंग में इस प्रकार के बिम्बों की प्राप्ति होती है।

नमस्ये पुरुषं त्वाऽऽद्यमीश्वरं प्रकृतेः परम्।
अलक्ष्यं सर्वभूतानामन्तर्बहिरवस्थितम्॥[2]

प्रस्तुत श्लोक में प्रतिपादित भगवान् की सर्वव्यापकता, सर्वसमर्थता का प्रतिपादन किया गया है, जो इन्द्रियग्राह्य नहीं है। केवल मस्तिष्क में हलकी छाया-सी पड़ती है।

ऐसे बिम्ब उपमा, उदाहरणादि के द्वारा और स्पष्ट होते हैं—

मायाजवनिकाच्छन्नमज्ञाधोक्षजमव्ययम्।
न लक्ष्यसे मूढदृशा नटो नाट्यधरो यथा॥[3]

जैसे मूढ लोग विचित्र वेषधारी नट को नहीं देख पाते "इस उदाहरण के द्वारा प्रभु की इन्द्रियागोचरता प्रतिपादित की गई है। इन्द्रिया-गोचरता "प्रज्ञाबिम्ब के अंतर्गत आती है। मोक्ष, कैवल्य आदि भी प्रज्ञा के विषय बनते हैं—

---

१. श्रीमद्भागवत ११.२.४२
२. तत्रैव १.८.१८
३. तत्रैव १.८.१९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नमोऽकिञ्चनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये ।
आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतये नमः ।।[1]

आत्माराम, शान्त और कैवल्यपति आदि शब्दों के उच्चारण से प्रज्ञा-बिम्ब की सृष्टि होती है । कीर्ति (यश) इन्द्रिय ग्राह्य भाव नहीं है, केवल बुद्धि के विषय हैं। जैसे मलयाचल की कीर्ति का विस्तार करने के लिए चन्दन प्रकट होता है उसी प्रकार पुण्यश्लोक राजा यदु की कीर्ति का विस्तार करने के लिए भगवान् अवतरित हुए हैं।[2] यहां यश या कीर्ति से प्रज्ञा बिम्ब का निर्माण होता है। सत्य, ऋत आदि का वितरण भी प्रज्ञा का ही विषय होने से प्रज्ञा-बिम्ब के अन्तर्गत आता है—

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ।।[3]

भागवतकार ने अनेक स्थलों पर प्रज्ञा-बिम्ब का उपयोग किया है। सबका उल्लेख यहां नहीं किया जा सकता ।

प्रतीक विधान

परम्परा अथवा मान्यता से जब कोई सम्बद्ध या असम्बन्धित अंश या वस्तु, किसी मूर्त्त या अमूर्त्त रूप पूर्ण तथ्य का द्योतक बन जाती है, तो वह वस्तु या अंश प्रतीक कहलाता है। जैसे कमल सौन्दर्य का, त्रिशूल एवं लिङ्ग शिवजी का, स्वस्ति लक्ष्मी का, सुदर्शन विष्णु का प्रतीक माना जाता है। इस प्रकार प्रतीक में सम्पूर्ण की अप्रत्यक्ष अभिव्यक्ति होती है ।

विभिन्न कोशग्रन्थों में तथा आलोचना ग्रन्थों में प्रतीक शब्द की व्याख्या की गई है। अंग, प्रतीक, अवयव, अपघन ये सब प्रतीक के पर्याय-वाची शब्द हैं—"अंग प्रतीकोऽवयवोऽपघनो। वृहत् हिन्दकोष के अनुसार अंग, अवयव, अंग, भाग ये शब्द प्रतीक के समानार्थक हैं। प्रतिकन् निपातनात् दीर्घ । अवयव, अंग, पता, चिह्न, निशान इत्यादि भी प्रतीक के शब्दार्थ हैं। प्रतीक का अंग्रेजी रूपान्तर सिम्बल है। सिम्बल का अर्थ किसी दूसरी वस्तु का प्रतिनिधित्व करने वाला पदार्थ स्वीकार किया गया है।[4]

सी० डे० लेविस के शब्दों में "एक वस्तु के लिए प्रयुक्त होने वाले

---

१. श्रीमद्भागवत १.८.२८
२. तत्रैव १.८.३२
३. तत्रैव १०.२.२६
४. वृहत् हिन्दी कोश—कामता प्रसाद, पृ० ८६५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सांकेतिक शब्द प्रतीक के अन्तर्गत आते हैं। डॉ० नागेन्द्र ने प्रतीक को रूढ़ उपमान और अचल बिम्ब माना है।[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अमूर्त्त भावों की मूर्त्त अभिव्यक्ति जो अप्रत्यक्ष रहती है, उसे प्रतीक कहते हैं। रूपक में भी अमूर्त्त भावों को मूर्त्त रूप दिया जाता है, लेकिन वहां जो अमूर्त्त को मूर्त्त एवं साकार कर देने की विशिष्टता है वह प्रतीक में नहीं है। प्रतीक का रूप पूर्ण तथ्य का द्योतक मात्र होता है, उसमें पूर्ण तथ्य की अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष नहीं होती है।

विविधाचार्यों द्वारा निरूपित प्रतीक शब्द की परिभाषा एवं व्युत्पत्तियों से स्पष्ट है कि प्रतीक केवल द्योतक होता है। किसी पदार्थ की अप्रत्यक्ष प्रतीति प्रतीक है। जैसे लिङ्ग शिव का, चक्रपाणि विष्णु का, लम्बोदर गणेश का, वज्र इन्द्र का, भग पार्वती का और सिंह शक्ति "दुर्गा" का प्रतीक माना जाता है। सगुणोपासक भक्त उपास्य की मूर्त्ति बनाकर उपासना करते हैं। यद्यपि मूर्त्ति में परमेश्वर का पूर्ण दर्शन नहीं होता तथापि वह मूर्त्ति भक्तहृदय में परमेश्वर विषयक रति अवश्य उत्पन्न कर देती है।

श्रीमद्भागवत की संपूर्ण कथा ही प्रतीकात्मक है। विभिन्न प्रकार के अमूर्त्त तथ्यों का मूर्त्त चित्रण किया गया है। दर्शन भक्ति एवं ज्ञान के गूढ़ रहस्यों को प्रतीक के माध्यम से भगवान् वेदव्यास ने निरूपित किया है। लोक कथाओं के माध्यम से विभिन्न प्रकार के तथ्यों को उजागर किया गया है। उपाख्यान, भक्ति प्रसंग आदि सब प्रतीक रूप में निरूपित है। चतुर्थ स्कन्ध में पुरञ्चनोपाख्यान है। इस आख्यान का पुरंजन जीवमात्र का प्रतीक है। "पुरं जनयतीति पुरंजन" अर्थात् जो शरीर को उत्पन्न करता है। वह वासना के द्वारा एक पाद, द्विपाद, चतुर्पाद एवं बहुपाद युक्त शरीर को धारण करता है। पुरंजन जीव का "अविज्ञात" नामक सखा परमेश्वर ही है, क्योंकि विभिन्न प्रकार के नाम, रूप, गुणों के द्वारा उसे नहीं जाना जा सकता। नवद्वारात्मिका पुरी ही मानवीय शरीर है। बुद्धि ही पुरंजनी नामक कन्या है। इन्द्रियगण उस जीव विशेष के सखा हैं। मन ही महाबली योद्धा है, शब्दादि विषय पांचालदेश हैं, जिसके अन्तर्गत नवद्वारात्मिका नगरी अवस्थित है।

वृत्रासुरोपाख्यान अवलोकनीय है। त्रासदायिका बहिर्मुखी वृत्ति का का प्रतीक है—वृत्रासुर। वृत्ति की बहिर्मुखता त्रासदायक है, अतएव ज्ञान का

---

१. डॉ० नागेन्द्र—काव्य बिम्ब, पृ० ८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतीक वज्र के द्वारा (सुबोधिनी टीका) वृत्रासुर – त्रासदायिक वृत्ति को मारनी चाहिए। अचला ब्रह्मनिष्ठा का प्रतीक दधीचि है। वृत्रासुर के पूर्व वृतांत वर्णन प्रसंग में शुकदेव महाराज चित्रकेतु की कथा का निरूपण करते हैं।

चित्रविचित्रात्मक कल्पनायुक्त मन ही चित्रकेतु है और बुद्धि कृतद्युति है। काम, क्रोध, ईर्ष्या-द्वेष, माया-मानादि के द्वारा अपहित जीव ही अजामिल है। माया के द्वारा अनुबद्ध जीव स्वविशुद्धानंद स्वरूप से गिर जाता है। अन्तकाल में भ्रमवशात् भी भगवत् नामोच्चारण होने से जीव शीघ्र ही चित्रविचित्रात्मिका माया को पार कर जाता है।

भेद बुद्धि का प्रतीक दिति है। भेद बुद्धि से ही ममता और अहंकार की उत्पत्ति होती है। सभी दुःखों का मूल भेदभाव है तथा अभेदभाव सभी दुःखों का उच्छेदन है। विवेक के द्वारा ममत्व का विनाश निश्चित है, परंतु अहंभाव का विनाश दुष्कर है। अंधकार सभी जीवों में रहता है और सभी को त्रस्त भी करता है। भगवान् अखिलानंद के चरणों में सर्वस्व समर्पण से अहंकार का विनाश संभव है। हिरण्याक्ष ममता का प्रतीक है, हिरण्यकशिपु अहंकार का मूर्तिमन्तविग्रह है। प्रह्लाद जीव का द्योतक है। जब जीव सर्वात्मभाव से प्रभु के पादपंकजों में शरणागत होता है तब अहंकार का विनाश होता है। एकात्मभाव से भगवान् को भजते हुए प्रह्लाद ने शाश्वत पद को प्राप्त कर लिया।

उत्तानपाद जीव मात्र की संज्ञा है। माता के गर्भ में विराजमान सभी जीव उत्तानपाद होते हैं। जन्मकाल में मातृगर्भ से सर्वप्रथम सिर बाहर आता है तब पैर, अतएव सभी जीव उत्तानपाद हैं। जीव मात्र की दो पत्नियां –सुरुचि और सुनीति। सुरुचि विषयात्मिका वृत्ति है तथा सुनीति अखण्डात्मिका वृत्ति का नाम है। जीवों के लिए सुरुचि ही प्रिय होती है, क्योंकि इन्द्रिय स्वेच्छानुरूप वासनाओं में अभिगमन करती है, परन्तु सुनीति वासना से जीवों को रोकती है। सुरुचि का फल उत्तम है। उद् तमः—उत्तमः अर्थात् अज्ञानांधकार। सुनीति का फल ध्रुव अर्थात् अखण्डानंद परमानंद विशेष है।

गजेन्द्र जीव का, सरोवर संसार का और ग्राह काल का प्रतीक है। काम, क्रोध, मोह आदि से पूर्ण यह शरीर ही त्रिकुटाचल है। सुदर्शन ज्ञान चक्र है। ज्ञानचक्र के द्वारा संसृतिकालस्वरूप ग्राह निहत होता है।

पांच प्रकार से अविद्या जीवों को बांधती है—(१) स्वरूप विस्मृति (२) देहाध्यास (३) इन्द्रियाध्यास (४) प्राणाध्यास और (५) अन्तःकरणाध्यास के द्वारा। धेनुकासुर देहाध्यास का प्रतीक है। भगवान् के आधिदैविक शक्ति के द्वारा देहाध्यास विनष्ट होता है। बलभद्र ही भगवान् की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आधि-दैविक शक्ति है। यमुना भक्ति का प्रतीक है। कालियनाग इन्द्रियाध्यास या भोगस्वरूप है। भक्ति में इन्द्रियाध्यास विघ्न स्वरूप है। राग-द्वेष-विकारादि ही विषय हैं। जब इन्द्रिय वासना रूप विष से युक्त रहती है, तब तक भक्ति नहीं होती है। इन्द्रियाध्यास के दमन होते ही भक्ति शुद्ध हो जाती है।

हेमन्त के आगमन पर सभी गोपियां श्रीकृष्ण-प्रेम की प्राप्ति के लिए भगवती कात्यायनी की आराधना करती हैं। यमुना के तट पर बालु से भगवती कात्यायनी का प्रतीक बनाकर गन्ध माला, धूप-दीप, बलि आदि के द्वारा अर्चना करती है।

वेणुगीत नादब्रह्म की उपासना है "वश्च इश्च ब्रह्मानंद विषयानंदौ तौ अणू यस्मात्" ब्रह्मानंद विषयानंद से श्रेष्ठ आनंद का प्रतिपादक वेणु है और उसका गीत वेणु गीत है।

गो अर्थात् इन्द्रियों का संवर्द्धन अथवा पुष्टि गोवर्द्धन है। इन्द्रियों के पुष्ट होने पर भक्ति रस की उत्पत्ति होती है। भक्ति के उत्पन्न होते ही षड्-रस रूप वरुण देव का पराभव हो जाता है। षड्रस के पराभव के बाद जीव शुद्ध हो जाता है।

वासना, अज्ञान एवं बाह्य आवरण का प्रतीक विशेष का नाम चीर है। जिस प्रकार वस्त्र शरीर को आच्छादित कर देता है उसी प्रकार वासना और अज्ञान आत्मा को ढक देते हैं। चीरहरण लीला वासना विनाश लीला का प्रतीक है। वासना और अज्ञान के विनाश होते ही जीव और शिव का मिलन हो जाता है।

परब्रह्मपरमेश्वर श्रीकृष्ण की योगात्मक क्रिया विशेष का नाम रासलीला है, जिसके द्वारा काम-जय कर जीव शिव को प्राप्त कर लेता है। रासलीला मदन-विजय लीला है—

ब्रह्मादिजय संरूढ दर्प कन्दर्प दर्पहा।
जयति श्रीपतिर्गोपो रासमण्डलमण्डितः॥

"रस्यते अस्वाद्यते इति रस, रसो वै सः" इस प्रकार उपनिषदों में रस शब्द का अर्थ परब्रह्मपरमेश्वर बताया गया है। रस शब्द से "तस्येदम्" सूत्र में अण् प्रत्यय करने पर रास शब्द की निष्पत्ति होती है। परब्रह्मपरमेश्वर का औपाधिक प्रादुर्भाव रास का शब्दार्थ है। अर्थात् सर्वेश्वर कृष्ण। ली लयते ला लायते लीयते गृह्णातीति वा अथवा लियं लातीति लीला तन्मयता तद्रूपता रूप क्रिया विशेष अथवा जिसके द्वारा तन्मयत्व या तादृप्य प्राप्त किया जा सके वह क्रिया विशेष। रासलीला पूर्णावतार श्रीकृष्ण पद प्रापण-समर्थ क्रिया विशेष का प्रतीक है। रासलीला के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण ब्रजाङ्गणाओं किंवा समस्त जीवों को परमानंद में ले जाते हैं अथवा स्थापित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते हैं। रासलीला में जीव और ईश्वर का मिलन परस्पर शीघ्र हो जाता है।

"जयति तेऽधिक जन्मना व्रजः' यहां व्रज शब्द मानवीय शरीर का प्रतीक है। मानव शरीर (व्रज) में भगवान् श्रीकृष्ण के प्राकट्य से उसकी शोभा बढ़ती है। भगवान् के समीप ले जाने में जो समर्थ हो उसे व्रज कहेंगे। व्रज शब्द का अर्थ—

व्रजति भगवत्समीपं स व्रजः ते जन्मना व्रजः अधिकं जयति।

श्रीमद्भागवत समाधि भाषा सम्पन्न परमहंसों की संहिता है। भागवत में सर्वत्र प्रतीक कथाओं का चित्रण हुआ है। भागवतकार ने प्रतीक के माध्यम से विभिन्न प्रकार के गूढ़ तथ्यों को सहजबोध बनाया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में गीतितत्त्व, छन्द और भाषा

प्रबंधाकाव्यों में अनेक भावों की प्रधानता रहती है, लेकिन मुक्तक के लघु कलेवर में केवल एक ही भाव की अभिव्यक्ति समाहित रहती है। क्षणिक भावावेश में किसी वृत्ति अथवा वस्तु के आश्रय ग्रहण के बिना केवल एक ही भावना की अभिव्यक्ति स्वाभाविक रूप से होती है। संस्कृत वाङ्मय में एक भावना प्रधान काव्यों का प्रणयन बहुशः हुआ है लेकिन पृथग् किसी विधा के रूप में नामकृत नहीं है। ऐसी रचनाओं में गेय तत्त्व की प्रधानता रहती है। इसमें आत्मवाद या आत्मनिष्ठता की मुख्यता रहती है। गेयता, रसपेशलता रसात्मकता आदि गुण ऐसे काव्यों में सामान्य रूप से पाये जाते हैं।

संस्कृत काव्यशास्त्रकारों ने गीतिकाव्य नामक अलग काव्यविधा को स्वीकृत नहीं किया है। अरस्तु ने केवल गीतिकाव्य शब्द का उल्लेख किया है। परवर्ती भारतीय आचार्यों ने गीतिकाव्य का साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया है। "गीति काव्य हृदय की गंभीर भावना का परिणमन है जो सहजोद्रेक पूर्ण प्राकृतिक वेग से निःसृत होती है। तीव्रभावापन्नता के कारण गीतिकाव्य में रसात्मकता, सबल भावनाओं का स्वतः प्रवर्तित प्रवाह अथवा कल्पना द्वारा रुचिर मनोवेगों का सर्जन होता है।[1] सापेक्षदृष्टि अथवा संकीर्णदृष्टि से कवि अपने व्यक्तित्व से अभिभूत होता है। अतः स्वतंत्रचरितों का सर्जन नही कर पाता। उसके पात्र उसके व्यक्तित्व का ही भारवहन करते हैं। प्रकारांतर से कवि अपना ही चरित्र का चित्रण करता है, निरपेक्ष दृष्टि अथवा पूर्ण दृष्टि से स्वभिन्न पात्रों की सृष्टि करता है, जिसका व्यक्तित्व स्वतंत्र होता है। गीति प्रवृत्ति का मूलाधार आत्मवाद ही है।[2]

उपर्युक्त कथन के समालोचना से स्पष्ट होता है कि गीतिकाव्य में आत्मनिष्ठता का समावेश आवश्यक है। कवि वैयक्तिक भावधारा तथा अनुभूति के अनुरूप लयात्मिका अभिव्यक्ति प्रदान करता है। वैयक्तिकता के साथ अबाधक कल्पना, असीम भावुकता, तथा निष्कर्षोपलब्धि की मुक्त भावधारा

१. हिन्दी साहित्यकोश, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पृ० २६२

२. इन साइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका, भाग १८, पृष्ठ १०७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का समावेश गीतिकाव्य में आवश्यक है।

पाश्चात्य विद्वान् "अर्नेष्ट राइस" महोदय के अनुसार "गीत वह तत्त्व है जिसमें भाव का, भावात्मक विचार का अथवा भाषा का स्वाभाविक विस्फोट होता है। जो शब्द और लय के द्वारा सूक्ष्माभिव्यक्ति को प्राप्त होता है तथा जिससे पदलालित्य और शब्दमाधुर्य से ऐसी संगीतमय ध्वनि निकलती है, जो स्वाभाविक भावात्मक अभिव्यक्ति का रूप धारण करती है। गीतिकाव्य के शब्द सरल, कोमल और नादपूर्ण होते हैं। गीत का उनमें प्रवाह होता है, अनुभूति का सुन्दर आरोह और अवरोह होते हैं, माधुर्य एवं प्रसाद का चारू विन्यास होता है।[1] राइस महोदय के परिभाषा विश्लेषण से गीतिकाव्य के निम्नलिखित तत्त्व परिलक्षित होते हैं—

१. भावात्मकता
२. शब्द और लय का सामंजस्य
३. संगीतात्मकता
४. माधुर्य
५. प्रवाह
६. स्पष्टता
७. आत्मनिष्ठता
८. माधुर्य एवं प्रसाद गुण की अधिकता

"हडसन महोदय" के अनुसार गीतिकाव्य में अनुभूति की सफलता प्रधान होती है। भाषा और भाव का सामंजस्य उसकी विशिष्टता है। किसी भी एक ही चित्तवृत्ति की अभिव्यक्ति के कारण संक्षिप्तता उसका स्वभाव है। उसका लघु कलेवर घनीभूत-भाव-सांद्रता को अभिव्यंजित करता है। कलाचमत्कार उसकी अधीनता का द्योतक होता है। कवि स्वांतः प्रदेश में प्रविष्ट होकर बाह्यजगत् के पदार्थों को अपने अन्दर लाकर उन्हें भावों से रंजित करता है। गीतिकाव्य में आत्माभिव्यंजक गेय एवं मधुर पदों का सन्निवेश होता है। सुकोमल भावना एक-एक पदों में पूर्ण होकर विरमित हो जाती है।[2] हडसन महोदय के विचार-विश्लेषण से गीतिकाव्य में निम्नलिखित तत्त्वों का सद्भाव आवश्यक है

१. आत्माभिव्यंजन
२. भावमयता
३. गेयता
४. माधुर्य
५. शब्दसाधना
६. संगीतात्मकता
७. सुकोमल भावना

---

१. इन साइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटेनिका, भाग १४, लीरिक पृ० १७४६
२. इन्ट्रोडक्शन टू दी स्टडी ऑव लिटरेचर, पृ० १२५-१२७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा उद्घाटित इस नयी काव्यविधा का विश्लेषण, विवेचन आधुनिक भारतीय विचारकों ने उनके आधार पर की है। आचार्य श्यामसुन्दरदास के शब्दों में गीतिकाव्य में कवि स्वान्तःकरण में प्रवेश करता है तथा बाह्यजगत् को अपने अन्तःकरण में लाकर उसे अपने स्वभावों से रंजित करता है। आत्माभिव्यंजिका कविता गीतिकाव्य में छोटे-छोटे गेय पदों के मधुर भावापन्न आत्मनिवेदन से युक्त स्वाभाविक प्रतीत होती है। कवि का स्वान्तःकरण उसमें स्पष्ट परिलक्षित होता है। वह अपनी अनुभूति से प्रेरित होकर गेय पदों के द्वारा भावात्मिका अभिव्यक्ति प्रदान करता है।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर के अनुसार जब दृश्यमान बाह्यजगत् मनुष्य के चेतन जगत् में प्रवेश करता है, तब उससे कुछ अन्य ही उत्पन्न होता है। यद्यपि उसका रूप, ध्वनि, वर्ण आदि सभी अपरिवर्तित रूप में रहते हैं, तथापि वे संवेदन भय, विस्मय, हर्ष विषाद आदि अन्य भावों के द्वारा रंजित होते हैं। इस प्रकार यह जगत् मनुष्य के भावगत अनेक गुणों से अनुप्राणित होकर मनुष्य का आत्मीय हो जाता है।[1]

वस्तुतः भावातिरेक ही गीतिकाव्य की आत्मा है। कवि अपनी रागात्मिका अनुभूति और कल्पना के द्वारा विषय अथवा वस्तु को भावात्मक रचता है।

अनुभूति के कारण ही विभिन्न प्रकार की मानसिक प्रतिक्रिया उत्पन्न होती हैं, क्योंकि गीतिकाव्य में कवि की अन्तर्वृत्ति वस्तु या विषय के साथ स्वानुरूपता स्थापित करती है। प्रो० चन्द्रशेखर पांडेय के अनुसार सुख अथवा दुःख की अनुभूति जब तीव्र से तीव्रतम हो जाती है, तब उदात्त अनुदात्त ध्वनियों के सामंजस्य के द्वारा कवि कण्ठ से जो शब्द निःसृत होते हैं वे ही गीति संज्ञा को प्राप्त होते हैं। वहां पर कवि की की अनुभूति मधुर और कोमल शब्दों से सम्बलित होकर गीति प्रधान सरणि में व्यक्त हो जाती है।[2]

पूर्वोक्त कथनों के सम्यगवलोकन से गीति काव्य के निम्नलिखित तत्त्व परिलक्षित होते हैं

१. अन्तर्वृत्ति की प्रधानता
२ संगीतात्मकता
३. पूर्वापर सम्बन्ध विहीनता अथवा निरपेक्षता
३. रसात्मकता अथवा रंजकता

---

१. विश्वभारती क्वार्टरली, मई सन् १९३५ ई०
२. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा पृ० ३२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. भावतिरेकता
६. भाव सान्द्रता
७. चित्रात्मकता
८. समाहित प्रभाव
९. मार्मिकता
१०. संक्षिप्तता
११. सरलता एवं सहजता

श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में उपर्युक्त सभी तत्त्व विद्यमान हैं। स्तुतियों में गेय तत्त्व की प्रधानता होती है। भक्त सहज रूप से अन्तर्भावों से प्रेरित होकर कोमल, मधुर, सरस, सरल, मार्मिक और संगीतात्मकता से युक्त पदावलियों को भगवच्चरणों में समर्पित करता है। सुख और दुःख दोनों ही परिस्थितियों में भक्त प्रभु के अद्भुत लीला गुणों का जब स्मरण करता है, तब अनायास ही उसके हृदय से शब्द की सुन्दर रागात्मिका धारा प्रस्फुटित होने लगती है, जिसे हम आचार्यों की दृष्टि में स्तुति कहते हैं।

जब भक्त स्वात्मानुभूति से प्रेरित होकर अपने ही अन्दर तन्मय हो जाता है, सारे बाह्यवृत्तियों से इन्द्रियों को अलग कर अन्तर्मन में स्थापित कर देता है, तब उसके हार्द धरातल से सहज रूप में शब्द निकलने लगते हैं। उन शब्दों में भक्त की अनुभूति की ही प्रधानता रहती है और अपनी अनुभूति के अनुसार प्रभु को देखना चाहता है। वहां न कोई बाह्य कारण होता है, न कोई बाह्य जगत् का दबाव, जीव जब अपने शिव का दर्शन करता है तब अनायास ही अपने शिव का वर्णन करने लगता है।

स्तुतियों के अतिरिक्त आठ गीत भी भागवत में पाये जाते हैं। यद्यपि वे गीत भी स्तुत्यात्मक हैं, तथापि अपेक्षाकृत दर्द एवं वेदना की तीव्रता की अधिकता के कारण भागवतकार ने उन्हें गीत संज्ञा से अभिहित किया है। वे गीत हैं -

१. वेणुगीत दशमस्कन्ध २१वां अध्याय
२. गोपिका गीत " ३१वां अध्याय
३. युगलगीत " ३५वां अध्याय
४. कृष्णपत्नियों का गीत—दशमस्कन्ध ९०वां अध्याय
५. पिंगला गीत एकादश स्कन्ध, ८वां अध्याय
६. भिक्षुगीत —एकादश स्कन्ध, २३ वां अध्याय
७. ऐलगीत " २६ वां अध्याय
८. भूमिगीत—द्वादश स्कन्ध, तीसरा अध्याय

उपर्युक्त सभी गीत शृंगारिक, धार्मिक, उपदेशात्मक एवं निर्वेद संबंधी भावनाओं से युक्त एवं लालित्य तथा माधुर्य से परिपूर्ण हैं। इन गीतों में जीवन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का अन्तर्दर्शन और रागात्मक अभिव्यक्ति पूर्णतया पायी जाती है। आध्यात्मिक, दार्शनिक एवं धार्मिक सिद्धांत भी इन गीतों में अभिव्यक्त हुए हैं।

पूर्वोद्धृत गीतिकाव्य के तत्त्वों का विवेचन श्रीमद्भागवतीय स्तुतियों के आधार पर किया जा रहा है:—

१. संगीतात्मकता

संगीतात्मकता भागवत की स्तुतियों में सर्वत्र पायी जाती है। ध्वनि और संगीत का जीवन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। संगीत जीवनदायिनी शक्ति के रूप में है। इसका प्रभाव चिरन्तन होता है। संगीत से मन मोहित होता है और आत्मानन्द में विभोर हो जाता है। संगीत से पशु-पक्षी जगत्, मनुष्य यहां तक बालक भी आकृष्ट हो जाते हैं। बालक जब रोने लगता है या सोता नहीं है तो मां लोरी गा गाकर सुलाती है। वह बालक संगीत के मधुमय स्वर लहरियों में आत्मविस्मृत हो आनन्द विभोर हो जाता है।

गीत पर मुग्ध होकर वनविहारी तृणभक्षी मृगशिशु प्राण भी दे देते हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि चतुवर्ग का संगीत प्रकृष्ट साधक है। यही कारण है कि संस्कृत में नाद सौन्दर्य पर विशेष महत्त्व दिया गया है। संगीत से देवता, पार्वती पति शिव यहां तक गोपीपति श्रीकृष्ण भी वशीभूत हो जाते हैं—

गीतेन प्रीयते देवः सर्वज्ञः पार्वतीपतिः,
गोपीपतिरनन्तोऽपि वंशध्वनिवशं गतः।
सामगीतिरतो ब्रह्मा वीणासक्ता सरस्वती,
किमन्ये यक्ष-गन्धर्व-देव-दानव-मानवाः॥[1]

भागवतीय स्तुतियों में पद-पद संगीत की सौन्दर्य-युक्त ध्वनि हृत्तन्त्रि को विकसित करती है। पितामह भीष्म भगवान् के कमनीय रूप का गायन कर रहे हैं।[2]

दुःख की अवस्था में मानव की पूर्व संचित वासना एवं अनुभूतियां साकार होकर गीत के रूप फुट पड़ती हैं। गजेन्द्र सरल सरस शब्दों से युक्त संगीत का गायन निर्विशेष के प्रति करता है—

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा न नामरूपे गुणदोष एव वा।
तथापि लोकाप्ययसम्भवाय यः स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति॥[3]

जब जीव मात्र की वेदना तीव्र से तीव्रतम हो जाती है, उस स्थिति

---

१. संगीतरत्नाकर— आनन्दाश्रमः, पृ० ६
२. श्रीमद्भागवत १.९.३३
३. तत्रैव ८.३.८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में वह एकात्म भाव में निष्ठ हो जाता है। इस अवस्था में उसके उपास्य के प्रति उसी के हृदय से वेदना के गीत फूट पड़ते हैं-- श्रीकृष्ण के विरहावेश में उन्हीं के चरण चंचरीक भक्त गोपियां गाने लगती हैं—भगवद्गुणों का रसमय वर्णन करने लगती हैं—

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इंदिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकाः त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥[1]

जब अपना सर्वस्व विनाश होता नजर आने लगता है, चाहे वह प्रभु के द्वारा ही क्यों न हो, उस अवस्था में जीव विशेष अपने पुत्र, पति या अन्य किसी सम्बन्धी को या स्वयं को बचाना चाहता है तब इस आतुरता की स्थिति में संगीत की झिनि स्वर लहरियां झनझनायित होने लगती हैं— नागपत्नियां इस प्रकार की स्तुति का गायन करती हैं—

अनुगृह्णीष्व भगवन् प्राणांस्त्यजति पन्नगः।
स्त्रीणां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीयताम् ॥[2]

इस प्रकार स्तुतियों में संगीत तत्त्व की प्राप्ति होती है।

२. रसात्मकता

श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में अकुण्ठ रस-प्रवाह प्रवाहित है। रसमय काव्य के अध्ययन से चित्त एकाग्रता तथा निश्चयता को प्राप्त करता है। चित्तस्थैर्य ही आनन्द का कारण है। आनन्द ही रसस्वरूप है। भारतीय मनीषियों ने रस को सर्वस्व माना है। "नहि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते"[3] अग्निपुराणकार ने काव्य जीवन के रूप में रस को स्वीकृत किया है। "वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्"।[4] स्तुतियों में रस का स्वाभाविक उद्रेक पाया जाता है। कुन्ती कृत स्तुति में वात्सल्यरस स्वाभिक रूप मे अभिव्यंजित हुआ है—

गोप्यादद त्वयि कृतागसि दाम तावत्, या ते दशाश्रुकलिलाञ्जनसम्भ्रमाक्षम्।
वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य, सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति ॥[5]

स्तुतियों में वीररस का भी आस्वादन होता है। भीष्मराज स्तव में भगवान् श्रीकृष्ण का वर्णन—

---

१. श्रीमद्भागवत १०.३१.१
२. तत्रैव १०.१६.५२
३. भरत, नाट्यशास्त्रम्, अ० ६
४. अग्निपुराण ३३६।३३
५. श्रीमद्भागवत १.८.३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शितविशिखहतो विशीर्णदंशः क्षतजपरिप्लुत आततायितो मे ।
प्रसभमभिससार मद्वधार्थं स भवतु मे भगवान् गतिर्मुकुन्दः ॥[1]

जैसे सिंह बलपूर्वक हाथी पर टूट पड़ता है वैसे ही बाणों से विद्ध भगवान् श्रीकृष्ण भीष्म को मारने के लिए दौड़ पड़े ।

स्तुतिकर्त्ता जब भाव की उच्चाइयों पर पहुंच कर अखण्डानन्द स्वरूप में निमज्जित हो जाता है तब उसके सारे बन्धन खण्डित हो जाते हैं और वह रसेश्वर श्रीकृष्ण में ही भेद-भ्रम से रहित हो जाता है—

तमिममहमजं शरीरभाजां हृदि हृदिधिष्टितमात्मकल्पितानाम् ।
प्रतिदृशमिव नैकधार्कमेकं समधिगतोऽस्मि विधुतभेदमोहः ॥[2]

३. अन्तर्वृत्ति की प्रधानता

गीतिकाव्य में अन्तर्वृत्ति की प्रधानता होती है । स्तुतियों में यह तत्त्व भूरिशः परिलक्षित होता है । जब भक्त अपने बाह्य वृत्तियों को अन्तर्मुखी बनाता है तब उसके हृदय से, अपने उपास्य के प्रति समर्पित स्तुति के श्लोक स्वतः निर्गत होने लगते हैं । पितामह भीष्म सब ओर से इन्द्रियों को हटाकर वृत्तियों को अन्तर्मुखी बनाते हैं, भक्तराज गजेन्द्र बाह्य वृत्तियों को, मन को हृदय में एकाग्र कर स्तुति करता है—

एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि ।
जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥[3]

४. पूर्वापर सम्बन्धविहीनता अथवा निरपेक्षता

निरपेक्षता संस्कृत गीतिकाव्य की प्रमुख विशेषता है । गीतिकाव्य के प्रत्येक श्लोक स्वतन्त्र रूप से रसबोध कराने में समर्थ होते हैं । श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में यह विशिष्टता पायी जाती है । प्रत्येक स्तुत्यात्मक श्लोक एक दूसरे से स्वतंत्र रूप में रस को उपचित करते हैं, रसावबोध कराते हैं । वेणुगीत का अधोलिखित श्लोक अकेले ही हृदय में रस का संचार कर देता है—

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणुः दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् ।
भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं हृदिन्यो हृष्यत्त्वचोऽश्रुमुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः ॥[4]

५. भावातिरेकता

भावातिरेकता गीतिकाव्य का प्रमुख गुण है । स्तुतियों में यह तत्त्व

---

१. श्रीमद्भागवत १.९.३८
२. तत्रैव १.९.४२
३. तत्रैव ८.३.१
४. तत्रैव १०.२१.९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल रूप में पाया जाता है। जब भक्त भावातिरेकता अथवा रागात्मिकता अनुभूति से युक्त हो जाता है, उसके हृदय से स्वतः स्तुति काव्य प्रसृत होने लगता है। प्रभु की भक्ति में जब अपने आप को स्थापित कर देता है तब वह गद्गद् कण्ठ से स्तुतियों का गायन करने लगता है। श्रीकृष्ण के द्वारा उपकृत होकर भक्तिमती कुन्ती गद्गद् कण्ठ से भगवान् की स्तुति करने लगती है।[1] वृत्रासुर की स्तुति में भावातिरेकता की ही प्रधानता है। अनन्य भाव से उसके नयन प्रभु के चरणों में लगे हुए हैं, जैसे पक्षविहीन पक्षी, एवं क्षुधार्त गाय का बछड़ा अपने माता के प्रति एवं प्रिय अपनी प्रिया के आतुर रहता है—

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष विदृक्षते त्वाम् ॥[2]

६. भावान्विति

गीतिकाव्य में रागात्मिका अनुभूति ही मूल भावना से अनुप्राणित रहती है। गीति का केन्द्र बिन्दु वही मूल भाव होता है, जिसका विश्लेषण विस्तार कवि गीति के कलेवर में करता है। भावान्विति बुद्धि द्वारा नियन्त्रण का अभाव नहीं है। जब तक बुद्धि का समुचित नियन्त्रण नहीं प्राप्त होता तब तक भावावेश काव्य के रूप में स्थापित नहीं होता। जब बुद्धि भाव की अपेक्षा गौण होती है तब अभिव्यक्ति का माध्यम काव्य होता है, लेकिन जब बुद्धि की अपेक्षा भाव गौण हो जाता है तब वह काव्य नहीं गद्य कहलाता है। निस्संदेह गीतिकाव्य का सम्बन्ध कवि की रागात्मिका अनुभूति से होता है। स्तुतियों में यह तत्त्व प्रधान रूप से पाया जाता हैं। बुद्धि जब उपास्य के चरणों में स्थिर हो जाती है—भाव का अतिरेक हो जाता है तब स्तुतिप्रारंभ होती है—किम्पुरुष वर्ष में भक्तराज हनुमान् अनन्यभाव से लक्ष्मणाग्रज सीताभिराम श्रीराम की स्तुति करते हैं—

सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम्।
भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत्कोसलान्दिवमिति ॥[3]

७. चित्रात्मकता

गीतिकाव्य की प्रमुख विशिष्टता है चित्रात्मकता। कवि या पाठक के सामने हृदयगत रागों का चित्र अंकित हो जाता है। स्तुतियों में यह तत्त्व भूरिशः स्थलों पर विद्यमान है। भक्त अपने हृदय में संचित राग के आधार

---

१. श्रीमद्भागवत १.८.१८-४३
२. तत्रैव ६.११.२६
३. तत्रैव ५.१९.८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर शब्दों द्वारा अपने प्रभु का चित्र खींच देता है। पितामह भीष्म के भगवान् का त्रिभुवनकमनीय सौन्दर्य प्रत्येक स्तुति पाठक के सामने बिम्बित होने लगता है।[1]

भगवान् भक्त की आर्तपुकार सुनकर गरुड़स्थ आकाश मार्ग से आ रहे हैं। आज भक्त गजेन्द्र की जन्म जन्मातरीय साधना सफल होने वाली है। वह किसी तरह एक कमल पुष्प लेकर—प्रभु के चरणों में समर्पित कर देता है।[2] इस दृश्य का स्पष्ट चित्र श्रोता के सामने बिम्बित होने लगता है।

चित्रात्मकता लगभग सब स्तुतियों में पायी जाती है। पितामह भीष्म भगवान् द्वारा कृत पूर्वलीलाओं का स्मरण कर स्तुति करते हैं। उस स्तुति के प्रत्येक श्लोक में प्रभु के विभिन्न रूपों का चित्र उभर आता है। कुन्ती भगवान् के बालछबि का ध्यान कर स्तुति करती है[3]—

इस प्रकार श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में सर्वत्र चित्रात्मकता का दर्शन होता है। भक्त अपने उपास्य का, अपने हृदयस्थ भावनाओं के अनुसार स्वरूप का सर्जन कर लेता है। जब उस स्वरूप को शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान करता है तब श्रोता या पाठक के सामने उसके प्रभु का स्वरूप बिम्बित होने लगता है।

८. मार्मिकता

श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में मार्मिकता का समावेश सर्वत्र पाया है। भक्त आत्मनिष्ठ होकर या कष्ट से पीड़ित होकर प्रभु का ध्यान करता है, तब उसके हृदय से मार्मिक शब्द स्वतः ही अभिव्यक्त होने लगते हैं। उन शब्दों का सम्बन्ध बुद्धि से न होकर जीव विशेष के मर्म से होता है। गर्भस्थ जीव मातृगर्भ में प्राप्त कष्टों से एवं भावी संसारजन्य बन्धनों का स्मरण कर आर्त भाव से प्रभु की पुकार करने लगता है[4]—

अधम जीव, जो अनेक योनियों में भ्रमण करता है—सर्वतोभावेन उस शरण्य का शरणागत हो जाता है—उस दयालु प्रभु के चरणों में, दीनबन्धु की शीतल छाया में अपना निवास बना लेता है। दुःख की अवस्था में जो अभिव्यक्ति होती है वह मर्मस्पर्शी तथा भावुकता से पूर्ण होती है। जिस प्रभु के स्वरूप को बड़े-बड़े तपस्वी ऋषि-मुनि लोग नहीं जान पाते तो सामान्य जन कैसे जान सकते हैं, वहीं प्रभु जीवों की रक्षा करेंगे। गजेन्द्र

१. श्रीमद्भागवत १.९.३३
२. तत्रैव ८.३.३२
३. तत्रैव १.८.३१
४. तत्रैव ३.३१.१२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहता है ।

न यस्य देवा ऋषयः पदं विदुर्जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम् ।
यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो दुरत्ययानुक्रमणः स मावतु ॥[1]

६. सरलता-सहजता एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति

गीतिकाव्य में सरलता, सहजता तथा स्वाभाविक अभिव्यक्ति की प्रधानता होती है । स्तुतियों में उपर्युक्त तत्त्व प्राणस्वरूप हैं । भक्तों के सरल हृदय से सहज रूप में भावों की सरिता शब्दों के माध्यम से प्रवाहित हो जाती है । सहज रूप से अन्तर्मन द्वारा प्रेरित भक्त अपने उपास्य के लीला गुणों से सम्बन्धित शब्दों को गुणगुनाने लगता है । सब कुछ प्रभु को ही समर्पित कर उसी का हो जाना चाहता है । केवल प्रभु के साथ अविच्छेदात्मक सम्बन्ध--अनन्याभक्ति की याचना करता है । वृत्रासुर के अधोविन्यस्त कथन में कितनी सहजता, सरलता एवं भाषा का स्वाभाविक प्रवाह है, यह तो कोई भागवतरस का लोभी शुक ही बता सकता है--

न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठयं न सर्वभौमं न रसाधिपत्यम् ।
न योगसिद्धिरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य काङ्क्षे ॥[2]

जब वेणुरणन सुनकर आगत गोपियों को भगवान् श्रीकृष्ण अपने घर की ओर लौट जाने के लिए कहते हैं तब गोपियों के हृदय में सहज रूप में जो समर्पण के भाव थे वे शब्दों के द्वारा अभिव्यक्त हो जाते हैं -- कितनी मार्मिकता है श्रीकृष्ण चरणों में समर्पित गोपियों के इन पंक्तियों में-- **अपना लो हे नाथ ! अपने भक्तों को--**

व्यक्तं भवान् व्रजभयार्तिहरोऽभिजातोदेवो यथाऽऽदिपुरुषः सुरलोकगोप्ता ।
तन्नो निधेहि करपङ्कजमार्तबंधो तप्ततनषु च शिरस्सुच किङ्करीणाम् ॥[3]

इस प्रकार श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में गीतिकाव्य के सभी तत्त्व पाये जाते हैं ।

स्तुतियों की छन्द-योजना

जैसे सज्जनों का व्यवहार, उनके शील, गुण और सज्जनता की शोभा औचित्यपूर्ण व्यवहार से ही सम्भव है वैसे ही काव्य में गुण, सुन्दर छन्द एवं रसनियोजन तभी सौन्दर्योत्पादक होते हैं जब उनमें औचित्य का समावेश हो ।[4] वर्ण और शब्दयोजना के औचित्य के समान ही छन्दों का

---

१. श्रीमद्भागवत ८.३.६
२. तत्रैव ६.११.२५
३. तत्रैव १०.२९.४१
४. क्षेमेन्द्र, औचित्यविचारचर्चा, कारिका १९ और उसकी टीका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

औचित्य भी काव्यगत सौन्दर्य के लिए अत्यावश्यक है। मार्मिक, सरस एवं रसमय अभिव्यक्ति के लिए गुणालंकारादि की तरह काव्य में छन्द-योजना की अनिवार्यता सार्वजनीन है।

अनादिकाल से यह परम्परा प्रचलित है कि अपने ज्ञान के संवर्द्धन एवं प्रचार-प्रसार के लिए कवि एवं ऋषि छन्दों का आश्रय लेते थे। पूर्ण ऋग्वेद छन्दमयी वाणी का प्रवाह ही है। जब कवि या कलाकार अपने संपूर्ण मनोवृत्तियों को एकत्रित कर स्थित हो जाता है, अपने लक्ष्य में अनन्य भाव से रम जाता है, तब उसी साधना के क्षणों में उसकी वाणी अनायास रूपवती नायिका की तरह प्रकट हो जाती है। वह उपमादि अलंकारों के साथ-साथ वसन्ततिलकादि सुन्दर लय-तालयुक्त छन्दों का जामा भी पहने रहती है।

छन्दों के द्वारा भावसंप्रेषण में सरलता आदि का समावेश हो जाता है। कठिन से कठिन भावों को छन्दों के माध्यम से सहज संवेद्य रूप में अभिव्यक्त कर सकते हैं।

छन्द कवि हृदय से निःसृत एकत्रावस्थित मनोवृत्तियों का सुन्दर प्रवाह है, जो एक नियत और निश्चित दिशा की ओर जाता है। कठिन से कठिन विषयों को छन्दों के माध्यम से सहज ग्राह्य बना लेते हैं। छन्दों के द्वारा ज्ञान को हम स्थिर तथा सर्वजनग्राह्य बनाते हैं। छन्दोमयी भाषा में निबद्ध औपदेशिक वाणी मानव हृदय पर अपना अमिट छाप छोड़ जाती है। काव्य में छन्द का और उसके अनुकूल ताल, तुक विराम और स्वर का उपयोग विषयिगत मनोभावों के संचार हेतु किया जाता है। वस्तुतः छन्द में अद्भुत शक्ति समाहित है, जो मानवता को ढाकने वाले समस्त आवरणों को दूर करने की क्षमता रखती है। भावों को संवेदनशील एवं सहृदयग्राह्य बनाने के लिए छन्दों की अनिवार्यता निश्चित है।

श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है। कुछ स्तुतियां एक ही छन्द में निबद्ध हैं तो कुछ में विभिन्न छन्दों का प्रयोग हुआ है। भावानुसार छन्दों का प्रयोग पाया जाता है। वसन्ततिलका, वंशस्थ, अनुष्टुप्, पुष्पिताग्रा, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति आदि अनेक छंदों का प्रयोग किया गया है। भक्त अपनी मनोवृत्तियों को एकत्रावस्थित कर समाधि की अवस्था में जब स्तुति करता है तब उसकी वाणी अक्सर एक ही छन्द का आश्रय लेकर प्रवाहित होती है और जब किसी कारणवश सुख या दुःख के कारण भक्त व्याकुलता, आतुरता या हर्षातिरेक की अवस्था में स्तुति करता है, तो उसकी वाणी विभिन्न छंदों का आश्रय लेती है।

आख्यान, कथाविस्तार, संवाद, देश, नगर, तत्त्वज्ञान, धर्मचर्चा, दर्शन इतिहास एवं धार्मिक तथ्यों के विवेचन एवं निरूपण में अनुष्टुप् छंद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का प्रयोग होता है। संस्कृत वाङ्मय में यह छन्द इतना अधिक लोकप्रिय है कि सभी कवियों ने विषय एवं भावों के प्रतिपादन में अनुष्टुप् का सहारा लिया है। सर्वप्रथम लोक में अनुष्टुप् का ही अवतार माना जाता है। महर्षि वाल्मीकि ने हृदयगत शोक को अनुष्टुप् के माध्यम से ही अभिव्यक्त किया था।

यह चार-चरण युक्त सम छन्द है। इसके सभी पादों में छठा अक्षर गुरु, पांचवां लघु होता है। सातवां अक्षर दूसरे तथा चौथे चरण में ह्रस्व होता है, पहले और तीसरे में दीर्घ होता है।[1]

भागवत की स्तुतियों में अनेक स्थलों पर इसका प्रयोग पाया जाता है। द्रौण्यास्त्र से भीत उत्तरा रक्षा के लिए कृष्ण का आह्वान अनुष्टुप् युग्मों से करती है—

पाहि पाहि महायोगिन्देवदेव जगत्पते।
नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम्॥
अभिद्रवति मामीश शरस्तप्तायसो विभो।
कामं दहतु मां नाथ मा मे गर्भो निपात्यताम्॥

भक्तिमती कुन्ती अपनी स्तुति अनुष्टुप् से ही प्रारम्भ करती है। इस स्तुति में १९ बार अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग किया गया है। अन्तिम अनुष्टुप् के द्वारा कुन्ती अनन्यारति की कामना करती है—

त्वयि मेऽनन्यविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत्।
रतिमुद्वहतादद्धा गङ्गेवौघमुदन्वति॥[2]

(२) पुष्पिताग्रा

पुष्पिताग्रा का अर्थ है सफलता के लिए प्रयाण। यह चार चरणों से युक्त अर्धसमवृत्त है। प्रथम तथा तृतीय चरण में नगण, नगण, रगण एवं यगण क्रम से १२ अक्षर और द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में नगण, जगण, जगण, रगण और एक गुरुक्रम से १३ अक्षर होते हैं।[3] श्रीमद्भागवत में अनेक स्थलों पर पुष्पिताग्रा छन्द का प्रयोग किया गया है। पितामह भीष्म की महाप्रयाणकालीन स्तुति पुष्पिताग्रा में निबद्ध है—

---

१. श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुःपादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः॥
२. श्रीमद्भागवत १.८.९-१०
३. तत्रैव १.८.४२
४. अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा।
छन्दोमञ्जरी चौखम्बा सुरभारती ३।५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा भगवति सात्वतपुङ्गवे विभूम्नि ।
स्वसुखमुपगते क्वचिद्विहर्तुं प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः ॥[1]

उपर्युक्त श्लोक के प्रथम एवं तृतीय चरण में नगण, नगण, रगण, यगण के क्रम से १२ अक्षर एवं द्वितीय तथा चतुर्थ चरण में नगण, जगण, जगण, रगण और एक गुरु क्रम से तेरह अक्षर होने से पुष्पिताग्रा है ।

(३) वंशस्थ

श्रीमद्भागवत के स्तुतियों में अनेक स्थलों पर वंशस्थ छन्द का प्रयोग किया गया है । शुकदेव कृत स्तुति, गजेन्द्र स्तुति में कुछ श्लोक और वसुदेव कृत स्तुति में वंशस्थ छन्द का प्रयोग हुआ है । इसके अतिरिक्त अनेक स्थलों पर इसका प्रयोग प्राप्त है । जिसके प्रत्येक चरण में जगण, तगण, जगण और रगण क्रम से १२ अक्षर होते हैं ।[2]

नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां
विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम् ।
निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा
स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः ॥[3]

गजेन्द्र मोक्ष के तीन श्लोक (२३-२५) वंशस्थ छन्द में हैं ।

(४) इन्द्रवज्रा

चार चरणों से युक्त, प्रत्येक चरण में दो तगण, एक जगण और अन्त में दो गुरु क्रम से युक्त एकादश वर्णों वाला समवृत्त छन्द है ।[4] श्रीमद्भागवत में अनेक स्थलों पर इन्द्रवज्रा छंद का प्रयोग पाया जाता है ।

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥[5]

प्रथम स्कंध में सूतोपदिष्ट शुकदेव की स्तुति में इस छंद का प्रयोग हुआ है ।

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥[6]

---

१. श्रीमद्भागवत १.९.३२
२. वदन्ति वंशस्थविलं जतौ जरौ—छन्दोमञ्जरी पृ० ४६
३. श्रीमद्भागवत २.४.१४
४. स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः—छन्दोमञ्जरी पृ० १३
५. श्रीमद्भागवत १०.२.२६
६. तत्रैव १.२.२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपेन्द्र वज्रा

यह चार चरणों से युक्त समवृत्त छन्द है। प्रत्येक चरण में जगण, तगण, जगण एवं दो गुरु के क्रम से ग्यारह अक्षर होते हैं।[1] श्रीमद्भागवत की स्तुतियों में अनेक स्थलों पर इस छंद का प्रयोग प्राप्त होता है।

स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन्भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः ।
भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् ॥[2]

इस उपेन्द्रवज्रा छन्द के द्वारा भक्त की महिमा का प्रतिपादन किया गया है।

(६) मालिनी

"न नमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः" अर्थात् मालिनी समवृत्त छंद है। इसके प्रत्येक चरण से नगण, नगण, मगण, यगण तथा यगण क्रम से पन्द्रह अक्षर होते हैं। आठवें एवं सातवें अक्षर के बाद यति होती है। श्रीमद्भागवत के अंत में सूत जी द्वारा शौनकादि ऋषियों के लिए संक्षिप्त भागवत की विषय सूची के वर्णन के बाद मालिनी छन्द में भगवान् श्रीकृष्ण के अनन्योपासक श्रीलशुकदेव गोस्वामी को नमस्कार किया गया है—

स्वसुखनिभृतचेतास्तद्व्युदस्तान्यभावोऽप्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम् ।
व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनुं नतोऽस्मि ॥[3]

(७) इन्द्रवंश

यह समवृत्त छन्द है। इसके चारों चरण समान होते हैं। प्रत्येक चरण में दो तगण, जगण और रगण के क्रम से १२ अक्षर होते हैं। यह वंशस्थ के समान ही है, केवल इसमें आदि अक्षर गुरु हो जाता है। "तच्चेन्द्रवंशा प्रथमेऽक्षरे गुरौ।"[4]

स्तुतियों के अनेक स्थलों पर इस छन्द का विनियोग मिलता है। विशेषकर भक्ति की महत्ता एवं दर्शन के तत्त्वों को उद्घाटित करने के लिए भागवतकार ने इस द्वादशाक्षर वृत्त का प्रयोग किया है। कुछ स्थल द्रष्टव्य हैं—

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥[5]

---

१. उपेन्द्र वज्राप्रथमे लघौ सा। छन्दोमञ्जरी, चौखम्बा सुरभारती १९८३, पृ० ३४
२. श्रीमद्भागवत १०।२।३१
३. तत्रैव १२.१२.६८
४. छन्दोमंजरी, द्वितीय स्तवक, पृ० ४६, २।१३
५. श्रीमद्भागवत २.४.१५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके प्रत्येक चरण में त, त, ज और रगण के क्रम से १२ अक्षर हैं। अन्य उदाहरण के लिए इसी स्तुति का २३ वां श्लोक द्रष्टव्य है।

(८) वसन्ततिलक

वसन्ततिलक छन्द में चारो चरण समान होते हैं। प्रत्येक चरण में तगण, भगण दो जगण एवं दो गुरु वर्ण होते हैं। यह चतुर्दश अक्षरों वाला वृत्त है।

ज्ञेयं वसन्ततिलकं तभजाजगौ गः।[1]

भागवतकार का यह अत्यन्त प्रिय छन्द है। भक्ति की महनीयता का प्रतिपादन इस छन्द के माध्यम से किया गया है। सम्पूर्ण ध्रुवस्तुति एवं प्रह्लाद स्तुति इसी छन्द में उपन्यस्त है। एक भक्ति परक श्लोक जिसमें ध्रुव भक्ति की ही याचना करता है

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो भूयादनन्त महताममलाशयानाम्।
येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः॥[2]

अनेक स्तुतियों में इस छंद का उपयोग हुआ है।

९. शार्दूलविक्रीडित

जिसके चारों चरणों में क्रमशः मगण, सगण, जगण, तगण, तगण और गुरु वर्ण हों उसे शार्दूलविक्रीडित छन्द कहते हैं—"सूर्याश्वैर्यदिमः सजौ सततगाः शार्दूलक्रीडितम्"[3]। इसमें १२ और सात वर्णों पर यति होती है।

श्रीमद्भागवत के अनेक स्तुतियों में यह छन्द मिलता है। ब्रह्माकृत भगवत्स्तुति में दो श्लोक इस छन्द में निबद्ध है। अन्यत्र भी यत्र-तत्र इसका अत्यल्प उपयोग हुआ है—

अद्यैव त्वदृतेऽस्य किं मम न ते मायात्वमादर्शित
मेकोऽसि प्रथमं ततो व्रजसुहृद् वत्साः समस्ता अपि।
तावन्तोऽसि चतुर्भुजास्तदखिलैः साकं मयोपासिताः
तावन्त्येव जगन्त्यभूस्तदमितं ब्रह्माद्वयं शिष्यते॥[4]

१०. उपजाति

भागवतीय स्तोताओं का यह प्रिय छन्द है। इसका स्वतंत्र रूप नहीं होता है। दो छन्दों के सम्मिलन से इसका रूप निर्धारण होता है। इसके अनेक रूप पाये जाते हैं। श्रीमद्भागवत में निम्नलिखित रूप मिलते हैं—

---

१. छन्दोमंजरी, पृ० ६५, २।१५
२. श्रीमद्भागवत ४.९.११
३. छन्दोमंजरी, पृ० १००
४. श्रीमद्भागवत १०.१४.१८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. वंशस्थ + इन्द्रवज्रा
२. वंशस्थ + इन्द्रवंशा
३. इन्द्रवज्रा + उपेन्द्रवज्रा

१. वंशस्थ और इन्द्रवज्रा के योग से निष्पन्न उपजाति का उदाहरण—

अप्यद्य नस्त्वं स्वकृतेहित प्रभो जिहाससि स्वित्सुहृदोऽनुजीविनः ।
येषां न चान्यद्भवतः पदाम्बुजात् परायणं राजसु योजितांहसाम् ॥[1]

२. वंशस्थ और इन्द्रवंशा के योग से निष्पन्न उपजाति का उदाहरण—

स वै किलायं पुरुषः पुरातनो य एक आसीदविशेष आत्मनि ।
अग्रे गुणेभ्यो जगदात्मनीश्वरे निमीलितात्मन्निशि सुप्तशक्तिषु ॥[2]

३. इन्द्रवज्रा और उपेन्द्र वज्रा के योग से निष्पन्न उपजाति का उदाहरण—

नमाम ते देव पदारविन्दं प्रपन्नतापोपशमातपत्रम् ।
यन्मूलकेता यतयोऽञ्जसोरु संसारदुःखं बहिरुत्क्षिपन्ति ।[3]

११. स्रग्विनी

यह समवृत्त छन्द है । प्रत्येक चरण में चार रगण के क्रम से १२ अक्षर होते हैं ।[4] श्रीमद्भागवतीय स्तुतियों में अनेक स्थलों पर यह छन्द प्राप्त होता है । यजमान पत्नी दक्ष यज्ञशाला में उपस्थित भगवान् विष्णु की स्तुति कर रही है—

स्वागतं ते प्रसीदेश तुभ्यं नमः श्रीनिवास श्रिया कान्तया त्राहि नः ।
त्वामृतेऽधीश नाङ्गं मखः शोभते शीर्षहीनः कबन्धो यथा पूरुषः ॥[5]

१२. मन्दाक्रान्ता

जिसके प्रत्येक चरण में मगण, भगण, नगण, तगण, नगण तथा दो गुरु वर्ण हों उसे मन्दाक्रान्ता छन्द कहते हैं ।[6] दक्ष ऋत्विज भगवान् विष्णु की स्तुति मन्दाक्रान्ता में करते हैं—

उत्पत्त्यध्वन्यशरण उरुक्लेशदुर्गेऽन्तकोग्र
व्यालान्विष्टे विषयमृगतृष्यात्मगेहोरुभारः ।
द्वंद्वश्वभ्रे खलमृगभये शोकदावेऽज्ञसार्थः
पादौकस्ते शरणद कदा याति कामोपसृष्टः ॥[7]

---

१. श्रीमद्भागवत १.८.३७
२. तत्रैव १.१०.२१
३. तत्रैव ३.५.३८
४. छन्दोमंजरी, पृ० ४९
५. श्रीमद्भागवत ४.७.३६
६. छन्दोमंजरी, पृ० ८८
७. श्रीमद्भागवत ४.७.२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके अतिरिक्त भागवतीय स्तुतियों में वातोर्मि (४.७.३१) सुन्दरी (४.७.४२) प्रहर्षिणी (४.७.३३) भुजंगप्रयात (४.७.३५, १०.८.४७) शालिनी (४.७.३७) मंजुभाषिणी (४.७.३९) मत्तमयूर (४.७.४३) प्रमाणिका (७.८.४९) एवं आर्यावृत्त (६.१६.३४-४७) आदि छन्द भी मिलते हैं।

स्तुतियों की भाषा

स्तुतियों की भाषा भक्त हृदय से निःसृत होने के कारण स्वभाव रमणीय एवं प्रसाद-गुण मंडित होती है। छल-प्रपंच रहित, प्रभु के चरणों में सर्वात्मना समर्पित भक्त की वाणी स्वभावतः बाह्याडम्बर रहित और नैसर्गिक सुषमा से सुशोभित होती है। भागवतीय भक्तों की स्तुतियों में सर्वत्र सौन्दर्य-चारुता विद्यमान है। छोटे-छोटे सामासिक पदों एवं श्रुति-मधुर शब्दों का उपयोग हुआ है। कहीं-कहीं दार्शनिक तथ्यों के विवेचन के अवसर पर या युद्ध आदि के निरूपण के समय समास बहुला भाषा प्रयुक्त हुई है।

श्रीमद्भागवतमहापुराण वस्तुतः व्यास की समन्वय-भावना का निदर्शक है। भाषा में भी यह तथ्य परिलक्षित होता है। एक तरफ गौड़ी का बाह्याडम्बर एवं ओजगुण की धर्मता विद्यमान है, तो दूसरी ओर वैदर्भी एवं प्रसाद गुण की चारुता सहज-संवेद्य है। कुछ प्रमुख स्तुतियों की भाषा पर प्रकाश डाला जाएगा।

इस क्रम में सर्वप्रथम प्रथम स्कन्ध की दो स्तुतियां. कुन्तीकृत श्रीकृष्ण स्तुति (१.८.१८-४३) एवं हस्तिनापुर की कुलरमणियों द्वारा कृत श्रीकृष्ण स्तुति (१.१०.१२-३०) है। दोनों स्तुतियों में नारी-सुलभ सरल भाषा तथा प्रसाद गुण ओत-प्रोत है। श्रीकृष्ण के विविध उपकारों से उपकृत होकर कुन्ती विगलित हृदय से प्रभु श्रीकृष्ण की स्तुति करती है। भाषा की सहजता, स्वाभाविक रमणीयता, वैदर्भी का अनुपम विलास तथा श्रुति मधुर शब्दों का विन्यास अवलोकनीय है—

विपदः सन्तु नः शश्वदत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥[1]

इस स्तुति में एक तरफ "आत्मारामाय शान्ताय" आदि समासरहित पदों का उपयोग हुआ है, वहीं दार्शनिक विवेचन में लम्बे-लम्बे सामासिक पदों—"माया जवनिकाच्छन्नमज्ञाधोक्षजमव्ययम्" का भी प्रयोग हुआ है। इसमें अनुष्टुप्, उपजाति एवं वसन्ततिलका छन्दों तथा उपमा, काव्यलिङ्ग, परिकर आदि अलंकारों का सुन्दर विन्यास हुआ है। नमस्ये, मन्ये, आददे आदि आत्मनेपदीय रूपों के अतिरिक्त परस्मैपदीय रूपों का भी उपयोग हुआ है।

---

१. श्रीमद्भागवत-१.८.२५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हस्तिनापुर कुलरमणीकृत श्रीकृष्ण स्तुति वंशस्थ और इन्द्रवंश मिश्रित उपजाति छन्द में निबद्ध है। प्रसाद गुण से संवलित नारी सुलभ सरल शब्दावली का प्रयोग हुआ है। दार्शनिक विचारों की मनोरम शय्या पर शृंगार रस का मोहक एवं विलक्षण दृश्य यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होता है। भाव-प्रकाशन में नैसर्गिक रमणीयता एवं स्वाभाविक कोमलता विद्यमान है। शब्द सौष्ठव एवं पदावली का मधुमय विन्यास हृदयावर्जक है। समासरहित या छोटे-छोटे समासयुक्त पदों का विनियोग हुआ है।

भाषा सौष्ठव की दृष्टि से भीष्मकृत श्रीकृष्ण स्तुति अतुलनीय है। इस स्तोत्र में एक तरफ भक्ति की शान्तसलिला विद्यमान है, तो दूसरी तरफ भीष्म प्रयाण से करुणा का अगाधसागर और इसी बीच वीररस का सौन्दर्य संगम का काम करता है। भीष्म ज्ञानी हैं। मन वाणी और वृत्तियां सब कुछ श्रीकृष्ण में एकत्रावस्थित कर चुके हैं। इनकी भाषा ज्ञानी भक्तों की भाषा है। श्रीकृष्ण के युद्धवीर रूप के वर्णन—"धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गुः" में चित्त का विस्तार एवं दीप्ति युक्त ओजगुण का सौन्दर्य अवलोकनीय है तो "त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं" आदि में माधुर्य की सातिशय कोमलता।

आत्मविद्याविशारद, आत्मक्रीड, विजितात्मा श्रीशुकदेव कृत भगवत् स्तुति की भाषा अत्यन्त सुन्दर है। इस स्तोत्र में दार्शनिक तत्त्वों के विवेचनावसर पर जहां सामासिक पदावलियां प्रयुक्त हैं, वहां भक्ति संबंधी आत्म-समर्पण की महिमा विवेचन के लिए सरल, सुबोध, श्रुतिमधुर शब्द भी गुम्फित हैं। भक्ति विवेचन के अवसर पर प्रसाद गुणमण्डित सुन्दर शब्दों का विन्यास कितना हृदयावर्जक बन पड़ा है -

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम्।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः॥
यद्ङ्घ्रयभिध्यानसमाधिधौतया धियानुपश्यन्ति हि तत्त्वमात्मनः।
वदन्ति चैतत्कवयो यथारुचं स मे मुकुन्दो भगवान् प्रसीदताम्॥[1]

उपरोक्त पंक्तियों में जहां "सुभद्रश्रवसे" शब्द का प्रयोग आत्मसमर्पण घोषित करता है, वहां 'प्रसीदताम्' की चारु-योजना द्वारा भगवान् के अनुग्रह प्रसाद की वर्षा के लिए पराभक्ति की अभिव्यंजना की गई है। समष्टि में व्यष्टि की एकात्मकता की तीव्रकामना है। सर्वत्र श्रुतिमधुर शब्दावली अनुगुंजित है।

तृतीय स्कन्धान्तर्गत ब्रह्माकृत विष्णु स्तुति (३.९.१-२५) की भाषा रमणीय है। इस स्तोत्र की पदशय्या रुचिकर एवं हृदयावर्जक है। गौड़ीरीति में निबन्धन के कारण समास-बहुला पदावली है, लेकिन प्रसाद गुण की

१. श्रीमद्भागवत महापुराण २.४.१५ एवं २.४.२१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनोरमता सर्वत्र विद्यमान है। शब्दों की श्रुतिमधुरता और अर्थ-गाम्भीर्य इस स्तोत्र का वैशिष्ट्य है। "भक्ति रहित जीव ही संसार में कष्ट पाते हैं—इस रहस्योद्घाटन में भाषा की अभिव्यंजकता एवं सहज सम्प्रेषणीयता अवलोकनीय है—

तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः॥[1]

ऋषिगणकृत वाराहस्तुति (३.१३.३४-४५) में प्रसादगुणमण्डित रमणीय शब्दों का सौन्दर्य हृदयावर्जक है। भगवान् के शरीर एवं विविधाङ्गों के वर्णन के प्रसंग में कोमल पदावली का विन्यास हुआ है, वही उनकी, वीरता, पराक्रम को उद्घाटित करने के लिए गभीर पदों का विनियोग किया गया है। रूपकों के प्रयोग से भाषिक सम्प्रेषणीयता को अत्यधिक बल मिला है। सुन्दर रूपक का उदाहरण - जिसमें भगवान् वाराह को यज्ञ रूप में, उनके थुथनी, नासिक छिद्रों, उदर, कानों, मुख, कण्ठ छिद्र एवं चबाना आदि अंगों एवं क्रियाओं को क्रमशः यज्ञीय स्रुक् स्रुवा, इडा (यज्ञीय भक्षण पात्र) चमस, प्राशित्र, सोमपात्र एवं अग्निहोत्र के रूप में रूपायित किया गया है—

स्रक्तुण्ड आसीत्स्रुव ईश नासयो रिडोदरे चमसाः कर्णरन्ध्रे।
प्राशित्रमास्ये ग्रसने ग्रहास्तु ते यच्चर्वणं ते भगवन्नग्निहोत्रम्॥[2]

"जितं जितं तेऽजित यज्ञभावन" में काव्यलिंग एवं अनुप्रास अलंकारों की समन्वित चारुता एवं 'मतङ्गजेन्द्रस्यसपत्रपद्मिनी' में उपमोत्प्रेक्षा का सौन्दर्य अवलोकनीय है। इस स्तोत्र में लघु सामासिक पदों का विनियोग हुआ है।

पंचशलोकीय सनकादिकृत विष्णु स्तुति (३.१५.४६.५०) की भाषा श्रुतिमधुर है। यत्र-यत्र लघु सामासिक पदों का प्रयोग हुआ है। प्रसाद गुण का प्रभाव सर्वत्र परिलक्षित होता है। भक्ति विवेचनावसर पर भाषिक सौन्दर्य कितना सुन्दर बन पड़ा है -

कामं भवः स्ववृजिनैर्निरयेषु नः स्ताच्चेतोऽलिवद्यदि नु ते पदयो रमेत।
वाचश्च नस्तुलसिवद्यदितेऽङ्घ्रिशोभाः पूर्येत ते गुणगणैर्यदि कर्णरन्ध्रः॥[3]

गर्भस्थ जीव कृत विष्णु-स्तुति (३.३१.१२-२१) हृदयावर्जक भाषा में निबद्ध है। भावी संकट की आशंका एवं संसार की बन्धन रूपता को लक्षित कर मातृगर्भस्थ जीव आतंकित हो उठता है। उसकी भावनाएं

---

१. श्रीमद्भागवत महापुराण ३.९.६
२. तत्रैव ३.१३.३६
३. तत्रैव ३.१५.४९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विगलित होकर सुन्दर शब्दों के माध्यम से उसी सर्जनहार के प्रति समर्पित होने लगती है। जिसने उसे इस मातृगर्भ में डाला है ···

तस्योपसन्नमवितुं जगदिच्छयाऽऽत्त नानातनोर्भुवि चलच्चरणारविंदम् ।
सोऽहं व्रजामि शरणं ह्यकुतोभयं मे येनेदृशी गतिरदर्श्यसतोऽनुरूपा ॥[1]

सुन्दर पदावलियों का विनियोग, सहजसम्प्रेषणीयता, स्वाभाविक अभिव्यंजना आदि के द्वारा इस स्तोत्र की भाषा अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है।

देवहूतिकृत कपिलस्तुति (३.३३.२-८) में नारी सुलभ सहज भाषा का प्रयोग हुआ है। वैदर्भी रीति संवलित, प्रसादगुण मण्डित पदावलियों का प्रयोग हुआ है, जो श्रुतिमधुर एवं हृदयावर्जक है··· देवहूति अपने वात्सल्य और प्रभु की गुणवत्ता को एक ही साथ बड़ी ही सुन्दर शब्दों में प्रकट करती है—

स त्वं भृतो मे जठरेण नाथ कथं नु यस्योदर एतदासीत् ।
विश्वं युगान्ते वटपत्र एकः शेते स्म मायाशिशुरङ्घ्रिपानः ॥[2]

ब्रह्माकृत शिव (रुद्र) स्तुति (४.६.४२-५३) भगवान् शिव की महानता एवं भक्तवत्सलता को प्रतिपादित करने के लिए कोमल कान्त पदावली का प्रयोग किया गया है। इस स्तोत्र की भाषा भक्तिरस से प्लावित, प्रसादगुण से मण्डित एवं अनुष्टुप् तथा उपजाति उभय छन्दों की रमणीयता से परिपूर्ण है।

भक्तराज ध्रुवकृत विष्णु स्तुति (४.९.६-१७) भक्त समुदाय में अत्यन्त प्रथित है। दर्शन के गूढ़ तत्त्वों एवं भक्ति की मनोरम भावों की अभिव्यंजना में स्तोत्र की भाषा सुन्दर बन पड़ी है। यह अतिशय मनोहर और शान्तरस से परिप्लावित है। श्रुतिमधुर शब्दों की चारुशय्या पर यह भाव-मधुर स्तोत्र अधिष्ठित है। इसकी रचना समास बहुला गौड़ीरीति में है, लेकिन प्रसाद गुण का वैशद्य सर्वत्र विद्यमान है। वसन्ततिलका का सौन्दर्य सहजसंवेद्य है। भक्ति की व्याख्या से सम्बद्ध श्लोक कितना सुन्दर है ···

भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो भूयादनन्त महताममलाशयानाम् ।
येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः ॥[3]

पृथुकृत विष्णुस्तुति (४.२०.२३-३१) भक्तिशास्त्र की दृष्टि से जितना महत्त्वपूर्ण है, उतना ही उसकी भाषा पर्यन्तरमणीय है। भक्त हृदय से स्वतः उच्छ्वसित भावों की अभिव्यंजना जितना रमणीय बन पड़ी है वैसा अन्यत्र

१. श्रीमद्भागवत महापुराण ३.३१.१२
२. तत्रैव ३.३३.४
३. तत्रैव ४.९.११

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुर्लभ है। जब धरती का एकक्षत्र सम्राट् महेन्द्र राज्य एवं स्वर्ग से ऊपर उठकर प्रभु चरण सेवा की याचना करता है तब भाषिक सौन्दर्य अत्यन्त उदात्त बन पड़ा है। अवलोकन करने योग्य है— प्रस्तुत संदर्भ जहां पर भक्ति और मुक्ति, स्वर्ग और अपवर्ग, ज्ञान और योग को तिरस्कृत कर भक्त सहस्रो कानों की याचना इसलिए करता है कि वह प्रभु का नाम कीर्तिन गुण-गान जितना अधिक हो कर सके—

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचित् न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः।
महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः।[1]

लघु सामासिक पदों का प्रयोग एवं प्रसाद गुण के वैशद्य के साथ-साथ भावों की सहज एवं सशक्त अभिव्यंजना के कारण भाषा सुन्दर है।

प्रचेतागणकृत विष्णु स्तुति (४.३०.२२.४२) की भाषा अत्यन्त सरल है जिसके माध्यम से भावों की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। लघु सामासिक पदों का विरल प्रयोग हुआ है, जो प्रसादगुण से मण्डित है। यमकृत हरिस्तुति (६.३.१२-३०) में उपजाति, अपुष्टुप् एवं वसन्ततिलका छन्दों के साथ अर्थालंकारों की सातिशय मनोरम अभिव्यंजना के फलस्वरूप उसकी भाषा रमणीय बन पड़ी है। इस स्तोत्र में यत्र-तत्र लघु काय समासबहुला पदों का विनियोग हुआ है तथा यह प्रसाद गुण से पूर्णतः प्रसिक्त है।

प्रजापतिदक्षकृत विष्णुस्तुति (६.४.२३-३४) जो सभी कामनाओं को देने वाला "हंसगुह्यस्तोत्र" नाम से प्रसिद्ध है, उसकी भाषा प्रसाद एवं माधुर्य गुण से मण्डित एवं रमणीय पद-विन्यास से सुसज्जित है। आनुप्रासिक छटा अवलोकनीय है—

न यस्य सख्यं पुरुषोऽवैति सख्युः सखा वसन् संवसतः पुरेऽस्मिन्।
गुणो यथा गुणिनो व्यक्तदृष्टेः तस्मै महेशाय नमस्करोमि॥[2]

वृत्रासुरकृतभगवत्स्तुति (६.११.२४-२७) लघु कलेवरीय होते हुए भी भगवद्भक्तिपूर्ण है। भक्त हृदय से संभूत स्वाभाविक भाषा का प्रयोग हुआ है। यह प्रसाद गुण से संवलित तथा श्रुतिमधुर है। एक ही श्लोक में तीन-तीन दृष्टान्तों के प्रयोग से भाषा सम्प्रेषणीयता, सहजाभिव्यंजकता एवं स्वाभाविक-चारुता से युक्त हो गयी है। स्वभावरमणीय एवं निसर्ग सौन्दर्यावेष्टित श्लोक दर्शनीय एवं श्रवणीय है[3]।

चित्रकेतु कृत भगवत्स्तुति (६.१६.३४-४८) की भाषा प्रांजल एवं उदात्त है। संसार से विरक्त चित्रकेतु भागवत-धर्म की महत्ता एवं भक्ति-

---

१. श्रीमद्भागवत महापुराण ४.२०.२४
२. तत्रैव ६.४.२४
३. तत्रैव ६.११.२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माहात्म्य का प्रतिपादन करता है। इस क्रम में उसकी भाषा सुन्दर एवं लघु सामासिक पदों से युक्त बन गई है। प्रसाद गुण की चारुता एवं वैदर्भी की नैसर्गिक रमणीयता सर्वत्र विद्यमान है।

प्रह्लाद कृत नृसिंह स्तुति (७,९.८-५०) विपुलकाय है। इसमें ईश्वरानुरक्ति से पूर्ण पराभक्ति, शाश्वतधर्म, भक्त के सहजदैन्य तथा सत्संगति की गाथा की अभिव्यक्ति है। यह श्रुति-मधुर एवं ललित शब्दावलियों में विरचित प्रसादगुण से मण्डित है। संस्कृत की कोमलकान्त पदावलियों की सर्वत्र विद्यमानता है। सुकुमारमति स्तोता प्रह्लाद ब्रह्मसंस्पर्श से पूर्णतः प्रभावित है, अतः इसके नाम के अन्वर्थता के अनुरूप आह्लादमयी भाषा में निबद्ध इस स्तोत्र में सर्वत्र एक सदृश्य प्रवाह है। भक्ति के विभिन्न अंगों के विवेचनावसर पर भाषा की स्वाभाविक रमणीयता हृदयावर्जक है—

तत् तेऽर्हत्तम नमःस्तुतिकर्मपूजाः कर्म स्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायाम्।
संसेवया त्वयि विनेति षडङ्गया किं भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत॥[1]

गजेन्द्रकृत विष्णुस्तुति (८.३.२-२९) रमणीय स्तोत्र है। इसमें निर्गुण ब्रह्म का विशद विवेचन और विपदग्रस्त हृदय गजराज के करुण क्रन्दन की अभिनव अभिव्यक्ति है। शब्दाडम्बर विहीन इस स्तोत्र की भाषा प्रांजल एवं उदात्त है। अतिलघुकाय अनुष्टुप् छन्दों की मंजूषा में संचित यह वेदान्त का महनीय-कोश है। सुन्दर शब्दों का विन्यास एवं स्वाभाविकी अभिव्यक्ति से भाषा अत्यन्त प्रांजल हो गई है। गजेन्द्र आपद्ग्रस्त स्थिति में हृदय में संचित जन्मजन्मान्तरीय भावनाओं को प्रभु के प्रति समर्पित करता है, जिस कारण से सहजता और सरलता सर्वत्र विद्यमान है।

ब्रह्मादिकृत श्रीकृष्ण (गर्भस्थ) स्तुति (१०.२.२६-४१) में भक्ति तथा ज्ञान का मणिकांचन संयोग सूत्र शैली में प्रतिपादित है। भगवान् के मंगलमय नाम-रूप के गुणन, मनन, स्मरण, चिन्तन, कीर्तन, दर्शन एवं आराधन की महिमा प्रसादमयी प्रांजल-मनोरम भाषा में गुम्फित है। इसमें सामासिक एवं सन्धियुक्त पदों का अभाव है। सर्वत्र श्रुतिमनोहर शब्दों का विन्यास हुआ है। भागवतकार ने इसमें संस्कृत भाषा के लालित्य एवं सारल्य तथा भाव गांभीर्य का अभिनन्दनीय आदर्श प्रस्तुत किया गया है। सत्यस्वरूप के प्रतिपादन में भाषिक सौन्दर्य रमणीय बन पड़ा है[2]—

दशश्लोकात्मक यमजार्जुनकृत श्रीकृष्ण स्तुति (१०.१०.२९-३८) में श्रीकृष्ण की आश्चर्यमयी महिमा, उनकी भक्त-वत्सलता एवं भक्त-हृदय की आन्तरिक लालसा की अभिव्यक्ति हुई है। श्रुतिमनोहर कोमलकान्तपदावली

---

१. श्रीमद्भागवत ७.९.५०

२. तत्रैव १०.२.२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से युक्त यह स्तोत्र प्रसाद एवं माधुर्य गुण से मण्डित है। लघु सामासिक पदों के प्रयोग से भाषा में स्वाभाविक रमणीयता विद्यमान है। इसका अंतिम श्लोक भक्ति शास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त महनीय तो है ही साथ-साथ संसारिक जीवों के लिए प्रभु के मधुमय निकेतन में गमनार्थ सुदृढ़ पथ भी है—

वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः
स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥[1]

ब्रह्माकृत श्रीकृष्ण स्तुति (१०.१४.१-४०) विपुलकाय स्तोत्र है। इसकी भाषा अत्यन्त प्रांजल एवं सहजग्राह्य तथा शब्द विन्यास अतिशय मनोरम है। परम-रमणीय लघु सामासिक पदावलियों का विनियोग हुआ है। श्रुतिमधुर शब्दों का चयन, उत्कृष्ट अलंकारों का प्रयोग एवं भव्य भावपूर्ण कल्पनाओं की सृष्टि, सभी हृदयावर्जक हैं। इसके बार-बार पारायण से हृदय में रस की सरिता प्रवाहित होने लगती है। प्रसिद्ध सूक्ति 'क्षणे क्षणे यन्नवता मुपेति तदेव रूपं रमणीयतायाः "का यह अद्भुत क्रीडा स्थल है। कोमलकान्त पदावलियों में संश्लिष्ट यह स्तुति मधुरिमा से परिप्लुत तो है ही "सद्यःपरनिर्वृति" में सक्षम एवं अतिशय समर्थ भी है। विविधालंकारों के प्रयोग से भाषिक सुन्दरता में संवृद्धि हो गयी है।

रुद्रकृत श्रीकृष्णस्तुति (१०.६३.३४-४५) की भाषा श्रुतिमधुर एवं प्रांजल है। भगवान् श्रीकृष्ण के शौर्य, महिमा, पराक्रम तथा उनकी माया के प्रभाव का प्रतिपादन सुन्दर शब्दों में किया गया है। प्रसाद गुण का प्रभाव सर्वत्र परिलक्षित है। लघु सामासिक पदावलियों का प्रयोग किया गया है।

जरासन्ध कारागार के बन्दी नृपतिगण जरासन्ध की क्रूरता से त्रस्त होकर अपनी रक्षा के लिए प्रभु श्रीकृष्ण से दूत के माध्यम से स्तुति (१०.७०.२५-३०) करते हैं। इस लघु कलेवरीय स्तोत्र में आर्तभाव की प्रधानता होने से भाषा में स्वाभाविक गतिशीलता आ गयी है। लघु सामासिक पदावलियों का उपयोग हुआ है। यह संपूर्ण स्तोत्र प्रसादगुण से संवलित श्रुतिमधुर शब्दावलियों में गुम्फित है। भगवान् श्रीकृष्ण की शरणागत वत्सलता का प्रतिपादक श्लोक भाषिक सौन्दर्य की दृष्टि में अत्यन्त रमणीय है

तन्नो भवान् प्रणतशोकहराङ्घ्रियुग्मो बद्धान् वियुङ्क्ष्व मगधाह्वयकर्मपाशात्।
यो भूभुजोऽयुतमतङ्गजवीर्यमेको बिभ्रद् रुरोध भवने मृगराडिवावीः ॥[2]

---

१. श्रीमद्भागवत महापुराण १०.१०.३८

२. तत्रैव १०.७०.२९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वसुदेवकृत श्रीकृष्णस्तुति (१०.८५.२८) में भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा का प्रतिपादन क्रम में भाषिक सौन्दर्य, सम्प्रेषणीयता और सहजाभिव्यंजकता अवलोकनीय है। मनोरम शब्दों का विनियोग हुआ है। संपूर्ण श्लोक प्रसाद एवं माधुर्यगुण से मण्डित है। समर्पण भावना से युक्त प्रस्तुत श्लोक का श्रुतिमधुर पदविन्यास अवलोकनीय है—

तत्ते गतोऽस्म्यरणमद्य पदारविन्दमापन्नसंसृतिभयापहमार्तबन्धो।
एतावतालमलमिन्द्रियलालसेन मर्त्यात्मदृक् त्वयि परे यदपत्यबुद्धिः॥[1]

श्रुतिकृतभगवत्स्तुति (१०.८८.१४-४१) कोमलकांत पदावली में विरचित है। इस स्तोत्र में गम्भीर तात्त्विक विषयों का विवेचन हृदयावर्जक है। इसमें सामासिक शैली का प्राचुर्य तो है ही साथ-साथ प्रसाद गुण एवं माधुर्य गुण का पुट वर्तमान है। अर्थ-गाम्भीर्य के कारण सारस्वतजन सहज रूप में अवगाहन कर सकते हैं।

पात्रानुसार भाषा में वैलक्षण्य दिखाई पड़ता है। जब कोई भक्त सहज भाव से स्तुति करता है तब उसकी भाषा अत्यन्त सरल होती है, लेकिन जब भक्त की मानसिक स्थिति अति उन्नत होती है, वह स्वयं प्राप्त विविध शास्त्रों का ज्ञान अपनी स्तुति में अभिव्यक्त करने लगता है या उसका प्रतिपाद्य विषय दर्शन से संबद्ध हो तो उसकी भाषा का दुरूह होना स्वाभाविक है। "विद्यावतां भागवते परीक्षा" और "विद्या भागतावधिः" आदि सूक्तियां यहां पूर्णतः प्रस्थापित हैं। सभी दर्शनों का सार प्रस्तुत कर भागवतधर्म की प्रतिष्ठा की गई है।

इस प्रकार भागवतीय स्तुतियों में भाषा का वैविध्य परिलक्षित होता है। एक ही स्तुति में जहां भक्ति या शरणागति का विवेचन करना है तो "रतिमुद्वहतादद्धागंगेवौघमुदन्वति"[2] की तरह सरल एवं सहज ग्राह्य पदों का विनियोग हुआ है, तो वहीं पर "मायाजवनिकाच्छन्नमज्ञाधोक्षजमव्ययम्"[3] जैसे संपूर्ण पंक्ति में एक ही शब्द का विन्यास परिलक्षित होता है। एक तरफ गोपीगणकृत श्रीकृष्ण स्तुति (१०.२९) में भाषा का सहज प्रवाह है जिसमें सामान्यजन भी सद्यः रम जाता है वहीं दूसरी तरफ श्रुतिकृत भगवत्स्तुति (१०.८७) में अर्थगाम्भीर्य एवं भावों की दुरूहता के कारण बड़े-बड़े विद्वानों की भी परीक्षा होने लगती है। परन्तु सर्वत्र प्रसादगुण का साम्राज्य विद्यमान है।

---

१. श्रीमद्भागवत महापुराण १०.८५.१९
२. तत्रैव १.८.४२
३. तत्रैव १.८.१९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. उपसंहार

वैदिक काल की तन्वङ्गी स्तुति प्रस्रविणी भागवत काल तक आते-आते समस्त वसुन्धरा को आप्यायित करती हुई विराट् रूप धारण करती है। जिस नैसर्गिक कन्या का जन्म ऋषियों के तपोपूत आश्रम में हुआ था, उसका लालन-पालन, साज शृंगार तथा परिष्करण वैयासिकी प्रतिभा से सज्जित भागवतीय महाप्रासाद में सम्पन्न हुआ। जिस अश्मामूर्त्ति का सर्जन वैदिक प्रज्ञावादियों ने किया था, ऋषि वाल्मीकि ने उसे रूपायित किया था, महाभारतकार ने उसे संस्कृत किया था वह मूर्त्ति भागवतीय मधुमय निकेतन में आते-आते प्राणवंत हो उठी।

चाहे प्रज्ञाचक्षुओं द्वारा साक्षात्कृत वेद हों, चाहे महर्षि की करुणामयी वाणी से निःसृत शीतसलिला हो चाहे वैयासिकी ज्ञान गंगा हो या सात्वत-संहिता हो सर्वत्र स्तुति काव्य का सौन्दर्य विलोकनीय है। श्रुतिकाल से लेकर आज तक इसकी परम्परा अविच्छिन्न है।

स्तुति में उपास्य के गुणों का संकीर्तन निहित रहता है। सर्वात्मना प्रभु चरणों में समर्पित एवं मनसा, वाचा, कर्मणा अपने प्रियतम में अधिष्ठित भक्त हृदयस्थ भावों को उस उपास्य किंवा प्रियतम के चरणों में शब्दों के माध्यम से विनिवेदित करता है, उसे ही स्तुति कहते हैं। स्तुति की भाषा सरल हृदय की भाषा होती है। उसमें बाह्य वृत्तियों का सर्वथा अभाव पाया जाता है।

हर्ष, दुःख, आवेग, चिन्ता, आनन्द एवं समाधि की स्थिति में स्तुति काव्य का प्रणयन होता है। भूयोपकार से उपकृत या निश्रेयसवाप्ति होने पर हर्षातिरेक की अवस्था में या सर्वथा निस्सहाय अवस्था में जब आसन मृत्यु सामने खड़ा हो, कोई रक्षक न दिखाई पड़े, अपनी शक्ति भी समाप्त हो तब प्रभु चरणों में स्तुत्यांजलि अनायास ही भक्त हृदय से निःसृत होकर समर्पित होने लगती है। तीसरी एवं सर्वश्रेष्ठ कोटी है जब भक्त की चित्त-वृत्तियां मन, वाणी और शरीर सबके सब प्रभु में एकत्रावस्थित हो जाती हैं, तब उस भक्त के हार्द धरातल से स्तुति उद्भूत होती है।

श्रीमद्भागवत महापुराण स्तुतियों का आकर ग्रन्थ है। विविध विषयात्मक इस महापुराण के शरीर में स्तुतियां प्राणस्वरूप हैं। जैसे प्रभा से सूर्य का, ज्योत्स्ना से चन्द्रमा का, गंगा से भारत का, गन्ध से पृथिवी का,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विस्तार से आकाश का, समाधि से योगी का, त्याग से तपस्वी का, ज्ञान से ज्ञानी का और रूप से रूपवती भार्या का महत्त्व होता है उसी प्रकार स्तुति से भागवतमहापुराण संसार में प्रसिद्ध है। कर्मकालिन्दी, ज्ञानसरस्वती और भक्ति की गंगा, भागवत के पावन संगम पर आकर एकाकार हो जाती हैं।

श्रीमद्भागवतीय स्तुतियों का द्विविधा विभाजन किया है—सकाम और निष्काम। सकाम स्तुतियां लौकिक अभ्युदय, रोग से मुक्ति, कष्ट से त्राण, विपत्ति से रक्षा, मान, यश, धन-सम्पत्ति, पुत्र-पौत्र इत्यादि की अवाप्ति के लिए की गई है। अर्जुन, उत्तरा, दक्ष प्रजापति, ब्रह्मा, देवगण, गजेन्द्र आदि की स्तुतियां इसी कोटी की हैं। निष्काम स्तुतियों में कोई लौकिक कामना नहीं होती, केवल प्रभु प्रेम या प्रभु चरणरति या प्रभु-निकेतन की प्राप्ति की कामना रहती है। इनकी भी दो कोटियां हैं—साधनाप्रधान और तत्त्वज्ञान प्रधान। साधन प्रधान स्तुतियों में भक्त दास्य, सख्य, वात्सल्य प्रेम या प्रपत्ति भाव से प्रभु की स्तुति करता है। प्रभु प्रेम की प्राप्ति एवं उनके सातिशय गुणों का गायन ही उसका लक्ष्य होता है। भक्त अम्बरीष, पृथु, प्रह्लाद आदि की स्तुतियां साधना प्रधान हैं। तत्त्वज्ञान प्रधान स्तुतियां जगत् के एक-एक पदार्थ का निषेध करते-करते अन्त में अपना भी निषेध कर प्रभु में एकाकार हो जाती है। वेदस्तुति और पितामह भीष्म की स्तुतियां इसी विधा के अन्तर्गत हैं। इसके अतिरिक्त उपास्य के आधार पर स्तुतियों के तीन भेद किए गए हैं—ब्रह्मविषयक, विष्णु के अवतार विषयक एवं अन्य देवों से संबद्ध स्तुतियां आदि। भावना के आधार पर स्तुतियों के सात प्रकार हैं—ज्ञानी भक्तों की स्तुतियां, दास्यभाव, सख्य भाव प्रधान, प्रेमभावप्रधान, उपकारभाव प्रधान, आर्तभाव प्रधान एवं कामादि भावों से युक्त स्तुतियां आदि। अवसर के आधार पर तीन भेद हैं—सुखावसान होने पर दुःखावसान होने पर एवं प्राण प्रयाणावसर पर की गई स्तुतियां। भक्तों की सामाजिक स्थिति के आधार पर दो भेद—सर्वस्व त्यागी भक्तों की स्तुतियां एवं गार्हस्थ्य भक्तों की स्तुतियां हैं। इसके अतिरिक्त श्लोकों के आधार पर भी स्तुतियों का विभाजन किया गया है।

श्रीमद्भागवतीय स्तुतियों पर प्राचीन वाङ्मयों में उपन्यस्त स्तुतियों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। सारे सकाम स्तुतियों का मूल उत्स वे वैदिक मन्त्र हैं जिनका प्रत्यक्षधर्मा ऋषि लौकिक अभ्युदय एवं आध्यात्मिक उत्थान के लिए विभिन्न अवसरों पर प्रयोग करता है। निष्काम स्तुतियों का मूल रूप पुरुषसूक्त, नासदीय सूक्त, हिरण्यगर्भ सूक्त, वाक्सूक्त आदि हैं। रामायण की स्तुतियां भी भागवतीयों स्तुतियों को अत्यधिक प्रभावित करती है। याज्ञवल्क्योपदिष्ट आदित्यहृदयस्तोत्र परवर्ती संपूर्ण नामरूपात्मक कवच स्तोत्रों का आद्य स्थल है। भागवत का "नारायणकवच" स्पष्टरूपेण इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रामायणीय स्तोत्र से प्रभावित है। महाभारतीय स्तुतियां भी भागवतीय स्तुतियों का उपजीव्य हैं। कौरव सभा में द्रौपदी द्वारा की गई श्रीकृष्ण स्तुति सारे परवर्ती आर्तस्तोत्रों का उत्स है। लगभग सभी स्तुतियों पर गीता का प्रभाव परिलक्षित होता है। भागवतीय भीष्म स्तुति एवं प्रह्लाद स्तुति का मूल विष्णु पुराण की स्तुतियां हैं। इस प्रकार विभिन्न पूर्ववर्ती ग्रन्थों एवं स्तोत्रों का प्रभाव भागवतीय स्तुतियों पर लक्षित होता है।

श्रीमद्भागवतमहापुराण में दीर्घ-लघु कुल मिलाकर १३२ स्तुतियां विभिन्न भक्तों द्वारा विभिन्न स्थलों पर अपने उपास्य के चरणों में समर्पित की गई हैं।

भागवतीय स्तुतियों के स्तोता समाज के विभिन्न वर्गों से संबद्ध हैं। देव, मनुष्य, पशु, तिर्यञ्च चारों प्रकार के भक्त अपने-अपने उपास्य की स्तुति करते हैं। देवों में ब्रह्मा, इंद्र, सूर्य, चन्द्र आदि हैं। मनुष्य योनि के सभी वर्गों से संबद्ध भक्त स्तुति में तल्लिन दिखाई पडते हैं। अर्जुन, उत्तरा, पितामह भीष्म, हस्तिनापुर की कुल रमणियाँ, ध्रुव, प्रह्लाद, पृथु, राजा अम्बरीष, रन्तिदेव, कंश कारागार में निबद्ध राजागण आदि भक्त राजवंश से संबद्ध हैं। श्रीलशुकदेव, श्रीसूत, सनककुमारादि सर्वस्वत्यागी भक्त स्तुति-कर्म में संलग्न हैं। नारियों में कुन्ती, गोपियां, कुब्जा आदि हैं। गजेन्द्र पशुयोनि का प्रतिनिधित्व करता है। नागपत्नियां तिर्यञ्च योनि की हैं। यक्षादि भी प्रभु की स्तुति करते हैं। विद्याधर नलकुबर-मणिग्रीव प्रभु के उपकार से उपकृत होकर केवल प्रभु सेवा की ही याचना करते हैं।

स्तुतियों में दर्शन के विविध तत्त्वों का विस्तृत विवेचन मिलता है। अद्वैतवाद की प्रतिष्ठापना की गई है। "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति", "एकं सन्तः बहुधा कल्पयन्ति" आदि श्रुतिवाक्यों का स्पष्ट रूपेण स्तुतियों पर प्रभाव परिलक्षित होता है। अद्वय, अखंड, अनन्त, अवाङ्मनसगोचर, शाश्वत, सनातन, सत्यस्वरूप, परब्रह्मपरमेश्वर उपाधि से रहित एवं अविकृत हैं। वही जगत् सृष्ट्यर्थ, भक्त-उद्धारार्थ एवं राक्षस हननार्थ नाम-गुणात्मक होकर सगुण रूप में विभिन्न अवतारों को धारण करता है।

माया ईश्वर की सर्जनेच्छा शक्ति है। विविधाभिधानों से अभिहित यह प्रपंचात्मिका एवं बन्धनरूपा है। जीव, जो परमेश्वरांश ही है, इसी माया के प्रभाव से सांसारिक देह-गेह में फसकर अपना स्वरूप भूल जाता है। वह प्रभु भक्ति किंवा चरणशरणागति से माया का उच्छेदन कर प्रभुस्वरूप हो जाता है। अपने शुद्ध-बुद्ध स्वरूप में स्थित हो जाता है।

विविधरूपासृष्टि ईश्वर की प्रपंचात्मिका माया का विलास है। जल बुद्बुद्वत् इसे क्षणभंगुर एवं सर्परज्जुवत् भ्रमात्मक बताया गया है।

सृष्टि का कर्त्ता, धर्ता और संहारकर्त्ता सगुण नाम रूपात्मक ईश्वर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। वे अपनी निजशक्ति के फलस्वरूप सृष्टि के विभिन्न पदार्थों की सर्जना करते हैं।

श्रीमद्भागवत महापुराण में बहुदेव-विषयक स्तुतियां उपन्यस्त हैं। सबसे अधिक श्रीकृष्ण की स्तुति की गई है। श्रीकृष्ण को सर्वश्रेष्ठ सत्ता के रूप में स्वीकृत किया गया है। इसके अतिरिक्त विष्णु, शिव, राम, संकर्षण, सूर्य, चन्द्र, आदि देवों की भी स्तुतियां की गई हैं। उन स्तुतियों में तत्संबद्ध देव विशेष का स्वरूप स्पष्टरूपेण उभरकर सामने आता है। अतिशय दयालुता, कृपावत्सलता, भक्तरक्षणतत्परता, सर्वसमर्थता सर्वव्यापकता आदि गुण सामान्य रूप में पाये जाते हैं। विष्णु के विभिन्न अवतार वाराह, कूर्म, नृसिंह एवं हंसादिदेवों के स्वरूप पर भी प्रकाश डाला गया है।

भागवतीय स्तोत्रों में भक्ति का साङ्गोपाङ्ग विवेचन उपलब्ध होता है। भगवान् श्रीकृष्ण में अनन्यरति को भक्ति कहा गया है। जिस प्रकार गंगा की अखंडधारा समुद्र में गिरती है, वैसे ही प्रभु चरण में अविच्छिन्न रति भक्ति है। इसके दो भेद होते हैं—साधन भक्ति और साध्य भक्ति। स्मरण, कीर्तन, वंदन, पादसेवनादि नवधा भक्ति साधन भक्ति के अन्तर्गत है, इसे ही गौणी भक्ति भी कहते हैं। साध्य भक्ति की सर्वश्रेष्ठता सर्वविदित है। वह मोक्ष, ज्ञान, वैराग्य और कर्म से श्रेष्ठ है। वह प्रेमरूपा, अमृतस्वरूपा है, उसमें संपूर्णरूपेण समर्पण की भावना निहित रहती है। उसे ही आचार्य शाण्डिल्य ने "सा तु परानुरक्तिरीश्वरे" और भक्त प्रवर नारद ने "तदर्पिताऽखिलाचारिता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति" और "सा तु अमृतस्वरूपा च" कहा है। इसे ही प्रेमा, रागानुगा और एकनिष्ठा भक्ति भी कहते हैं। भक्त ब्रह्मलोक, भूमण्डल का साम्राज्य, रसातल का एकाधिपत्य, योग की सिद्धियां, यहां तक मोक्ष का भी तिरस्कार कर केवल भगवद्भक्ति की कामना करता है। वह वैसा कुछ भी नहीं चाहता जहां पर भगवान् के चरणरज की प्राप्ति न हो।

व्युत्पत्त्यर्थ की दृष्टि से भक्ति का द्विविधत्व सिद्ध है। प्रथम भज-सेवायाम् से निष्पन्न सेवा रूपा भक्ति तथा "भंजोआमर्दने" से निष्पन्न "भवबन्धनविनाशिका" या "भवरोगहन्त्री" भक्ति। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। जैसे-जैसे प्रभु चरणसेवा या चरणरति की वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे संसारिक भावों से उपरतता होती जाती है, और जैसे-जैसे संसारिक क्रियाओं से किंवा भवबन्धन से मुक्ति मिलती जाती है वैसे-वैसे प्रिय के साथ संबन्ध दृढ़ होता जाता है।

स्तुतियों में उत्कृष्ट काव्य के सभी गुणों की प्रतिष्ठापना पूर्ण रूपेण पायी जाती है। माधुर्यादि गुणों का सन्निवेश, शुद्धसंस्कारयुक्त भाषा, अलंकारों की चारुता, प्रसंगानुकूल शैली का प्रयोग, मनोरम एवं श्रुतिमधुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शब्दों की रमणीय सज्जा, भावों की अभिव्यंजना, उक्ति वैचित्र्य, चित्रात्मकता, मार्मिकता, अदोषता, कोमलता, रसमयता आदि जितने भी श्रेष्ठ काव्य के गुण हैं, सब स्तुतियों में समेकित रूप से पाये जाते है।

स्तुतियों में भक्ति के विभिन्न भावों—आर्तभाव, जिज्ञासा भाव, प्रेमभाव, प्रपत्तिभाव, शरणागतिभाव एवं दैन्यभावादि की नैसर्गिक अभिव्यंजना हुई है।

लोकोत्तर आह्लादजनक, ब्रह्मस्वादसहोदर आस्वाद्यरस स्तुतियों का प्राणभूत तत्त्व है। स्तुतियों में रस का सर्वत्र साम्राज्य व्याप्त है। या यह भी कह सकते हैं कि स्तुतियां केवल अमृतस्वरूप सुस्वाद रस ही है जिनका जीवन भर पान करते रहना चाहिए। भक्तिरसामृत सिन्धु में प्रतिपादित सभी मुख्यामुख्य रसों की उपलब्धि यहां होती है।

अलंकरोतीति अलंकार : अलंक्रियतेऽनेन इति अलंकारः "अर्थात् सौन्दर्य का पर्याय अथवा सौन्दर्य का साधन अलंकार है। साहित्याचार्यों का यह द्विविध मत उपलब्ध होता है। भम्मटादिकों ने गुण को काव्य की आत्मा और अलंकार को शोभाधायक या उत्कर्षाधायक बाह्य तत्त्व माना है। स्तुतियों में विविध अलंकारों का चारूविन्यास हुआ है। स्तुतियों में भाषा की सम्प्रेषणीयता एवं भावों की सफल अभिव्यक्ति के लिए अलंकारों का प्रयोग किया गया है। यहां यमक, श्लेष, अनुप्रास, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दीपक, परिसंख्या, परिकर, यथासंख्य, काव्यलिंग आदि अलंकारों का प्रयोग किया गया है।

आंग्ल "इमेज" या इमेजरी" शब्द का हिन्दी रूपान्तर बिम्ब है। बिम्ब विषयक धारणा पाश्चात्त्य आलोचकों की देन है। भारतीय आचार्यों ने शब्दान्तर मात्र से इसका उल्लेख किया है। भागवत में बिम्ब शब्द का उल्लेख भी मिलता है।

कोई भी उत्कृष्ट काव्य बिम्ब से रहित नहीं होता है। बिम्ब के द्वारा वर्ण्य-विषय का स्पष्ट चित्र उभरकर सामने आ जाता है। बिम्ब से बुद्धि एवं भावना विषयक उलझने समाप्त हो जाती है। भागवतीय स्तुतियों में सभी प्रकार के बिम्बों का प्राचुर्य है। अन्तःकरणेन्द्रिय ग्राह्य भाव और प्रज्ञा बिम्ब, बाह्यकरणेन्द्रिय ग्राह्य—रूप, रस, गंध, श्रवण और स्पर्श बिम्बादि का भागवत में प्रभूत प्रयोग उपलब्ध होता है।

पुराणों की शैली प्रतीकात्मक शैली है। विविध गूढ़ तत्त्वों को प्रतीक के माध्यम से पुराणकार ने सहज रूप से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। भाव पदार्थों की मूर्त्त अभिव्यक्ति प्रतीक है।

भागवतीय स्तुतियों में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है। अनुष्टुप्, उपजाति, वसन्ततिलका, वंशस्थ, उपेन्द्रवंशा, इन्द्रवंशा, मालिनी, प्रहर्षिणी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन्दाक्रांता, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, पुष्पिताग्रा आदि सुन्दर छन्दों का विनियोग हुआ है।

गीतिकाव्य के प्रमुख तत्त्वों का समेकित रूप स्तुतियों में उपलब्ध होता है या यों कह सकते हैं कि स्तुतियां गीतिकाव्य के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। भावना, कल्पना, लयात्मकता, चित्रोपमता, श्रुतिमधुरता, संगीतात्मकता, अन्तर्वृत्ति की प्रधानता, रसात्मकता, मार्मिकता, सहजता, स्वाभाविक—अभिव्यंजना आदि गीतिकाव्य के सभी गुण स्तुतियों में उपलब्ध होते हैं।

स्तुतियों की भाषा अत्यन्त सुन्दर, सरल, सहज एवं नैसर्गिक है। सम्प्रेषणीयता एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति पद-पद विद्यमान है। भक्त के शुद्ध एवं अकल्मष हृदय से निःसृत होने के कारण स्तुतियां आह्लादकता एवं रमणीयता से युक्त हैं। प्रसाद एवं माधुर्य गुण का सर्वत्र साम्राज्य स्थापित है। शब्दों की मनोरम शय्या है। सामासिक पदों का यत्किंचित् प्रयोग मिलता है। श्रुतिमधुर शब्दों के प्रयोग से भाषिक चारुता में वृद्धि हो गयी है।

इस प्रकार उसी की कृपा एवं निर्देश प्राप्त कर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में श्रीमद्भागवतमहापुराण के स्तुतियों का विविध दृष्टिकोणों से अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। कहां तक सफलता मिली है, इसमें वही प्रमाण है। इसमें मेरा कहने का कुछ नहीं है। जो कुछ भी है, उसी का है। उसी का धन उसी को समर्पित—

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वानुसृतः स्वाभावात्।
करोमि यत्तद् सकलं परस्मै नारायणायेतिसमर्प्येत्तत्॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदर्भ ग्रन्थ सूची

१. अंग्रेजी हिन्दी कोश—डॉ० कामिल बुल्के, एस० चन्द एण्ड कंपनी, दिल्ली, १९८५

२. अथर्ववेद—विश्वेश्वरानन्द वैदिकशोध संस्थान, होशियारपुर, संवत् २०१८

३. अभिनवभारती—अभिनवगुप्त

४. अमरकोश—चौखम्बा संस्कृत सीरीज

५. अलंकार धारणा विकास और विश्लेषण—डॉ० शोभाकान्त मिश्र, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, १९७२

६. अष्टाध्यायी (मूल मात्र) रामलाल कपूर एण्ड ट्रस्ट

७. अष्टाध्यायी भाष्य—पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु—रामलाल कपूर एण्ड ट्रस्ट

८. आधुनिक कृष्ण काव्य में पौराणिक आख्यान—डॉ० रामशरण गौड़ विभूति प्रकाशन दिल्ली १९७९

९. इतिहास-पुराण-परिशीलन—श्रीरामाशंकर भट्टाचार्य—इण्डोलॉजिकल बुक हाऊस, वाराणसी १९६३

१०. ईशादि नौ उपनिषद्—हिन्दी अनुवाद, गीताप्रेस, गोरखपुर

११. उज्ज्वलनीलमपि – श्री रूपगोस्वामी—निर्णय सागर प्रेस, बंबई १९३२

१२. उत्तररामचरितम्—शुक्लाः—साहित्य भंडार—मेरठ १९८४

१३. उपनिषद्वाक्यकोशः—प्रथम संस्करण

१४. काव्य प्रकाश—विश्वेश्वर टीका—ज्ञान मण्डल लिमिटेड वाराणसी, वि० सं० २०२७

१५. काव्य मीमांसा—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, १९६५

१६. काव्य रूपों के मूल स्रोत और उनका विकास—डा० शकुन्तला दूबे—हिन्दी प्रचार पुस्तकालय वाराणसी, १९६४

१७. काव्यालंकार—भामह—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना

१८. किरातार्जुनीयम्—चौखम्बा विद्याभवन

१९. कुमारसंभवम्—चौखम्बा विद्याभवन

२०. छन्दोमंजरी—चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, १९६३

२१. दशरूपक—ग्रन्थम, कानपुर १९८५

२२. नाट्यशास्त्र—भरत—चौखम्बा विद्याभवन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. नारदभक्ति सूत्र—गीता प्रेस, गोरखपुर
२४. निघण्टु निरुक्त संहित—लक्ष्मणस्वरूप—मो० बनारसीदास
२५. निरुक्त—चौखम्बा विद्याभवन
२६. प्रबोधचन्द्रोदय और उसकी हिन्दी परंपरा—डॉ० सरोज अग्रवाल—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९६२
२७. पाञ्चरात्रागम—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्
२८. पुराण परिशीलन डॉ० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, १९७०
२९. पुराण विमर्श—पं० बलदेव उपाध्याय—शारदा मंदिर, काशी
३०. पौराणिक आख्यानों का विकासात्मक अध्ययन—डॉ० उमापति राय चंदेल—कोणार्क प्रकाशन, दिल्ली, १९७५
३१. ब्रह्मसूत्र—शांकरभाष्य—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, गोविन्द मठ, वाराणसी
३२. बृहदारण्यकोपनिषद्—गीता प्रेस, गोरखपुर
३३. भक्ति का विकास—डॉ० मुंशीराम शर्मा "सोम" चौखम्बा विद्या भवन १९७९
३४. भक्तिदर्शनामृत—स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज—सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, बम्बई
३५. भक्ति रत्नावली—विष्णुपुरी—श्रीराम कृष्ण मठ, मद्रास, १९७९
३६. भक्ति सर्वस्व—स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज, सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट
३७. भक्ति रसामृत सिन्धु—श्रीरूपगोस्वामी—हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
३८. भगवच्चर्या (५ खण्ड) हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस, गोरखपुर
३९. भागवत दर्शन (दो भाग) स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज
४०. भागवत दर्शन—डॉ० हरवंश लाल शर्मा, भारत प्रकाशन मंदिर, अलीगढ़, विक्रम संवत् २०२०
४१. भागवत दर्शनम्—डॉ० रसिक बिहारी जोशी—चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, १९८५
४२. भागवतामृत—स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज, सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, बम्बई।
४३. भागवत सम्प्रदाय—पं बलदेव उपाध्याय—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
४४. भारतीय दर्शन—चटर्जी एवं दत्त—पुस्तक भंडार, पटना, १९८५
४५. भारतीय नाट्य सिद्धांत उद्भव और विकास—डॉ० रामजी पाण्डेय, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, १९८२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६. भारतीय प्रतीक विद्या—डॉ० जनार्दन झा - बिहार राष्ट्रभाषा, पटना, २०१५

४७. भारतीय वाङ्मय में श्रीराधा—डॉ० बलदेव उपाध्याय, बिहार राष्ट्र, भाषा परिषद्, पटना, १९६३

४८. भारतीय साहित्य कोश—डॉ० राजवंश सहाय "हीरा" बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना १९७३

४९. भारतीय काव्यशास्त्र - डॉ० सुरेश अग्रवाल - अशोक प्रकाशन, दिल्ली, १९७९

५०. भारतीय नाट्य सिद्धांत - डॉ० रामजी पाण्डेय, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना १९८२

५१. भारतीय वाङ्मय में श्री राधा—पं० बलदेव उपाध्याय, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद् पटना

५२. भारतीय साहित्य शास्त्र—डॉ० बलदेव उपाध्याय—नन्द किशोर एण्ड सन्स

५३. मनुस्मृति—पंडित हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संवत् २०२९

५४. महाभारत—गीता प्रेस, गोरखपुर

५५. महाभाष्य - पतंजलि—व्याख्याकार—युधिष्ठिर मीमांसक—राम लाल कपूर एण्ड ट्रस्ट

५६. मेदिनी कोश - चौखम्बा विद्याभवन

५७. यजुर्वेद

५८. रघुवंशम्— चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

५९. राधा माधव चिन्तन—गीता प्रेस, गोरखपुर

६०. रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना— डॉ० भुवनेश्वर मिश्र माधव — बिहार रा० भा० प०, पटना।

६१. वाचस्पत्यम् - तारानाथ तर्क वाचस्पति—चौखम्बा विद्याभवन, १९६२

६२. वाल्मीकिरामायण - गीता प्रेस, गोरखपुर

६३. विश्व धर्मन दर्शन—श्री सावलिया बिहारी लाल वर्मा - बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद् पटना १९७५

६४. विष्णु पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर

६५. वैदिक इण्डेक्स - हिन्दी अनुवाद

६६. वैदिक कोश - डॉ० सूर्यकान्त

६७. वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति—पं० गिरिधर शर्मा—वि० रा० प०, पटना, १९७२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६८. वैदिक साहित्य और संस्कृति—डॉ० बलदेव उपाध्याय, शारदा मंदिर काशी
६९. शब्दकल्पद्रुम—राजा राधाकान्त सम्पादित, १९६१
७०. शांडिल्य भक्तिसूत्रम्
७१. शिशुपालवधम्—चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
७२. श्रीमद्भगवद्गीता—शांकर भाष्य सहित—गीता प्रेस, गोरखपुर
७३. श्रीमद्भगवद्लीला चिन्तामणि—अनुवाद—चतुर्भुज तोषनीवाल, कृष्ण जन्म सं०, मथुरा
७४. श्रीमद्भागवत और सूरसागर का तुलनात्मक अध्ययन—डॉ० वेदप्रकाश शास्त्री
७५. श्रीमद्भागवत का काव्य शास्त्रीय अध्ययन—डॉ० कृष्णमोहन, अग्रवाल —कंचन पब्लिकेशन, बोधगया, १९८४
७६. श्रीमद्भागवत का सांस्कृतिक अध्ययन—डॉ० जवाहरलाल शर्मा— राज० हि० ग्रं० अ०, १९८४
७७. भागवत धर्म—हरिभाउ उपाध्याय—सस्ता साहित्य मण्डल, १९६२
७८. भागवत संदर्भ—श्री जीव गोस्वामी, यादवपुर युनवर्सिटी, कलकत्ता, १९७२
७९. श्रीमद्भागवत के स्तोत्रों का आधार—एक शास्त्रीय परिशीलन श्रीकृष्ण जन्म संस्थान, मथुरा
८०. श्रीमद्भागवतमहापुराण—भाषा टीका सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर
८१. श्रीमद्भागवत महापुराण—मूल मात्र
८२. श्रीमद्भागवत महापुराण—विविध व्याख्या समलंकृत—संपादक एवं प्रकाशक श्रीकृष्ण शंकर शास्त्री, १९६५
८३. श्रीमद्भावत महापुराण—पं० रामतेज शास्त्री, पंडित पुस्तकालय, काशी, १९५६
८४. श्रीमद्भागवत महापुराण में गोपी गीत—स्वामी अखण्डानन्द
८५. श्रीमदभागवत महापुराण में प्रेम तत्त्व—डॉ० रामचन्द्र तिवारी—ईस्टर्न बुक लिंकर्स, १९८२
८६. श्रीमद्भागवत भाषा परिच्छेद—चारुदेवशास्त्री विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर, १९८४
८७. श्रीमद्भागवत रहस्य—श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज
८८. षड्दर्शन रहस्य—पं० रंगनाथ पाठक—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, १९८०
८९. संस्कृत पंचदेवतास्तोत्राणि—सन्मार्ग प्रकाशन बैंग्लो रोड, दिल्ली, १९७४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९०. संस्कृत—अंग्रेजी कोश—मोनीयर विलियम्स—मो० ला० व० दा०
९१. संस्कृत अंग्रेजी कोश बामन शिवराज आप्टे—
९२. संस्कृत कवि दर्शन—डॉ० भोला शंकर व्यास—चौखम्बा विद्याभवन, १९८२
९३. संस्कृत गीति काव्यानुचिंतनम्—डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन १९७०
९४. संस्कृत धातुकोष—युधिष्ठिर मीमांसक—राम लाल कपूर एण्ड ट्रस्ट
९५. संस्कृत निबन्धशतकम्—डॉ० कपिलदेव द्विवेदी—विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, १९८४
९६. संस्कृत साहित्य का इतिहास—डॉ० बलदेव उपाध्याय
९७. संस्कृत साहित्य का इतिहास—डॉ० बाचस्पति गैरोला, चौखम्बा सं० पुस्तकालय, काशी
९८. संस्कृत-हिन्दी-कोश—वा० शिवराम आप्टे मो० वनारसीदास
९९. संस्कृत हिन्दी अंग्रेजी कोश—डॉ० सूर्यकान्त ओरियण्टल लॉग मैन दिल्ली, १९८६
१००. सांख्यकारिका—चौखम्बा विद्याभवन
१०१. सामवेद संहिता—श्रीपाद सातवलेकर सम्पादित स्वाध्याय मण्डल पारडी वि० सं० २०१५
१०२. साहित्य दर्पण—चौखम्बा विद्याभवन
१०३. सिद्धान्त कौमुदी—बालमनोरमा टीका सहित—चौखम्बा विद्याभवन
१०४. स्तुति कुसुमांजली का दार्शनिक एवं काव्यशास्त्रीय परिशीलन—डॉ० विद्यारानी अग्रवाल, कंचन पब्लिकेशन, बोध गया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जन्म तिथि : २० फरवरी, १९६३

जन्म स्थान : नारायणपुर, भोजपुर, बिहार

शिक्षा : एम० ए० द्वय-संस्कृत एवं प्राकृत लब्ध स्वर्णपदक
जे. आर. एफ. नेट परीक्षा उत्तीर्ण
पी.एच.डी., डी लिट्-कार्यरत

कार्यक्षेत्र : जुलाई १९८६ से सितम्बर १९९१ तक स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग मगध विश्वविद्यालय में अध्यापन एवं शोधकार्य। सितम्बर १९९१ से अनवरत जैन विश्वभारती मान्य विश्वविद्यालय, प्राकृत भाषा साहित्य विभाग में सहायक आचार्य के रूप में कार्यरत।

प्रकाशन : ७० शोध-निबन्ध विभिन्न शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित।

ग्रन्थ

१. तेरापंथ का राजस्थानी को अवदान (सम्पादित)
२. पाइय कहाओ (सम्पादित)

शीघ्र प्रकाश्य:

१. रत्नपालचरित का समीक्षात्मक अनुशीलन
२. निबन्ध-निचय (२० साहित्यिक शोध-निबन्धों का संग्रह)
३. सेतुबन्ध (प्रथम आश्वास) विस्तृत भूमिका अन्वय, हिन्दी अनुवाद, व्याकरणिक टिप्पण विस्तृत व्याख्या सहित।
५. एम० ए० संस्कृत व्याकरण (आत्मनेपद, परस्मैपद, लकारार्थ एवं कृत्य प्रक्रिया)

विशेष शोधकार्य :

१. गणाधिपति तुलसी एवं आचार्य श्री महाप्रज्ञ का संस्कृत साहित्य
२. तेरापंथ-साहित्य पर शोध-निबन्ध लेखन
३. जैन आगम के उपमानों का अनुशीलन
४. श्रीमद्भागवत का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन
५. श्रीमद्भागवत के गीतों का काव्य शास्त्रीय अनुशीलन
६. प्राकृत-निपातों का भाषा वैज्ञानिक अनुशीलन

Jain Education International For Private & Personal Use Only

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org